हो सकता है मैं आपके विचारों से सहमत न हो पाऊं फिर भी विचार प्रकट करने के आपके अधिकारों की रक्षा करूंगा। –वाल्तेयर

राजस्थान पत्रिका
संस्थापक
कर्पूर चन्द्र कुलिश

जोहरान ममदानी की जीत के बहुआयामी संदेश

न्यूयॉर्क लंबे समय से आधुनिक विकास का वैश्विक मॉडल बना हुआ है। दुनिया में किसी भी शहर के विकास का खाका पूंजीवाद की राजधानी कहे जाने वाले 'न्यूयॉर्क जैसा' बनने के सपने के साथ ही शुरू होता है। ऐसे न्यूयॉर्क में मेयर के पद पर 'डेमोक्रेटिक सोशलिस्ट ऑफ अमरीका' पार्टी के भारतीय-अफ्रीकी मूल के जोहरान ममदानी का चुना जाना अमरीका ही नहीं, दुनिया के लिए बहुआयामी संदेश है। वह भी ऐसे समय में जब अमरीका में रिपब्लिकन राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप की नीतियों को पूंजीवादी अवधारणों की पराकाष्ठा के रूप में देखा जा रहा है, जहां अब राष्ट्रपति के निजी व्यावसायिक हित राष्ट्रीय हितों पर भारी पड़ते दिखने लगे हैं।

ट्रंप अपनी और अपने सहयोगियों की निजी पूंजी बढ़ाने के तंत्र के रूप में अमरीका की राजनीतिक ताकत और आर्थिक नीतियों का खुलेआम इस्तेमाल कर रहे हैं। ऐसा होना न तो पूंजीवादी अवधारणाओं के लिए अच्छा है और न ही लोकतंत्र के लिए। जोहरान ममदानी का मेयर चुना जाना बताता है कि तमाम आर्थिक विकास के बावजूद पीछे छूट गए लोगों को अपना राजनीतिक प्रतिनिधित्व चाहिए। कॉर्पोरेट प्रभाव वाले शहरों को भी सिर्फ अमीरी नहीं, एक न्यायपूर्ण व्यवस्था भी चाहिए, जहां सभी शांति और सम्मान से रह सकें। ममदानी ने चुनाव प्रचार के दौरान कहा था, 'अगर शहर केवल अमीरों के लिए होगा तो यह शहर नहीं कंपनी बन जाएगा।' यह वाक्य अमरीका के शहरों में बढ़ती आर्थिक खाई से उत्पन्न पीड़ा को व्यक्त करने वाला है। यह बताता है कि सामाजिक न्याय, समानता, सस्ती आवास योजना, स्वास्थ्य और शिक्षा तक सबकी सहजता से पहुंच अब एक ऐसी जरूरत है, जिसे देर होने से पहले ही पूरी करने के गंभीर प्रयास होने चाहिए। ममदानी की जीत का संदेश साफ है- अब बाजार की अंधी दौड़ से निकलकर इंसान की जरूरतों को तवज्जो देने के समय आ गया है। यह आवाज दुनिया के कई देशों में उठ रही है और इसका राजनीतिक दुरुपयोग भी हो रहा है। अलोकतांत्रिक ताकतें अवैध सत्ता परिवर्तन के लिए इसे एक राजनीतिक औजार बना रही हैं। बांग्लादेश और नेपाल में हाल के तख्तापलट को इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

एक प्रवासी मुस्लिम युवक का, जिसे 2018 में अमरीकी नागरिकता मिली हो, न्यूयॉर्क जैसे शहर में शीर्ष तक पहुंचना यह भी बताता है कि अमरीका का मानस बदल रहा है। ट्विन टॉवर पर हुए '9/11 हमले' के बाद मुस्लिमों और एशियाई मूल के लोगों के खिलाफ जो नाराजगी वहां पैदा हुई थी, वह अब बदलाव के दौर में है। नस्लवादी 'सफेद घोड़े' की सवारी कर राष्ट्रपति चुनाव जीतने वाले डॉनल्ड ट्रंप के लिए ममदानी की जीत एक ऐसी चुनौती की तरह है, जो आने वाले दिनों में भी उन्हें परेशान करेगी। ममदानी का अमरीका की राजनीति में धमक जमाना लोकतंत्र की उस खूबसूरती को उजागर करता है, जिसमें मेहनत, संवेदना और नैतिकता की पूंजी ही सबसे ताकतवर है।

'वंदे मातरम्' के 150 वर्ष पूर्ण: यह अपने इतिहास, संस्कृति और परंपराओं को भारतीयता की दृष्टि से देखने का समय है

राष्ट्रजागरण की गूंज, भारत की आत्मा का स्वर

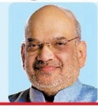

अमित शाह
गृह मंत्री
भारत सरकार
@patrika.com

यह भारत के सभ्यतागत आत्मविश्वास का प्रतीक है। अब, इस भावना को आत्मनिर्भर और श्रेष्ठ भारत में परिवर्तित करना हमारी जिम्मेदारी है। 'वंदे मातरम्' स्वतंत्रता का गीत है, अटूट संकल्प की भावना है और भारत के जागरण का प्रथम मंत्र है।

हमारे देश के इतिहास में ऐसे कई अहम पड़ाव आए, जब गीतों, कलाओं ने अलग-अलग रूपों में लोकभावनाओं को सहेजकर आंदोलन को आकार देने में अहम भूमिका निभाई। चाहे छत्रपति शिवाजी महाराज जी की सेना के युद्धगीत हों, आजादी के आंदोलन में सेनानियों के गान या आपातकाल के विरुद्ध युवाओं के सामूहिक गीत, गीतों ने भारतीय समाज को स्वाभिमान की प्रेरणा भी दी और एकजुट भी बनाया। ऐसा ही है भारत का राष्ट्रीय गीत 'वंदे मातरम्', जिसका इतिहास किसी युद्धभूमि से नहीं, बल्कि एक विद्वान बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय जी के शांत लेकिन अडिग संकल्प से शुरू होता है। वर्ष 1875 में, जगद्धात्री पूजा (कार्तिक शुक्ल नवमी या अक्षय नवमी) के दिन, उन्होंने उस स्तोत्र की रचना की जो भारत की स्वतंत्रता का शाश्वत गीत बन गया।

इन पवित्र शब्दों को लिखते हुए, वे भारत की गहनतम सभ्यतागत जड़ों से प्रेरणा ले रहे थे। अथर्ववेद के उद्घोष 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः' से लेकर देवी महात्म्य में विश्वमाता के आह्वान से प्रेरणा ले रहे थे। बंकिम बाबू का यह मंत्र, प्रार्थना भी था और भविष्यवाणी भी। 'वंदे मातरम्' केवल भारत का राष्ट्रीय गीत ही नहीं, सिर्फ स्वतंत्रता आन्दोलन का प्राण ही नहीं, बल्कि यह बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय जी द्वारा 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की प्रथम उद्घोषणा है। इसने हमें याद दिलाया कि भारत केवल जमीन का एक टुकड़ा नहीं, बल्कि एक भू-सांस्कृतिक राष्ट्र है- जिसकी एकता उसकी संस्कृति और सभ्यता से आती है। यह केवल भू-भाग नहीं है, बल्कि तीर्थ है, स्मृति, त्याग, शौर्य और मातृत्व से बंधी पवित्र भूमि है। जैसा कि महर्षि अरबिंद ने वर्णन किया, बंकिम आधुनिक भारत के एक ऋषि थे, जिन्होंने अपने शब्दों के माध्यम से राष्ट्र की आत्मा को पुनर्जीवित किया। उनका 'आनंदमठ' केवल एक उपन्यास नहीं, बल्कि गद्य में एक मंत्र था, जिसने एक ऐसे राष्ट्र को जागृत किया, जो अपनी दिव्य शक्ति को भूल चुका था। अपने एक पत्र में, बंकिम बाबू ने लिखा- 'मुझे कोई आपत्ति नहीं है यदि मेरे सभी कार्य गंगा में बहा दिए जाएं। यह श्लोक ही अनंत काल तक जीवित रहेगा। यह एक महान गान होगा और लोगों के हृदय को जीत लेगा।' ये शब्द भविष्यसूचक थे।

औपनिवेशिक भारत के सबसे अंधकारमय काल में लिखा गया, 'वंदे मातरम्' जागृति का प्रभात-गीत बन गया, एक ऐसा भजन जिसने 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' को सभ्यतागत गौरव के साथ जोड़ दिया। ऐसी पंक्तियां केवल वही व्यक्ति लिख सकता था जिसके रोम-रोम में राष्ट्र के प्रति भक्तिभाव कूट-कूट कर भरा हो। 1896 में, रवींद्रनाथ टैगोर जी ने 'वंदे मातरम्' को धुन में पिरोया और कोलकाता कांग्रेस अधिवेशन में इसे गाया, जिससे इसे वाणी और अमरता प्राप्त हुई। यह गीत भाषा और क्षेत्र की सीमाओं से आगे बढ़कर पूरे देश में गूंज उठा। तमिलनाडु में सुब्रमण्यम भारती जी ने इसका तमिल अनुवाद किया और पंजाब में क्रांतिकारियों ने इसे गाते हुए ब्रिटिश राज को खुली चुनौती दी। 1905 में बंग-भंग आंदोलन के दौरान बंगाल में विद्रोह भड़क उठा।

अंग्रेजों ने 'वंदे मातरम्' के सार्वजनिक पाठ पर प्रतिबंध लगा दिया था, फिर भी, 14 अप्रेल, 1906 को बारीसाल में, हजारों लोगों ने इस आदेश की अवहेलना की। जब पुलिस ने शांतिपूर्ण सभा पर लाठीचार्ज किया, तो पुरुष और महिलाएं सड़कों पर 'वंदे मातरम्' का नारा लगाते हुए लहूलुहान हो गए। वहां से, 'वंदे मातरम्' का मंत्र, गदर पार्टी के क्रांतिकारियों के साथ कैलिफोर्निया पहुंच गया। आजाद हिंद फौज में गूंजा, जब नेताजी के सैनिक सिंगापुर से मार्च कर रहे थे और 1946 के रॉयल इंडियन नेवी की क्रांति में भी गूंजा, जब भारतीय नाविकों ने ब्रिटिश युद्धपोतों पर तिरंगा फहराया। खुदीराम बोस से लेकर अशफाकउल्ला खान तक, चंद्रशेखर आजाद से लेकर तिरुपुर कुमारन तक, नारा एक ही था। यह अब सिर्फ एक गीत नहीं रहा, यह भारत की सामूहिक आत्मा की आवाज बन गया था। महात्मा गांधी ने स्वयं स्वीकार किया था, 'वंदे मातरम्' में 'सबसे सुस्त रक्त को भी जगाने की जादुई शक्ति' थी। इसने उदारवादियों, क्रांतिकारियों, विद्वानों और नाविकों तक को एकजुट किया। महर्षि अरबिंद जी ने इसीलिए कहा था कि, यह 'भारत के पुनर्जन्म का मंत्र' है। 26 अक्टूबर को 'मन की बात' कार्यक्रम में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 'वंदे मातरम्' गीत के इस इतिहास की देशवासियों को फिर से याद दिलाई और राष्ट्रीय गीत 'वंदे मातरम्' के 150 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में 7 नवंबर से भारत सरकार की ओर से अगले एक वर्ष तक अलग-अलग कार्यक्रमों का आयोजन करने का निर्णय लिया। इन आयोजनों के माध्यम से देश भर में 'वंदे मातरम्' का पूर्ण गान होगा, जिससे देश की युवा पीढ़ी 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के विचार को आत्मसात कर पाए। आज जब हम भारत पर्व मना रहे हैं और सरदार पटेल की जयंती पर उन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण कर रहे हैं, तो यह भी याद करते हैं कि कैसे सरदार साहब ने 'एक भारत' का निर्माण कर 'वंदे मातरम्' की भावना को ही मूर्त रूप दिया था। यह गीत केवल अतीत का स्मरण मात्र नहीं, बल्कि भविष्य के लिए एक आह्वान भी है। 'वंदे मातरम्' आज भी विकसित भारत 2047 के हमारे संकल्प में प्रेरणा दे रहा है।

यह भारत के सभ्यतागत आत्मविश्वास का प्रतीक है। अब, इस भावना को आत्मनिर्भर और श्रेष्ठ भारत में परिवर्तित करना हमारी जिम्मेदारी है। 'वंदे मातरम्' स्वतंत्रता का गीत है, अटूट संकल्प की भावना है और भारत के जागरण का प्रथम मंत्र है। राष्ट्र की आत्मा से जन्मे शब्द कभी समाप्त नहीं होते- वे सदैव जीवित रहते हैं, पीढ़ियों तक गूंजते रहते हैं। यह जयघोष युगों और पीढ़ियों में अनंतकाल तक प्रतिध्वनित होता रहेगा। समय आ गया है कि हम अपने इतिहास, संस्कृति, मान्यताओं व परंपराओं को भारतीयता की दृष्टि से देखें।

प्रसंगवश

रसायनों के इस्तेमाल से थक गई मिट्टी, जैविक खेती की ओर लौटें

कभी उपज बढ़ाने का जरिया रही रासायनिक खेती अब समस्या बन गई

लगातार एक ही फसल बोने, रासायनिक खादों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग तथा सिंचाई जल में बढ़ते प्रदूषण ने खेती की जमीन की उर्वरता को तेजी से घटा दिया है। नतीजा यह हुआ है कि मिट्टी थक-सी गई है और इसका नतीजा यह हुआ है कि प्रदेश के कई इलाकों में मिट्टी के पोषण का संकट गहराता जा रहा है। कभी खेती में सिरमौर रहने वाला श्रीगंगानगर जिला इसका ताजा उदाहरण है, जहां बीते चार साल में लिए गए शत-प्रतिशत नमूनों में जैविक कार्बन की भारी कमी पाई गई है। इसी संकट से निकलने की राह बताते हुए कृषि वैज्ञानिक फिर से पारंपरिक जैविक खाद की ओर लौटने की सलाह दे रहे हैं। चिंता इस बात की है कि काश्तकार अभी रासायनिक खेती का मोह छोड़ने को तैयार नजर नहीं आते। असल में किसान आज की खेती में तुरंत मुनाफे को प्राथमिकता देता है जबकि जैविक खेती में शुरुआत में मेहनत अधिक और लाभ धीमा दिखाई देता है।

अधिकांश किसान मानते हैं कि जैविक पद्धति से उपज घट जाती है, जबकि रासायनिक खेती में तुरंत अधिक उत्पादन मिलता है। जैविक पद्धति में मिट्टी को पुनः स्वस्थ होने में दो से तीन साल लग जाते हैं, जो किसानों के लिए आर्थिक रूप से कठिन दौर होता है। एक तथ्य यह भी कि कृषि विभाग और विज्ञान केंद्रों की किसानों तक पहुंच सीमित है। जहां प्रशिक्षण होते हैं, वे भी व्यावहारिक रूप से खेत तक नहीं पहुंच पाते। रासायनिक खेती ने उसकी जीवनशक्ति कम कर दी है, जबकि जैविक खेती में गोबर की खाद, कंपोस्ट और हरी खाद जैसी प्राकृतिक सामग्री से मिट्टी की सेहत लौट आती है। इससे पैदा अन्न, फल और सब्जियां पूरी तरह प्राकृतिक, पौष्टिक और सुरक्षित होती हैं, जो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हैं। आज जैविक खेती कोई विकल्प नहीं, बल्कि समय की मांग है। जैविक खेती किसान, उपभोक्ता और पर्यावरण के हित में है, लेकिन यह बदलाव तभी संभव होगा जब किसान को रोजगार, सम्मान और सुरक्षा का भरोसा दिया जाए।

- महेन्द्र सिंह शेखावत
mahendra.shekhawat@in.patrika.com

बुक इनसाइट

क्वीन एस्तेर: साहस की कहानी

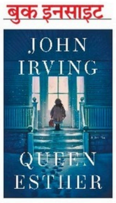

क्वीन एस्तेर जॉन इर्विंग की लिखी गई एक दिलचस्प और गहरी कहानी है, जो एक युवा लड़की एस्तेर के जीवन की यात्रा को दर्शाती है। इस उपन्यास में हम एक छोटे से शहर में रहने वाली लड़की की कहानी देखते हैं, जो अपनी आंतरिक शक्ति, साहस और प्यार के साथ दुनिया से लड़ती है। एस्तेर की कहानी में पारिवारिक संबंधों, आत्म-खोज और जीवन के संघर्षों की झलक मिलती है, जो पाठकों को अपनी खुद की जिंदगी के बारे में सोचने पर मजबूर कर देती है। इस उपन्यास में एस्तेर के किरदार को बहुत गहरे और सटीक तरीके से प्रस्तुत किया गया है। उसका संघर्ष केवल बाहरी दुनिया से नहीं, बल्कि अपनी भीतरी भावनाओं और असुरक्षाओं से भी है। लेखक ने उसे एक सशक्त और संवेदनशील पात्र के रूप में चित्रित किया है। कहानी का मुख्य आकर्षण एस्तेर की यात्रा है, जो अपने परिवार और समाज की निर्धारित सीमाओं को चुनौती देती है। यह किताब न केवल व्यक्तिगत संघर्षों का चित्रण करती है बल्कि एक समाज के भीतर महिला के स्थान को भी चुनौती देती है।

फैक्ट फ्रंट

अनोखा छोटा और रंगीन बंदर

गोल्डन लायन टामेरिन एक छोटा और रंगीन बंदर है, जो मुख्य रूप से ब्राजील के अमेजन वर्षा वन में पाया जाता है। इसकी सबसे खास विशेषता इसका सुनहरा रंग और लायन जैसी दाढ़ी है, जिससे इसका नाम 'गोल्डन लायन टामेरिन' पड़ा है।

इस बंदर का आकार छोटा होता है और इसका शरीर लगभग 40 से 50 सेंटीमीटर लंबा होता है। इसके लंबे सुनहरे बालों के कारण यह आसानी से पहचाना जा सकता है। यह बंदर न केवल अत्यंत सुंदर है बल्कि जंगल का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी है। यह दिन में 10 किलो फल खाता है और बीजों को दूर-दूर फैलाता है एक बंदर साल में 500 पेड़ उगाता है। अपनी लंबी उंगली से यह पेड़ की छाल में छेद करके कीड़े निकालता है। यह बंदर 5 मीटर की छलांग लगा सकता है । इसका बड़ा परिवार होता है और सभी मिलकर बच्चों की देखभाल करते हैं। इसकी आवाज 100 अलग-अलग तरह की होती है ।

चिकित्सा नौकरी के दौरान स्वास्थ्य परीक्षण कराएं

कार्यस्थल पर होने वाले रोगों की रोकथाम के प्रयास जरूरी

डॉ. पंकज जैन
प्रोफेसर, मेडिकल कॉलेज, कोटा
@patrika.com

ऐसे रोग जो विभिन्न प्रकार के जैविक, रासायनिक, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक कारकों के चलते होते हैं जो कार्यस्थल पर मौजूद होते हैं या रोजगार के दौरान सामने आते हैं, उन्हें व्यावसायिक रोगों से परिभाषित किया जाता है। व्यावसायिक बीमारियां कर्मचारियों की कार्यक्षमता को कम करके दीर्घकालिक बीमारियों की दर में वृद्धि करती है। इसके साथ ही ये बीमारियां कार्यस्थल पर कर्मचारियों की अनुपस्थिति भी बढ़ाती है। डब्ल्यूएचओ के अनुसार अधिकांश देशों में कार्य संबंधी स्वास्थ्य समस्याओं के चलते सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 4-6 प्रतिशत आर्थिक नुकसान होता है। कार्य संबंधी बीमारियों और चोटों के चलते कर्मचारियों को अकाल मृत्यु का सामना भी करना पड़ता है। कार्य संबंधी बीमारियों के होने के पीछे पांच प्रमुख कारक है, जिन्हें भौतिक/प्राकृतिक, रासायनिक, जैविक, यांत्रिकी एवं मनोसामाजिक श्रेणियों में बांट सकते हैं।

भौतिक कारकों में उद्योगों की अत्यधिक गर्मी व ठंड, कम रोशनी या अत्यधिक चमक, शोर, कंपन, अल्ट्रावॉयलेट एवं आॅयोनाइजिंग विकिरण प्रमुख हैं। रासायनिक घटकों में उद्योगों से निकलने वाले रसायन, विषैली गैसें, धूल व धुंआ प्रमुख है, जो कई प्रकार के श्वसन संबंधी रोगों का कारण बनते हैं। जैविक कारणों में कर्मचारियों का कार्यस्थल पर विभिन्न जानवरों एवं उनके उत्पादों, दूषित जल, मिट्टी या भोजन के निकट संपर्क के चलते वायरल, बैक्टीरियल एवं परजीवी संक्रमण शामिल हैं। यांत्रिकी कारणों में कार्यस्थल पर मशीनों के चलते होने वाली दुर्घटनाएं आती हैं। अंत में मनोवैज्ञानिक खतरे, जो श्रमिकों द्वारा कार्यस्थल के वातावरण के साथ तालमेल बिठाने की विफलता, निराशा, नौकरी से संतुष्टि की कमी, असुरक्षा का भाव, खराब मानवीय संबंध, भविष्य की चिंता, और भावनात्मक तनाव के चलते उत्पन्न होते हैं, जो श्रमिकों के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य, दोनों को प्रभावित कर सकते हैं।

कार्य संबंधी बीमारियों को रोकने के लिए एकीकृत रूप से चिकित्सकीय, अभियांत्रिकीय एवं वैधानिक प्रयासों की दरकार है। चिकित्सकीय उपायों में नौकरी से पूर्व स्वास्थ्य परीक्षण एक महत्त्वपूर्ण कदम है, ताकि सही व्यक्ति को सही नौकरी के लिए बिना किसी व्यावसायिक जोखिम के साथ चुना जा सके। नौकरी के दौरान बीच-बीच में स्वास्थ्य परीक्षण भी आवश्यक है। अभियांत्रिकी उपायों में व्यावसायिक रोगों की रोकथाम के लिहाज से भवन की डिजाइनिंग, उचित वेंटिलेशन, सामान्य प्रकाश व्यवस्था, सफाई, हवा का आदान प्रदान, धुलाई, भोजन की व्यवस्था, धुआं व धूल नियंत्रण, श्रमिकों की सुरक्षात्मक उपकरण जैसे मास्क, ईयर प्लग, हेलमेट, एप्रन, दस्ताने, गमबूट श्वसन यंत्र की उपलब्धता शामिल हैं। कर्मचारियों को अपने कार्य से संबंधित स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करें एवं काउंसलिंग भी होनी चाहिए।

फ्रांस का चर्च: 200 वर्ष तक चला निर्माण

फ्रांस के दक्षिण में स्थित सेंट-सेसिल कैथेड्रल ईसाई स्थापत्य कला का अद्भुत उदाहरण है। अल्बी नगर के मध्य स्थित यह कैथेड्रल ईंटों से निर्मित सबसे बड़ी इमारत है। इसका निर्माण कार्य 1282 में आरंभ हुआ और लगभग 200 वर्षों तक चलता रहा। यह मध्ययुगीन गोथिक वास्तुकला की झलक प्रस्तुत करता है।

दृष्टिकोण राष्ट्रीय कैंसर जागरूकता दिवस आज

कैंसर के विरुद्ध युद्ध जिसमें जागरूकता ही सुरक्षा है

प्रो. हेमंत पारीक
महासचिव, इंटरनेशनल सोसायटी ऑफ लाइफ साइंसेज
@patrika.com

आज का युग विज्ञान और प्रगति का युग है, परंतु इसके साथ ही एक गम्भीर सच्चाई यह भी है कि मनुष्य अनेक नई बीमारियों के जाल में उलझता जा रहा है। इनमें सबसे भयावह बीमारी है- कैंसर। यह रोग किसी एक वर्ग या आयु तक सीमित नहीं है, यह बच्चे से लेकर बुजुर्ग तक, ग्रामीण से शहरी तक, सभी को प्रभावित कर सकता है। भारत में हर वर्ष लाखों लोग कैंसर से पीड़ित होते हैं और उनमें से अनेक की जान केवल इसलिए चली जाती है क्योंकि बीमारी का पता बहुत देर से चलता है।

कैंसर कोई अचानक होने वाली बीमारी नहीं है, बल्कि यह धीरे-धीरे जीवनशैली, भोजन, तनाव और अस्वस्थ आदतों का परिणाम है। तम्बाकू, शराब, प्रदूषण, प्लास्टिक उपयोग, असंतुलित आहार और शारीरिक निष्क्रियता इसके मुख्य कारण हैं। आज भी समाज में बड़ी संख्या में लोग यह नहीं जानते कि कैंसर का प्रारम्भिक पता समय पर लग जाए तो यह पूरी तरह ठीक भी हो सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि इस बीमारी के प्रति समाज में जागरूकता का वातावरण बनाया जाए।

राष्ट्रीय कैंसर जागरूकता दिवस मनाने का उद्देश्य है लोगों को यह संदेश देना कि कैंसर से डरना नहीं, बल्कि समय पर जांच कराना ही इसकी सबसे बड़ी सुरक्षा है। यदि हम जीवनशैली में छोटे-छोटे परिवर्तन करें जैसे तम्बाकू और नशे से दूरी, पौष्टिक भोजन, नियमित व्यायाम, सकारात्मक सोच और साल में एक बार स्वास्थ्य परीक्षण तो इस बीमारी के खतरे को बहुत हद तक कम किया जा सकता है। केवल एक दिन मनाने या कुछ कार्यक्रम आयोजित करने से इस बीमारी पर नियंत्रण संभव नहीं। इसके लिए दीर्घकालीन और सतत प्रयास आवश्यक हैं। सरकार और समाज को मिलकर इस दिशा में कदम उठाने होंगे। सबसे प्रभावी कदम यह होगा कि कैंसर से जुड़ी मूलभूत जानकारी को विद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए। जब बच्चे कम उम्र से ही यह समझेंगे कि अस्वस्थ आदतें किस प्रकार शरीर को नुकसान पहुंचाती हैं और स्वस्थ जीवनशैली किस प्रकार उन्हें गंभीर बीमारियों से बचा सकती है, तब वे स्वयं भी सावधान रहेंगे और अपने परिवार तथा समाज को भी जागरूक करेंगे।

विद्यालय स्तर पर कैंसर जागरूकता विषय को स्वास्थ्य शिक्षा के अंतर्गत शामिल किया जाना चाहिए। कैंसर के विरुद्ध यह युद्ध केवल डॉक्टरों या अस्पतालों का नहीं है, बल्कि प्रत्येक नागरिक की भागीदारी से ही इसे जीता जा सकता है। हमें अपने आसपास के लोगों को जांच के लिए प्रेरित करना होगा। मिथकों को तोड़ना होगा और यह संदेश फैलाना होगा कि जागरूकता ही सुरक्षा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम सब मिलकर कैंसर के विरुद्ध इस मौन युद्ध को आवाज दें। हर घर तक जानकारी पहुंचाएं और यह सुनिश्चित करें कि किसी की जान अज्ञानता के कारण न जाए।

आपकी बात

भारत केंद्रित शोध की जरूरत

शोध और नवाचार को प्रोत्साहित करने के लिए भारतीय दृष्टि से हमारे देश का अध्ययन जरूरी है। भारतीय ज्ञान परंपरा आधारित अकादमिक गतिविधियों से सृजनशील अनुसंधान और नए रोजगार अवसरों का सृजन होगा।

- रक्षा पंड्या, भोपाल

patrika.com पर पढ़ें

पाठकों की अन्य प्रतिक्रियाएं

पत्रिकायन का सवाल था, 'शोध और नवाचार को बढ़ावा देने के लिए क्या कदम उठाए जाने चाहिए?' अन्य प्रतिक्रियाएं ऑनलाइन भी देखें।

इसे स्कैन करें https://shorturl.at/FyNht

समसामयिक विषयों पर पाठकों के विचार आमंत्रित हैं। चुनिंदा विचार प्रकाशित किए जाएंगे।
ईमेल करें: edit@epatrika.com

वेंस के कथन पर बहस आज अमरीका जिस संकट से गुजर रहा है, वह सिर्फ राजनीतिक नहीं बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक भी है

क्या अब 'अमरीकी नागरिक' के लिए ईसाई होना जरूरी है?

विनय कौड़ा
अंतरराष्ट्रीय मामलों के जानकार
@patrika.com

अमरीका के उपराष्ट्रपति जे.डी. वेंस ने हाल ही मिसिसिपी यूनिवर्सिटी में टर्निंग पॉइंट यूएसए रैली में कहा कि वे आशा करते हैं कि उनकी हिंदू पत्नी उषा 'कभी उस अनुभव से प्रभावित होंगी, जिससे मैं गिरजाघर में प्रभावित हुआ था।' रैली में हजारों समर्थकों के सामने वेंस ने यह बयान देते हुए यह संकेत दिया कि उनकी आस्था और अनुभव दूसरों के लिए भी मार्गदर्शक हो सकते हैं, जिससे यह निजी विश्वास से कहीं बढ़कर सार्वजनिक संदेश बन गया। इस घटना ने बहुसांस्कृतिक अमरीका में धर्म और पहचान के मुद्दों पर बहस को नया मोड़ दिया है। आलोचकों ने इसे अमरीका में ईसाई राष्ट्रवाद के बढ़ते प्रभाव और धार्मिक बहुलता पर संभावित दबाव के रूप में देखा है।

दरअसल, उपराष्ट्रपति का यह कथन केवल व्यक्तिगत आस्था का प्रदर्शन या एक पति की आकांक्षा नहीं है, बल्कि उस राजनीतिक वातावरण का प्रतीक है जिसमें धर्म और सार्वजनिक नैतिकता गहन रूप से जुड़ी हुई हैं। धर्म, किसी भी रूप में, व्यक्तिगत अनुभव और आत्मिक खोज का विषय होता है।

हर आस्थावान यह चाहता है कि उसकी आस्था, जिसने उसके जीवन को नई दिशा और अर्थ दिया, दूसरों को भी आलोकित करे। इसमें कोई दोष नहीं है। परंतु जब यही भाव सत्ता के शीर्ष पर बैठे किसी व्यक्ति के मुख से निकलता है और वह राजनीतिक मंच पर 'संदेश' बनकर समाज तक पहुंचता है, तब इसका प्रभाव निजी नहीं रह जाता। यह सार्वजनिक नैतिकता और सांस्कृतिक पहचान के गंभीर सवालों को जन्म देता है। अमरीका, जो स्वयं को बहुसांस्कृतिक और बहुधर्मी राष्ट्र मानता है, वहां इस प्रकार के वक्तव्य उस अंतर्विरोध को उजागर करते हैं कि क्या ईसाई धर्म ही अब भी अमरीकी नैतिकता, राष्ट्रभक्ति और पारिवारिक मूल्यों का मानक है? क्या अन्य आस्थाएं- हिंदू, यहूदी, सिख, बौद्ध, मुस्लिम या मानवतावादी- केवल सहन के योग्य हैं, सम्मान के नहीं?

भारत हजारों वर्षों से यह सिखाता आया है कि विविध आस्थाएं केवल साथ नहीं रहतीं, बल्कि एक-दूसरे में प्रवाहित होकर समाज को गहन बनाती हैं। डॉनल्ड ट्रंप के अमरीका की समस्या यह नहीं कि वह धार्मिक हो रहा है, बल्कि यह कि धर्म को राष्ट्रीय पहचान के साथ जोड़ने की प्रवृत्ति अन्य विश्वासों के लिए जगह संकुचित कर रही है। उपराष्ट्रपति वेंस के शब्दों में यही भाव झलकता है कि किसी एक खास मत में 'आना' ही संपूर्णता है। सच्चा लोकतंत्र 'एकरूपता' नहीं चाहता। वह विविधता की लय में विश्वास करता है। आज अमरीका जिस संकट से गुजर रहा है, वह केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक भी है। ईसाई राष्ट्रवाद के नाम पर अमरीका में सार्वजनिक जीवन को नए सिरे से गढ़ा जा रहा है। उदाहरण के लिए, कई राज्यों में सरकारी स्कूलों में अनिवार्य ईसाई प्रार्थनाएं लागू करने की कोशिशें हो रही हैं। 'बाइबिलीय मूल्यों' को कानूनों में शामिल करने के प्रयास जारी हैं। विविधता और बहुलता को प्रोत्साहित करने वाले कार्यक्रमों को कमजोर किया जा रहा है। इन सब प्रयासों का अप्रत्यक्ष संदेश स्पष्ट है- अमरीकी होने के लिए ईसाई होना आवश्यक है। वेंस का वक्तव्य उसी मानसिकता की प्रतिध्वनि है।

परंतु यह अमरीकी कहानी का संपूर्ण संस्करण नहीं है और न कभी रहा है। अमरीका की शक्ति उन अनगिनत लोगों से आती है जिन्होंने अपने धर्म और संस्कृति को अमरीका की मिट्टी में नए अर्थों के साथ बोया। यहूदी, हिंदू, सिख, बौद्ध, मुस्लिम और मानवतावादी सभी ने अमरीकी लोकतंत्र को समृद्ध किया।

प्रश्न यह नहीं कि कौन-सा धर्म 'सच्चा' है, बल्कि यह है कि कौनसा समाज इतना साहसी है कि अनेक सत्यों के साथ जी सके। अमरीका की सुंदरता तब अक्षुण्ण रहेगी, जब वहां सभी धर्मावलंबियों के लिए विश्वास, सम्मान और स्वतंत्रता जीवित रहे। यह बहुलता ही अमरीकी लोकतंत्र को उसकी असली पहचान देती है और यही उसे एक शक्तिशाली और समृद्ध राष्ट्र बनाती है। धर्म, आस्था और लोकतंत्र का संगम केवल तभी जीवित रह सकता है जब वह संवाद और सम्मान के आधार पर गढ़ा जाए। अमरीका की असली ताकत यह होगी कि वह विविधता को अपनाए, न कि उसे दबाए।

दूसरा मुद्दा

सरोगेसी कानून का अधिक विस्तृत अध्ययन अधिक दम्पतियों की मदद कर सकता है

टी दूसरे बच्चे के लिए सरोगेसी की वैधता के बारे में सुप्रीम कोर्ट की हाल की टिप्पणियों ने यह मौलिक मुद्दा उठा दिया है कि कानून का उद्देश्य क्या विनियमित करना है।

न्यायालय में एक याचिका में, द्वितीय बांझपन का सामना कर रहे एक दम्पति ने सरोगेसी का उपयोग करने की मांग की, क्योंकि सरोगेसी अधिनियम के तहत, दूसरे बच्चे के लिए सरोगेसी का सहारा नहीं लिया जा सकता है। उनके वकील ने तर्क दिया कि राज्य नागरिकों के निजी जीवन और प्रजनन विकल्पों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। द्वितीयक बांझपन तब होता है जब एक दम्पति गर्भधारण करने में असमर्थ होता है, या गर्भावस्था को पूर्ण अवधि तक ले जाने में असमर्थ होता है, हालांकि उन्होंने पहले प्राकृतिक रूप से बच्चों को जन्म दिया है। इसके कारण प्राथमिक बांझपन के समान हैं - पॉलीसिस्टिक ओवरी सिंड्रोम, एंडोमेट्रियोसिस और जीवनशैली कारक। याचिकाकर्ताओं ने सरोगेसी के माध्यम से दूसरा बच्चा पैदा करने से छूट मांगी, यह प्रस्तुत करते हुए कि एआरटी और सरोगेसी अधिनियमों दोनों में सरोगेसी के संदर्भ में 'बांझपन' की परिभाषा केवल प्राथमिक बांझपन तक ही सीमित नहीं थी। भारत के सरोगेसी (विनियमन) अधिनियम, 2021 की धारा 4(iii)(सी)(II) के तहत, एक दंपत्ति सरोगेसी के लिए तभी पात्र होता है जब उनका कोई जीवित बच्चा (जैविक, गोद लिया हुआ या सरोगेसी के माध्यम से) न हो। अपवाद केवल तभी किए जाते हैं जब मौजूदा बच्चा मानसिक या शारीरिक रूप से विकलांग हो या उसे कोई जानलेवा विकार हो। सरकार ने इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए तर्क प्रस्तुत किए कि सरोगेसी को मौलिक अधिकार नहीं माना जा सकता है और इसमें किसी अन्य महिला के शरीर का उपयोग शामिल है। जबकि न्यायाधीश ने मौखिक रूप से टिप्पणी की कि प्रावधान के तहत लगाया गया प्रतिबंध "उचित" था, न्यायालय ने यह जांचने का निर्णय लिया है कि क्या द्वितीयक बांझपन का सामना कर रहे विवाहित जोड़ों को दूसरा बच्चा पैदा करने के लिए सरोगेसी का उपयोग करने से प्रतिबंधित करने वाला कानून नागरिकों के प्रजनन विकल्पों पर प्रतिबंध लगाता है।

यह ध्यान देने योग्य है कि न्यायालय ने हाल ही में सरोगेसी के लिए आयु संबंधी विनिर्देश को हल्का कर दिया है, जिससे उन दम्पतियों को आयु में छूट मिल गई है जिन्होंने अधिनियम पारित होने से पहले भ्रूण को फ्रीज करा लिया था। यदि कानून का घोषित उद्देश्य, जैसा कि बहस के चरण में तर्क दिया गया है, बढ़ते प्रजनन केंद्रों (एआरटी अधिनियम के साथ मिलकर) को विनियमित करने के अलावा, व्यावसायिक सरोगेसी या कमजोर महिलाओं का फायदा उठाने वाली शोषणकारी स्थितियों को रोकना है, तो प्राथमिक और द्वितीयक प्रजनन क्षमता के बीच अंतर करने वाले प्रतिबंध लगाना बाल की खाल निकालने जैसा प्रतीत होता है। वर्तमान में, भारत में किसी व्यक्ति द्वारा पैदा किए जा सकने वाले बच्चों की संख्या को सीमित करने वाला कोई कानून नहीं है, हालाँकि कई राज्यों ने सरकारी लाभों, नौकरियों या राजनीतिक मामलों के संदर्भ में दो-बच्चों के मानदंड को प्रोत्साहित किया है। कानून की एक अधिक व्यापक व्याख्या, जो सभी जरूरतमंदों के लिए प्रौद्योगिकी के लाभों तक पहुँच को सुगम बनाती है, दो आवश्यकताओं को पूरा करने की संभावना रखती है - इच्छुक माता-पिता की सहायता करना, और व्यावसायिक सरोगेसी को रोकना।

भोजन में न्याय

खाद्य प्रणालियों में न्याय का तात्पर्य स्वस्थ, किफायती आहार की ओर संक्रमण से है

यह दिखाकर कि केवल भोजन ही वजन बढ़ाता है

ग्रहीय सीमाओं के उल्लंघन और दुनिया भर में लगभग 30% ग्रीनहाउस-गैस उत्सर्जन के बावजूद, नई 'ईएटी-लैंसेट कमीशन ऑन हेल्दी, सस्टेनेबल एंड जस्ट फूड सिस्टम्स' रिपोर्ट दिखाती है कि खाद्य प्रणालियाँ किस तरह अतिव्यापी जलवायु, जैव विविधता, जल और प्रदूषण संकटों के केंद्र में हैं। पशुओं से प्राप्त खाद्य पदार्थ अधिकांश कृषि उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार हैं जबकि अनाज नाइट्रोजन, फास्फोरस और जल के उपयोग में प्रमुख हैं। केवल संयुक्त कार्रवाई, जिसमें खाद्य हानि में कटौती, बढ़ी हुई और टिकाऊ उत्पादकता लाभ और आहार परिवर्तन शामिल हैं, इन प्रवृत्तियों को उलट सकते हैं। जैव-रासायनिक प्रवाह पर भविष्यवाणी स्पष्ट है: वर्तमान कृषि वैश्विक नाइट्रोजन-जन अधिशेष को सुरक्षित सीमा से दोगुने से भी अधिक छोड़ती है। अच्छी नीति द्वारा बिना सुधारे छोड़े गए पर्यावरण लाभ भी अधिक उत्पादन को बढ़ावा दे सकते हैं जो पर्यावरणीय बचत को मिटा देता है। आयोग व्यावहारिक भी है, यह स्वीकार करते हुए कि आहार परिवर्तन से लेकर उत्सर्जन न्यूनीकरण तक, सभी उपायों को मिलाकर, सदी के मध्य तक जलवायु और मीठे पानी के संकट के मुकाबले दुनिया की खाद्य प्रणालियाँ मुश्किल से ही सुरक्षित स्थिति में आ पाएँगी ; पोषक तत्वों की सुरक्षा पर दबाव बना रहेगा। यह एक संदिग्ध धारणा ज़रूर बनाता है, कि 30 वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद 127% बढ़ेगा, जबकि नीति को कम वृद्धि और बदतर जलवायु झटकों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

रिपोर्ट के अनुसार, भारत अनाज-भारी आहार बनाए रखता है, जबकि 2050 तक के मानकों को पूरा करने के लिए अधिक सब्ज़ियाँ, फल, मेवे और फलियाँ आवश्यक हैं, जिससे औसत उपभोक्ता कीमतें बढ़ सकती हैं। इन खाद्य पदार्थों का आयात करने वाले क्षेत्रों में सामर्थ्य पहले से ही कमज़ोर है, जिससे उपभोक्ताओं को मूल्य झटकों का सामना करना पड़ रहा है। इस प्रकार न्याय का तात्पर्य है कीमतों को नियंत्रण में रखते हुए अधिक स्वस्थ, विविध आहारों की ओर संक्रमण। लेकिन आहार में बदलाव हमेशा वांछनीय नहीं हो सकता: प्राथमिकताएँ धर्म, जाति और सुविधा पर आधारित होती हैं, और मध्याह्न भोजन तथा खरीद प्रतिबद्धताओं के संदर्भ में आवश्यकता पर आधारित होती हैं। इसलिए, आहार-आधारित रणनीति के बजाय, नए मानक हानिकारक इनपुट को कम कर सकते हैं, पैमाने के उपाय न्यूनतम प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों को सस्ता बना सकते हैं, और खरीद क्षेत्रीय रूप से परिचित, अधिक किफायती व्यंजनों को सामान्य बना सकती है। फिर भी, जल संकट, क्षरित मिट्टी और शीत श्रृंखलाओं तथा प्रसंस्करण में जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता को दूर करने के लिए आपूर्ति-पक्ष सुधार आवश्यक है। भारत को भूजल निकालने के लिए निहित, खुले प्रोत्साहनों से भी दूर जाने की आवश्यकता है।

अंततः, आयोग बाज़ार संकेन्द्रण, श्रम और पर्यावरणीय क्षति को रोकने के लिए कमज़ोर प्रोत्साहन, और अनुचित कॉर्पोरेट प्रभाव को ऐसे कारक मानता है जो बदलाव में बाधा डाल सकते हैं। दूसरी ओर, न्याय के लिए श्रमिकों और छोटे उत्पादकों द्वारा मज़बूत सामूहिक सौदेबाज़ी और नियामक प्रक्रियाओं में उपभोक्ताओं का प्रतिनिधित्व आवश्यक है। ये सुरक्षा उपाय आज आंशिक रूप से ही सही, लेकिन व्यवहार में सुनिश्चित किए जाने की आवश्यकता है।

कल्याणकारी संरचना को पुनः तैयार करें, केंद्र में यूबीआई रखें

जैसे -जैसे भारत का धन अंतर स्तर तक बढ़ता है

सप्तगिरि शंकर उलाका
का सदस्य है
संसद (लोकसभा)
सभा), भारतीय
राष्ट्रीय कांग्रेस, और अध्यक्ष,
ग्रामीण मामलों की स्थायी समिति
विकास और
पंचायती राज

आज़ादी के बाद से न देखा गया और प्रौद्योगिकी नीति से आगे निकल गई, हम खुद को संकटों, नौकरी छीनने वाले स्वचालन, गिग अर्थव्यवस्था की अस्थिरता, जलवायु-चालित विस्थापन और पुरानी असुरक्षा से प्रेरित मानसिक स्वास्थ्य टाइम बम के टकराव की ओर बढ़ते हुए पाते हैं। इस समय, सार्वभौमिक बुनियादी आय (यूबीआई) जैसे विचार, जिन्हें कभी काल्पनिक कहकर खारिज कर दिया गया था, एक नए, व्यावहारिक रूप से देखने के हकदार हैं। एक यूबीआई बड़े पैमाने पर बेरोजगारी को कम कर सकता है, उपभोक्ता मांग को बहाल कर सकता है जब मशीनों की संख्या श्रमिकों से अधिक हो जाती है, औपचारिक अर्थव्यवस्था को सहारा देने वाली अवैतनिक देखभाल को पुरस्कृत कर सकता है, और महामारी और पूंजीवाद दोनों से प्रभावित सामाजिक अनुबंध का पुनर्निर्माण कर सकता है। भारत में, जहाँ कल्याण प्रणालियाँ अक्सर कमियों, बहिष्करणों और जटिल पात्रता फ़िल्टरों से ग्रस्त होती हैं, एक यूबीआई एक क्रांतिकारी लेकिन सरल प्रस्ताव प्रदान करता है: अपने डिजाइन में गरिमा, स्वायत्तता और सरलता को शामिल करके, यूबीआई हमें इस बात पर पुनर्विचार करने की चुनौती देती है कि 21वीं सदी में कल्याणकारी राज्य को क्या प्रदान करना चाहिए।

सार्वभौमिकता यूबीआई की प्राथमिक ताकत है। जहाँ बिस्मार्क और बेवरिज के मॉडल सुरक्षा को पिछले रोज़गार या नौकरशाही द्वारा दी गई कठिनाइयों के प्रमाण से जोड़ते हैं, वहीं यूबीआई इसे केवल नागरिकता में ही स्थापित करता है, सामाजिक सुरक्षा को एक सुव्यवस्थित, अधिकार-आधारित व्यवस्था में बदल देता है जो स्वचालन के झटकों, जलवायु संबंधी आपात स्थितियों और देखभाल के अदृश्य श्रम के प्रति लचीला है। यह लक्षित कल्याण की प्रशासनिक जटिलताओं को दरकिनार करता है और गरीबी-आधारित अधिकारों से जुड़े कलंक को दूर करता है। इसका उद्देश्य सभी के लिए आय सुरक्षा का एक बुनियादी स्तर बनाना है, यह सुनिश्चित करते हुए कि नौकरशाही की खामियों या सशर्त पहुँच के कारण कोई भी पीछे न छूटे।

भारत में यूबीआई के पक्ष में तर्क भारत का वर्तमान कल्याण परिदृश्य, यद्यपि विस्तृत है, फिर भी खंडित और असमान बना हुआ है।

योजनाओं में लीकेज, दोहराव और बहिष्करण की समस्याएँ हैं। यूबीआई कल्याणकारी योजनाओं के वितरण को सुव्यवस्थित करने का एक तरीका प्रदान करता है, खासकर आधार और प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (डीबीटी) जैसे डिजिटल बुनियादी ढाँचे के परिपक्व होने के साथ। लेकिन यूबीआई का तर्क केवल प्रशासनिक नहीं है; यह मूलतः नैतिक और आर्थिक है।

वृहद आँकड़े हमें प्रभावित करते हैं। इस वर्ष की शुरुआत में, प्रेस सूचना ब्यूरो (पीआईबी) ने उपभोग-आधारित गिनी सूचकांक का हवाला देते हुए दावा किया था कि भारत आय समानता के मामले में विश्व स्तर पर चौथे स्थान पर है। हालाँकि, यह सूचकांक आय या संपत्ति पर नहीं, बल्कि घरेलू व्यय पर केंद्रित है, और इस प्रकार आर्थिक असमानता की वास्तविक सीमा को छुपाता है। विश्व असमानता डेटाबेस के अनुसार, भारत की संपत्ति असमानता गिनी 2023 में 75 पर पहुँच गई। जनसंख्या के शीर्ष 1% के पास राष्ट्रीय संपत्ति का 40% हिस्सा है, जबकि शीर्ष 10% के पास लगभग 77% संपत्ति है। ये आँकड़े औपनिवेशिक काल से अभूतपूर्व संकेंद्रण के स्तर का संकेत देते हैं।

इसी समय, भारत की जीडीपी वृद्धि दर 8.4% रही।

आज के संकटग्रस्त विश्व में, सार्वभौमिक बुनियादी आय (यूबीआई) जैसे विचार एक तत्काल नीतिगत आवश्यकता हैं।

2023-24 — व्यापक समृद्धि में तब्दील होने में विफल रहा है। नोबेल पुरस्कार विजेता जोसेफ स्टिग्लिट्ज़ लंबे समय से तर्क देते रहे हैं कि जीडीपी, आर्थिक उत्पादन को मापते हुए, जीवन की गुणवत्ता, पर्यावरणीय स्थिरता या समानता को ध्यान में नहीं रखता। यह विसंगति 2023 की विश्व खुशहाली रिपोर्ट में 137 देशों में से भारत के 126वें स्थान पर आने से स्पष्ट होती है - जो नेपाल, बांग्लादेश और पाकिस्तान से भी पीछे है। जीडीपी-केंद्रित आख्यान बढ़ती अनिश्चितता, नौकरी की असुरक्षा और सामाजिक तनाव को छिपाते हैं।

बिना किसी फॉर्म या पक्षपात के प्रत्येक जन धन खाते में एक मामूली, बिना शर्त जमा होने का मतलब है कि एक गिग-वर्कर तब भी सब्जियां खरीद सकता है जब ऐप शांत हो और एक रिक्शा चालक का बच्चा नए जूतों के साथ स्कूल की शुरुआत कर सकता है।

इसलिए, यूबीआई अत्यधिक संकेन्द्रण को कम करता है, एक-एक मुफ्त चीजों के आकर्षण को कम करता है, तथा तिमाही स्प्रेडशीट के बजाय हर रसोईघर में विकास को बढ़ावा देता है।

भारत में पायलट अध्ययन, जिसमें स्व-सहायता समूह भी शामिल है मध्य प्रदेश में एम्प्लॉयड विमेन्स एसोसिएशन (सेवा) के नेतृत्व वाली पहल (2011-13) में पाया गया कि यूबीआई लाभार्थियों को बेहतर पोषण, स्कूल में उपस्थिति में वृद्धि और उच्च आय का अनुभव हुआ। फ़िनलैंड, केन्या और ईरान में अंतर्राष्ट्रीय परीक्षणों में भी इसी तरह के परिणाम सामने आए, जहाँ काम करने की इच्छा में कमी के बिना मानसिक स्वास्थ्य और खाद्य सुरक्षा में सुधार हुआ।

स्वचालन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता यूबीआई की आवश्यकता को और भी ज़रूरी बना देते हैं। मैकिन्से ग्लोबल इंस्टीट्यूट की एक रिपोर्ट के अनुसार, स्वचालन के कारण 2030 तक दुनिया भर में 80 करोड़ नौकरियाँ खत्म हो सकती हैं। भारत का अर्ध-कुशल और अनौपचारिक कार्यबल विशेष रूप से असुरक्षित है। यूबीआई इस बदलाव के दौरान एक सहारा प्रदान कर सकता है, जिससे श्रम बाजार में कौशल उन्नयन और पुनर्स्थापन के लिए समय मिल सकता है।

यह नागरिक-राज्य संबंधों को नए सिरे से परिभाषित करेगा । यूबीआई का दार्शनिक तर्क भी उतना ही आकर्षक है। दशकों से, नागरिक और राज्य के बीच संबंध काफी हद तक लेन-देन पर आधारित रहे हैं, जो बाजार की भागीदारी और आर्थिक योगदान से परिभाषित होते रहे हैं। यूबीआई, उस अत्यंत लोकलुभावन, उपभोक्ता-से-मतदाता की राजनीति का एक संरचनात्मक प्रतिकारक है जिसकी श्रुति कपिला आलोचना करती हैं।

यह अस्थायी मुफ्त सुविधाओं, जैसे कि कहीं मुफ्त बिजली, कहीं कर्जमाफी, का लालच देने के राजनीतिक प्रोत्साहन को खत्म कर देता है, जिसका इस्तेमाल पार्टियां अल्पकालिक वफादारी बनाने के लिए करती हैं। जब आय सुरक्षा को पक्षपातपूर्ण उदारता से अलग कर दिया जाता है, तो मतदाता लेन-देन के मोहताज कम होते हैं और सरकारों का मूल्यांकन प्रणालीगत परिणामों, जैसे स्कूलों की गुणवत्ता, कानून का शासन और पर्यावरणीय प्रबंधन, के आधार पर करने के लिए अधिक सशक्त होते हैं। इस अर्थ में, यूबीआई उपभोक्तावाद ("मुझे वोट दें, बिजली की रियायती इकाइयाँ प्राप्त करें") से रिश्ते को नागरिकता ("आपके पास पहले से ही एक बुनियादी आर्थिक अधिकार है; अब सुशासन की मांग करें") की ओर मोड़ देता है।

यह पैतृक संरक्षण की राजनीति को अधिकार-आधारित सामाजिक अनुबंध से प्रतिस्थापित करता है, तथा अभाव, लक्षित सब्सिडी और नैतिक दिखावे पर पनपने वाली लोकलुभावन योजनाओं को कमजोर करता है।

यह चिंता कि मूल आय चेक से रोजमर्रा की कीमतें आसमान छू जाएंगी, इस बात से मेल नहीं खाती कि

लोग वहीं रहते हैं जहाँ ऐसे चेक पहले से मौजूद हैं। वाइमर और ज़िम्बाब्वे जैसे बड़े बदलाव तब हुए जब कारखाने बंद हो गए और कर्ज़ विदेशी मुद्रा में चुकाए गए, न कि इसलिए कि आम लोगों को थोड़ा अतिरिक्त खर्च करने का पैसा मिल गया। यूबीआई को ज़िम्मेदारी से वित्तपोषित करें, अलमारियों में स्टॉक रखें, और यह मुश्किलों से निपटने का एक सहारा बनेगा, न कि कीमतों में बढ़ोतरी का कारण। यूबीआई को बेहद अव्यावहारिक या राजनीतिक रूप से जोखिम भरा मानकर खारिज करने के बजाय, हमें इसे गंभीरता से लेना चाहिए, गरीबी कम करने, असमानता कम करने और लोकतांत्रिक नागरिकता को मज़बूत करने के एक साधन के रूप में।

यह समझना ज़रूरी है कि यूबीआई कोई रामबाण इलाज नहीं है। यह अपने आप में रोज़गार पैदा नहीं करेगा, सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियों को बेहतर नहीं बनाएगा या शिक्षा के परिणामों में कोई बदलाव नहीं लाएगा। लेकिन यह एक आधार के रूप में काम कर सकता है - एक न्यूनतम स्तर की आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना जिसके आधार पर व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं और आकांक्षाओं से भरा जीवन जी सकें। यह अवैतनिक श्रम, विशेष रूप से महिलाओं द्वारा किए जाने वाले देखभाल कार्यों को भी मान्यता देता है और उनका समर्थन करता है, जो पारंपरिक आर्थिक मानकों में अदृश्य रहता है। यूबीआई का उद्देश्य निर्भरता को बढ़ावा देना नहीं है; बल्कि अवसरों का विस्तार करना है।

कुछ मुद्दे जैसे वित्तपोषण , अपने वादों के बावजूद, यूबीआई जायज़ चिंताएँ पैदा करता है। प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष ₹7,620 की न्यूनतम यूबीआई — जो गरीबी रेखा के बराबर है — भारत के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 5% खर्च करेगी। इस तरह की पहल के वित्तपोषण के लिए या तो करों में वृद्धि करनी होगी, सब्सिडी को तर्कसंगत बनाना होगा, या उधारी बढ़ानी होगी, जिनमें से प्रत्येक के अपने आर्थिक निहितार्थ हैं।

इसके अलावा, यूबीआई की सार्वभौमिकता, गरीबों के साथ-साथ समृद्ध वर्गों को भी संसाधन आवंटित करके, इसके पुनर्वितरण के इरादे को कमजोर कर सकती है।

एक व्यावहारिक उपाय यह होगा कि यूबीआई को चरणों में लागू किया जाए। कमज़ोर समूहों - महिलाओं, बुज़ुर्गों, विकलांग व्यक्तियों और कम आय वाले श्रमिकों - को प्राथमिकता दी जा सकती है। इस लक्षित क्रियान्वयन से पूर्ण पैमाने पर कार्यान्वयन से पहले मूल्यांकन और बुनियादी ढाँचे के निर्माण का अवसर मिलेगा। यूबीआई, सार्वजनिक वितरण प्रणाली और महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी जैसी ज़रूरी योजनाओं की जगह लेने के बजाय, विशेष रूप से शुरुआती चरणों में, उनकी पूरक योजना भी बन सकती है।

एक

अन्य प्रमुख चुनौती तकनीकी पहुंच है। आधार और जन-धन ने वित्तीय समावेशन का विस्तार किया है, लेकिन डिजिटल साक्षरता, मोबाइल पहुँच और बैंक कनेक्टिविटी में अभी भी कमियाँ हैं, खासकर आदिवासी, दूरदराज और वंचित इलाकों में। सार्वभौमिक बनने वाली इस योजना से वंचित लोगों को रोकने के लिए इन कमियों को दूर करना ज़रूरी है।

चूँकि भारतीय राज्य अपने कल्याणकारी ढाँचे का आधुनिकीकरण करना चाहता है, इसलिए यूबीआई को इस चर्चा में केंद्रीय स्थान मिलना चाहिए। इतिहास बताता है कि भारत इस प्रश्न पर हमारी सोच से भी पहले पुनर्विचार करेगा। अब गणना यह नहीं है कि 'क्या हम यूबीआई को वहन कर सकते हैं?' बल्कि यह है कि 'क्या हम व्यापक असुरक्षा की लोकतांत्रिक कीमत को वहन कर सकते हैं?' 21वीं सदी के कल्याणकारी ढांचे के लिए साधन-परीक्षण नहीं, बल्कि सार्वभौमिकता ही आधारभूत संरचना है।

राज्य।

व्यक्त विचार व्यक्तिगत हैं

जैसे-जैसे एसआईआर का अगला चरण आगे बढ़ रहा है, असम का मामला

फ़ुज़ैल अहमद
अय्यूबी
एक
सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष
एडवोकेट-ऑन-रिकॉर्ड
भारत का न्यायालय

भारत निर्वाचन आयोग के साथ (ईसीआई) ने बिहार पायलट प्रोजेक्ट के बाद कई राज्यों में विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) के एक नए चरण के बीच, ईसीआई के खिलाफ विपक्ष द्वारा लगाया गया मुख्य आरोप यह है कि चुनाव निकाय एक "पिछले दरवाजे से एनआरसी" का संचालन करना चाहता है - यह राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एनआरसी) का संदर्भ है जो असम में तैयार किया गया था और अन्य राज्यों में भी कुछ समूहों द्वारा इसकी मांग की गई थी।

27 अक्टूबर को एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में, ईसीआई ने कहा उन्होंने स्पष्ट किया था कि राष्ट्रव्यापी एसआईआर का दूसरा चरण असम तक नहीं बढ़ाया जाएगा, जहाँ अगले साल चुनाव होने हैं। मुख्य चुनाव आयुक्त (सीईसी) ने कहा कि नागरिकता अधिनियम, 1955, असम के लिए अलग प्रावधान करता है, लेकिन भारत के सर्वोच्च न्यायालय की निगरानी में नागरिकता निर्धारण का काम "लगभग पूरा होने वाला है" - एक ऐसा दावा जिसे प्रासंगिक बनाने की आवश्यकता है और जो चुनाव आयोग के अधिकार क्षेत्र पर एक बुनियादी सवाल खड़ा करता है।

अधिकार क्षेत्र का मुद्दा यह बताने के लिए किसी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है कि बिहार एसआईआर की प्रमुख आलोचनाओं में से एक यह थी कि भारत के चुनाव आयोग ने उन लोगों से सीमित दस्तावेजों के आधार पर नागरिकता का प्रमाण मांगा था, जिनका नाम 2003 में मतदाता सूची में नहीं था। ऐसा इसलिए है क्योंकि भारत के चुनाव आयोग के अपने दिशानिर्देशों के अनुसार, यदि किसी व्यक्ति की नागरिकता संदिग्ध पाई जाती है, तो उसे नागरिकता अधिनियम के तहत सक्षम प्राधिकारी के पास भेजा जाना चाहिए।

हालांकि, असम अपवाद और इसकी सूक्ष्म व्याख्या में, ईसीआई ने नागरिकता सुनिश्चित करने में अपने अधिकार क्षेत्र पर सबसे बड़े संदेह को दबा दिया है, क्योंकि असम में इस तरह की कोई भी प्रक्रिया करने से एक नई कानूनी बाधा उत्पन्न होती - एक तो न्यायालय की निरंतर निगरानी में असम में पहले से ही एनआरसी तैयार किया जा रहा है और अंततः, नागरिकता अधिनियम के तहत सशक्त प्राधिकारी न होने के बावजूद राज्य के निवासियों को उनकी नागरिकता के संबंध में एक और कठोर प्रक्रिया से गुजरना पड़ता।

मुख्य चुनाव आयुक्त ने यह स्पष्टीकरण क्यों दिया कि नागरिकता

लंघन करके असम के लिए विशेष गहन संशोधन, चुनाव आयोग भारत नागरिकता सत्यापन प्राधिकरण के रूप में अपने अधिकार क्षेत्र से संबंधित प्रश्नों को आसानी से टाल देता है

असम के लिए एनआरसी का पूरा होना एक दिखावा है, क्योंकि असम में एनआरसी पांच साल पहले ही सुप्रीम कोर्ट की निगरानी में तैयार हो चुका था।

31 अगस्त, 2019 को, असम के एनआरसी के राज्य समन्वयक कार्यालय ने "31 अगस्त, 2019 को अंतिम एनआरसी का प्रकाशन" शीर्षक से एक प्रेस विज्ञप्ति जारी की, जिसमें सूचित किया गया कि असम में एनआरसी को अद्यतन करने की प्रक्रिया पूरी हो गई है। यह असम और भारत के लिए एक महत्वपूर्ण क्षण था, जिसने आज़ादी के बाद असम को देश की सर्वोच्च अदालत की निगरानी में इतने बड़े पैमाने पर यह प्रक्रिया संचालित और संपन्न करने वाला एकमात्र राज्य बना दिया।

राज्य समन्वयक की प्रेस विज्ञप्ति के अनुसार, 68.38 लाख आवेदनों के माध्यम से कुल 3.30 करोड़ लोगों ने आवेदन किया था। हितधारकों के साथ वर्षों के विचार-विमर्श और परामर्श के बाद, नागरिकता दस्तावेजों की जाँच और सत्यापन के लिए एक विस्तृत कानूनी ढाँचा विकसित किया गया। यह विशाल प्रक्रिया लगभग 52,000 राज्य अधिकारियों की भागीदारी और न्यायालय की निरंतर निगरानी और पर्यवेक्षण में पूरी की गई। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप 3,11,21,004 लोगों को अंतिम एनआरसी में शामिल होने के योग्य पाया गया, जबकि 19,06,657 लोगों को बाहर रखा गया। इस विशाल प्रक्रिया पर ₹1,600 करोड़ से अधिक की लागत आई।

अगर एनआरसी को संवैधानिक और कानूनी तौर पर लागू रहने दिया जाता है, तो चुनाव आयोग को स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने की अपनी प्राथमिक भूमिका पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए, न कि एक समानांतर नागरिकता न्यायाधिकरण की भूमिका निभानी चाहिए। असम पहले से ही एकमात्र ऐसा राज्य होने का बोझ ढो रहा है जहाँ सर्वोच्च न्यायालय की निगरानी में पूर्ण पैमाने पर नागरिकता सत्यापन किया गया है, और इसके निवासियों को अनिश्चितता और नौकरशाही जाँच के एक और दौर से बचाए जाने का हक़ है। इससे कम कुछ भी नाज़ुक सामाजिक ताने-बाने को अस्थिर कर सकता है और भारत की संस्थाओं में विश्वास को कम कर सकता है।

धारा 6ए, असम के लिए एक अनूठी व्यवस्था एनआरसी की पृष्ठभूमि में असम में नागरिकता पर बहस का एक प्रमुख मुद्दा था - नागरिकता अधिनियम, 1955 की धारा 6ए।

असम समझौते के एक भाग के रूप में 1985 में प्रस्तुत इस प्रावधान ने नागरिकता की एक अलग कानूनी व्यवस्था बनाई जो केवल असम पर लागू थी, तथा विदेशियों की पहचान और निर्वासन के लिए देश के बाकी हिस्सों से अलग समय-सीमा निर्धारित की गई।

अक्टूबर 2024 में, एक पंच-न्यायाधीश पीठ नागरिकता अधिनियम, 1955 की धारा 6ए के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 6ए की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा, इस ढांचे को असम के लिए एक विशेष उपाय के रूप में पुनः सशक्त बनाया और बंधुत्व के प्रस्तावना मूल्य के साथ इसकी अनुकूलता पर ज़ोर दिया। इस निर्णय ने इस विचार को पुष्ट किया कि असम के नागरिकता प्रश्न को अन्य राज्यों की तरह ही नहीं देखा जा सकता है, और इसकी ऐतिहासिक, राजनीतिक और कानूनी विशिष्टता को संरक्षित और सम्मानित किया जाना चाहिए।

परिप्रेक्ष्य में, अन्य राज्यों के विपरीत, नागरिकता और प्रवासन से संबंधित कानूनी मुद्दे, कम से कम पिछली आधी सदी से असम में अद्वितीय रहे हैं। असम में नागरिकता की कानूनी स्थिति के संबंध में एक के बाद एक फैसले इस विशिष्टता को पुष्ट करते हैं। इसलिए, विशिष्ट कानूनी परिदृश्य के बावजूद, नागरिकता पर जांच के समान तरीके से असम में एसआईआर करने के चुनाव आयोग के किसी भी प्रयास के लिए, उसे कई चरणों में सावधानी से काम करना होगा।

कोई यह भी तर्क दे सकता है कि यदि एनआरसी-असम पहले ही तैयार हो चुका है, तो ईसीआई को उस डेटा का उपयोग करने और असम में अन्य राज्यों की तुलना में इस प्रक्रिया को शीघ्र पूरा करने से क्या रोक रहा है?

यह भी उल्लेखनीय है कि एनआरसी के मामले में असम को चुनाव की समय-सीमा पूरी करने के लिए तैयार नहीं किया गया था; इसे राज्य के सभी हितधारकों के साथ व्यापक और समावेशी परामर्श के बाद अंतिम रूप दिया गया था।

इसलिए, 31 अगस्त, 2019 को एनआरसी का समापन एक व्यापक परामर्श प्रक्रिया के माध्यम से हुआ, जिसकी हर चरण पर सर्वोच्च न्यायालय की एक विशेष पीठ द्वारा निगरानी की गई। चुनाव आयोग के लिए इस प्रक्रिया और एनआरसी में शामिल लोगों के मतदाता सूची से बाहर होने की संभावना को नज़रअंदाज़ करना निश्चित रूप से कठिन होगा, जिससे चुनाव आयोग असहज स्थिति में पड़ जाएगा।

संपादक के नाम चिठी

पहला चरण

मैंने बिहार विधानसभा चुनाव के पहले चरण (जगदीशपुर निर्वाचन क्षेत्र) में अपना वोट डाला और यह मेरे लिए गर्व और यादगार क्षण था क्योंकि मैं पहली बार वोट डाल रहा था। अलग-अलग पृष्ठभूमि से आए लोगों के साथ कतार में खड़े होकर मुझे लोकतंत्र की असली ताकत का एहसास हुआ। व्यवस्थाएँ सुचारू थीं, और अधिकारी बहुत सहयोगी थे। वोट डालने से मुझे बिहार के भविष्य को आकार देने की ज़िम्मेदारी का एहसास हुआ।

मैं प्रत्येक पात्र नागरिक से अगले चरण में मतदान करने का आग्रह करता हूँ और अपने निर्णय और विश्वास के आधार पर अपने उम्मीदवारों और पार्टियों का चयन करते हैं।

आइए, एक मजबूत और बेहतर बिहार के निर्माण के लिए समझदारी से मतदान करें।

मोहम्मद साबिर हुसैन, आरा, बिहार

बिहार के लोगों को घिसे-पिटे वादों की नहीं, बल्कि प्रगति के लिए एक रोडमैप की ज़रूरत है। राज्य के युवाओं और प्रवासी समुदाय में प्रतिभा, ऊर्जा और महत्वाकांक्षा है, फिर भी राजनीति जातिवाद और लोकलुभावनवाद के पुराने चक्र में फंसा हुआ है।

रचिता,
चंडीगढ़

letters@thehindu.co.in पर भेजे गए पत्रों में डाक पता अवश्य होना चाहिए।

https://t.me/AllNewsPaperPaid1

राष्ट्रीय सहारा
पटना। शुक्रवार • 7 नवंबर • 2025
www.rashtriyasahara.com

अनमोल वचन

हताश न होना सफलता का मूल है और यही परम सुख है। उत्साह मनुष्य को कर्मों में प्रेरित करता है और उत्साह ही कर्म को सफल बनाता है।
-वाल्मीकि

आधार विजन 2032 डिजिटल पहचान का नया अध्याय

यूआईडीएआई द्वारा हाल ही में घोषित आधार विज़न 2032 सरकार की एक अत्यंत महत्वाकांक्षी और दूरदर्शी पहल है। यह संकेत है कि भारत अब अपनी डिजिटल पहचान प्रणाली को आने वाले दशक के लिए अधिक मजबूत, सुरक्षित और समावेशी बनाने की दिशा में अग्रसर है। यह केवल तकनीकी उन्नयन का दस्तावेज़ नहीं, बल्कि एक रणनीतिक दृष्टि-पत्र है, जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ब्लॉकचेन और क्वांटम-एन्क्रिप्शन जैसी आधुनिक तकनीकों से आधार की संरचना को भावी चुनौतियों के अनुरूप ढालने की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। इसी उद्देश्य से केंद्र सरकार ने एक उच्चस्तरीय विशेषज्ञ समिति गठित कर इस विज़न का प्रारूप तैयार करने का निर्णय लिया है। यह सत्य है कि आधार ने करोड़ों नागरिकों के लिए जनसेवाओं की पहुँच आसान बनाई, लेकिन इसके साथ ही डेटा सुरक्षा, बायोमेट्रिक सत्यापन की सीमाएँ, और ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल अस्वीकृति जैसी चुनौतियाँ भी सामने आईं। इन समस्याओं ने प्रणाली की विश्वसनीयता पर प्रश्न उठाए। प्रतिदिन करोड़ों प्रमाणित लेन-देन और बढ़ते साइबर-खतरों ने सरकार को इस प्रणाली में सुधार और पुनर्गठन की आवश्यकता का एहसास कराया। अतः विज़न 2032 का

उद्देश्य केवल तकनीकी बदलाव नहीं, बल्कि डिजिटल सेवाओं को मानव सुविधाओं के केंद्रित बनाना भी है जहाँ सुरक्षा, सरलता और समावेशन तीनों को समान महत्व मिले और जन आकांक्षाएं।

आसानी से पूरी हो सके। नई तकनीकों जैसे क्वांटम-एन्क्रिप्शन और ब्लॉकचेन से डेटा की गोपनीयता में सुधार काफी हद तक। संभव है, परंतु इन्हें लागू करने का मार्ग केवल तकनीकी नहीं, बल्कि कानूनी, संस्थागत और वित्तीय आधारों पर भी सुदृढ़ होना चाहिए। अन्यथा, तकनीक के आधुनिकीकरण के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों और वंचित वर्गों तक इसका लाभ नहीं पहुँच सकेगा। इसी प्रकार, विकलांग और वृद्ध नागरिकों के लिए वैकल्पिक बायोमेट्रिक विकल्पों तथा ऑफ़लाइन डिजिटल टोकन जैसी व्यवस्थाओं का परीक्षण और प्रसार भी आवश्यक है। सरकार को चाहिए कि वह इस उपयोगी व्यवस्था को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए बिना किसी संकोच के कड़े, राष्ट्रहितकारी निर्णय ले। यदि यह महत्वाकांक्षी योजना सफलतापूर्वक लागू होती है, तो इसका चौमुखी प्रभाव देश की शासन-प्रणाली पर सबसे अधिक होगा। आधार केवल पहचान का माध्यम न रहकर सरकारी योजनाओं के निष्पादन, बैंकिंग समावेशन, स्वास्थ्य सेवाओं और शिक्षा के साथ-साथ सरकारी योजनाओं की जनसाधारण में वितरण का सशक्त माध्यम बन सकता है। इससे न केवल योजनाओं की पारदर्शिता और गति बढ़ेगी, बल्कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली की खामियाँ भी दूर होंगी। विज़न 2032 की सफलता का अर्थ केवल तकनीक का विस्तार नहीं, बल्कि सामाजिक नीतियों और संसाधनों के पुनर्गठन से नागरिकों तक लाभ पहुँचाने की सरकार की प्रतिबद्धता है। लोकतांत्रिक जवाबदेही और समावेशन के मानदंडों को अक्षुण्ण रखना सरकार की सर्वोपरि जिम्मेदारी होती है। यदि विज़न 2032 के सिद्धांतों पर नीति-निर्माता, तकनीकी संस्थान और नागरिक समाज एकजुट होकर कार्य करें, तो भारत न केवल डिजिटल पहचान के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनेगा, बल्कि वैश्विक स्तर पर विश्वसनीयता, पारदर्शिता और नैतिक शासन का उदाहरण भी स्थापित करेगा। यदि सरकार की यह महत्वाकांक्षी योजना सफल होती है, तो भारत का डिजिटल भविष्य ही नहीं लोकतांत्रिक मूल्यों की भी रक्षा होगी

भारतीय चिंतन में समग्रता

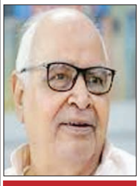

हृदयनारायण दीक्षित

भारतीय चिंतन में समग्रता में विचार मूल आवश्यक वैदिक पूर्वजों ने संसार को समग्रता से देखा । उन्होंने संपूर्ण अस्तित्व को ध्यान से देखा। आगमन और निगमन पद्धति से भी जांचा। अपनी-अपनी अनुभूति। अपनी अपनी समझा। लेकिन वास्तविक अनुभूति। संसार के प्रत्येक अणु और परमाणु समग्रता के ही भाग है। इस समग्रत्ता में भूमि, जन और वनस्पतियाँ भी सम्मिलित है। संसार का बड़ा भाग दिखाई पड़ रहा है। एक और बड़ा भाग दिखाई नहीं पड़ता। बहुत बड़ा भाग अव्यक्त है। संपूर्णता में चांद, तारे, सूरज और सभी ग्रह, उपग्रह, नदियां और पर्वत सहित ज्ञेय और अज्ञेय सम्मिलित है। ऋग्वेद के ऋषियों ने समग्रता से अभिभूत होकर इसका नाम अदिति रखा। अदिति एक वैदिक देवता है। लेकिन उनका प्रवाह और आच्छादन धरती आकाश को भी आवृत्त करता है। ऋषि कहते है, अदिति माता है। अदिति पिता है और अदिति हमारे पुत्र भी है। इस संसार में अब तक जो हो गया है और जो आगे होने वाला है सब अदिति है। अस्तित्व संपूर्ण है और संपूर्णता दो नहीं होती। बृहदारण्यक उपनिषद के एक मंत्र में कहते है, पूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णर्णात पूर्ण मच्यते। यह पूर्ण है। वह पूर्ण है। उस पूर्ण से यह पूर्ण निकला है। पूर्ण में पूर्ण घटाओ तो पूर्ण ही बचता है। यूरोप के विद्वानों को यह मंत्र अटपटा लगा। सामान्यतया पूर्ण में पूर्ण घटाओ तो शून्य बचना चाहिए। ऋषि ने इस मंत्र में पूर्ण को स्पष्ट कर दिया है। दो पूर्ण नहीं हो सकते। इसी पूर्णत्व को ऋषियों ने ब्रह्म कहा है। अध्यात्म और दर्शन में रुचि लेने वाले मनीषी थोड़ी-सी चूक करते है। कुछ लोग ब्रह्म को ब्रह्मा कहकर उसका व्यक्तित्व गढ़ने का प्रयास करते है। ब्रह्म वैयक्तिक नहीं है। वह समूचे अस्तित्व में व्याप्त है। उसके सभी अंश एक है। ब्रह्म की तुलना में समूचे अस्तित्व के लिए ब्रह्माण्ड शब्द प्रयुक्त होता है। लेकिन उपनिषद दर्शन में ब्रह्म शब्द की ही महत्ता है और वह संपूर्णता का द्योतक है। प्रश्न है कि ब्रह्मांड को उसकी संपूर्णता में क्या कहा जाए? पहले यह समझते है कि ब्रह्मांड का मूल अर्थ क्या है? ब्रह्माण्ड में ब्रह्म के साथ अण्ड शब्द जुड़ा है। ब्रह्म विराट है और ब्रह्माण्ड इस संपूर्ण ब्रह्म का अण्डा। वैज्ञानिकों ने सृष्टि सृजन के पहले की स्थिति का विचार किया है। विज्ञान के अनुसार लाखों बरस पहले एक समय ऐसा था कि अस्तित्व की संपूर्ण ऊर्जा एक बिंदु पर थी। सारी दुनिया की नदियां, सारी दुनिया की भूमि, आकाश, सूर्य, चन्द्र, सभी जीव, और सभी प्राणी और सारी ऊर्जा एक बिंदु पर समाहित थी। एक बिंदु में ही समूची दुनिया की ऊर्जा और द्रव्य समाहित थे। वैज्ञानिक काले सागन ने अपनी पुस्तक 'कॉसमोस' में लिखा है कि, इसे हम कॉस्मिक एग कह सकते है। अर्थात ब्रह्माण्ड कह सकते है। स्टीफन हॉकिंग का यही विचार था। ऋतु

> **ब्रह्म वैयक्तिक नहीं है। वह समूचे अस्तित्व में व्याप्त है। उसके सभी अंश एक हैं। ब्रह्म की तुलना में समूचे अस्तित्व के लिए ब्रह्माण्ड शब्द प्रयुक्त होता है। लेकिन उपनिषद दर्शन में ब्रह्म शब्द की ही महत्ता है और वह संपूर्णता का द्योतक है। प्रश्न है कि ब्रह्मांड को उसकी संपूर्णता में क्या कहा जाए? पहले यह समझते हैं कि ब्रह्मांड का मूल अर्थ क्या है? ब्रह्माण्ड में ब्रह्म के साथ अण्ड शब्द जुड़ा है।**

और समय भी अण्डे के भीतर थे। यह अण्डा फूट गया और इसके भीतर की ऊर्जा बाहर आ गई। ब्रह्म और अस्तित्व संपूर्ण है और संपूर्णता दो नहीं होती। बृहदारण्यक उपनिषद के एक मंत्र में कहते हैं, पूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णात पूर्ण मुद्दयते। यह पूर्ण है। वह पूर्ण है। है। उस पूर्ण से यह पूर्ण निकला है। पूर्ण में पूर्ण घटाओ तो पूर्ण ही बचता है। यूरोप के विद्वानों को यह मंत्र अटपटा लगा। सामान्यतया पूर्ण में पूर्ण घटाओ तो शून्य बचना चाहिए।

ब्रह्माण्ड के बीच में फर्क करना चाहिए। ब्रह्म अस्तित्व का पर्याय है और ब्रह्माण्ड उसका सूक्ष्म रूप। ब्रह्म वैदिक ऋषियों की गहन जिज्ञासा रहा है। इसी ब्रह्म को लेकर बादरायण ने ब्रह्मसूत्र लिखे थे। ब्रह्मसूत्र का पहला वाक्य ध्यान देने योग्य है-अथातो ब्रह्म जिज्ञासा। अर्थात हम ब्रह्म की जिज्ञासा करते है। तैत्तिरीय उपनिषद में ब्रह्म की जिज्ञासा है। उत्तर वैदिक काल का वातावरण अग्निधर्मा था। सारी दुनिया को जान लेने की जिज्ञासा थी। इस उपनिषद के अनुसार भृगु नाम के एक प्रख्यात त्रऋषि थे। उनके चित्त में ब्रह्म को जान लेने की इच्छा थी। वह वरुण के पुत्र थे। वरुण ऋग्वेद में एक देवता है लेकिन इस उपनिषद के एक ऋषि है। उन्हीं के पुत्र भूगु परम विद्वान थे। उन्होंने पिता से कहा, मै ब्रह्म को जानना चाहता हूं। आप मुझे कृपा करके ब्रह्म तत्व समझाइए। वरुण ने पुत्र भृगु से कहा, अन्न, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, मन और वाणी यह सभी ब्रह्म की उपलब्धि के द्वार है। इन सबमें ब्रह्म की सत्ता प्रकट हो रही है। प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले सब प्राणी जिनसे उत्पन्न होते है, उत्पन्न होकर जिनके सहयोग से, जिनका बल पाकर यह सब जीते है-जीवनोपयोगी क्रिया करने में समर्थ होते है और महाप्रलय के समय जिनमें विलीन हो जाते है, उनको वास्तव में जानने की (पाने की) इच्छा कर। वे ही ब्रह्म है। भृगु ने तदनुसार परिश्रम किया। भूगु ने पिता के उपदेश के अनुसार निश्चय किया कि अन्न ही ब्रह्म है। पिता द्वारा बताए गए ब्रह्म के लक्षण अन्न में पाए जाते है। समस्त प्राणियों का जीवन अन्न से सुरक्षित रहता है। इसी उपनिषद में अन्न की निदा न करने के निर्देश है। भृगु ने निश्चय किया कि अन्न हो ब्रह्म है। उन्होंने पिता को अपना मत बताया। पिता ने उनकी बात पर मौन साध लिया। भृगु ने फिर से प्रार्थना की कि, आप मुझे ब्रह्म तत्व समझाइए। पिता ने कहा कि तुम तप के द्वारा ब्रह्म को समझने की कोशिश करो। उसने तप किया। भृगु ने यह निश्चय किया कि प्राण ही ब्रह्म है। ब्रह्म के लक्षण प्राण में पाए जाते हैं। प्राणी प्राण से उत्पन्न होते है। प्राण का आना-जाना बंद हो जाए या प्राण द्वारा अन्न ग्रहण न किया जाए तो प्राणी जीवित नहीं रह सकते। मृत शरीर में प्राण नहीं रहते। मन शक्तिशाली है। पिता फिर भी संतुष्ट नहीं हुए। फिर विज्ञान को ब्रह्म कहा गया। अंतिम अनुवाक में कहते है कि, उसने आनंद को ब्रह्म जाना। सभी प्राणी आनंद से उत्पन्न होते है। आनंद से ही जीवित रहते है। आनंद से ही इस लोक को छोड़ते है। आनंद में ही प्रविष्ट हो जाते है। संसार में कोई दुखी नहीं रहना चाहता। आनंद ब्रह्म है। प्रत्येक जीव की आत्मा की प्यास आनंद ही है। सब आनंद के भूखे है। आनंद सबका ध्येय है। आनंद भौतिक भी है और आध्यात्मिक भी। आनंद प्राप्ति के लिए किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। वामपंथी विद्वान भारतीय दर्शन को भाववादी बताते है। गीता में ब्रह्म विवेचन वाला एक श्लोक बहुत चर्चित है। यज्ञ प्रतीक में श्रीकृष्ण कहते है, ब्रह्म ही यज्ञ है और ब्रह्म ही समिधा है। स्तुतियां पढ़ने और अग्नि को समिधा अर्पित करना भी ब्रह्म है। अग्नि ब्रह्म है। यज्ञ की सारी कार्यवाही ब्रह्म है। ब्रह्म ही ब्रह्मा को नमस्कार करता है। यहां सारा द्वैत समाप्त हो जाता है। जैसे यह आलेख ब्रह्म के चित्त का आयोजन है। आयोजन भी ब्रह्म है। प्रयोजन भी ब्रह्म है। धरती ब्रह्म है। आकाश ब्रह्म है। हम आप सब ब्रह्म है। हमसे पहले जो इस संसार में हुआ है और जो आगे होने वाला है सब ब्रह्म है। ब्रह्म को नमस्कार।

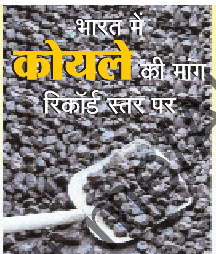

- आर्थिक विकास की तेज गति और औद्योगिक उत्पादन में बढ़ोतरी के साथ ही भीषण गर्मी में बिजली की जबरदस्त जरूरत से वर्ष 2024 में भारत में कोयले की मांग इसके पिछले वर्ष के मुकाबले 5.5 फीसद बढ़ कर अब तक के उच्चतम स्तर पर पहुंच गई है
- अंतरराष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी (आईईए) की 'वैश्विक ऊर्जा समीक्षा 2025' रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में कोयले से बिजली उत्पादन कुल कोयला खपत का लगभग तीन-चौथाई हिस्सा रखता है।
- रिपोर्ट में कहा गया है कि कोयला अब भी दुनिया में बिजली उत्पादन का सबसे बड़ा स्रोत बना हुआ है। अलबत्ता, बिजली उत्पादन में इसकी हिस्सेदारी लगातार घट रही है

स्रोत : मीडिया इनपुट्स

400 एकड़ का जंगल विकास के नाम पर उजाड़ देना, प्रोटेस्ट करते हैदराबाद विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को खदेड़ना, नैरेटिव की लड़ाई लड़ते-लड़ते जमीनी लड़ाई हार जाना है। बीजेपी की बुलडोजर संस्कृति का कांग्रेस संस्करण मुबारक।

सुजाता, लेखिका@Sujata1978

पूर्वाग्रह

डॉ. ज्ञानानंददास स्वामी

अपने दैनिक जीवन में गौर करें तो पाएंगे कि कई ऐसी समस्याएं हैं, जिनका सामना हम हर रोज कर रहे हैं पर भौतिक दृष्टि से उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। पूर्वाग्रह उनमें से एक है। पूर्वाग्रह अर्थात किसी वस्तु या व्यक्ति के बारे में हमारा दृष्टिकोण और उससे विकसित हुआ उसका आकार। इसे हम मनगढ़ंत मान्यता या व्यक्तिगत गलतफहमी भी कह सकते हैं। अर्जुन के विषाद को दूर करने के लिए कृष्ण भगवान दूसरे अध्याय में सांख्य ज्ञान और आत्मज्ञान की बातें विस्तार से समझाते हैं। किंतु अभी भी अर्जुन का मन पूर्वाग्रह मुक्त नहीं होता। पूछ बैठता है-'आप मुझे युद्ध जैसे घोर कर्म में क्यों झोंक रहे हैं।' वैसे तो सारी बातें स्पष्ट हो चुकी थीं, किंतु पूर्वाग्रह की मगरमच्छ जैसी पकड़ से छूटना इतना आसान नहीं है। आजकल यह नये परिवेश में हमारे सामने है। हम आधे-अधूरे अनुभव से ही लोगों को देखते हैं, और सबको उसी के अनुरूप प्रमाणपत्र देते रहते हैं। लोगों के व्यवहार का 'ब्ल्यूप्रिंट' हमारे दिमाग में तैयार रखते हैं। उसी तरह हम उस व्यक्ति के साथ व्यवहार भी करते हैं। अपने आसपास के लोगों को वैसे नहीं देखते हैं, जैसे वे हैं, लेकिन हमारे मन में जो छवि है, उसके अनुसार उन्हें देखते हैं। और जब तक हम किसी अन्य व्यक्ति के साथ पूर्व निर्धारित छवि के माध्यम से व्यवहार करते हैं, तब तक छोटी-छोटी बातों में घर्षण होता रहता है। छोटे प्रश्न बड़े हो जाते हैं, और छोटी समस्याओं का स्वरूप बड़ा हो जाता है। इसका असर सेहत पर भी पड़ता है। चिकित्सा विज्ञान भी मानता है कि किसी-की पूर्वनिर्धारित छवि बनाना और उन पर लगातार चर्चा करना, एक ही बात बार-बार सोचना इत्यादि स्वभाव वाले व्यक्ति पर बीमारियां जल्द हावी हो जाती हैं। इसलिए महंत स्वामी महाराज समझाते हैं कि रोजमर्रा की जिंदगी में या अपने परिवार के साथ व्यवहार में अपने नजरिए से हम जो धारणाएं बनाते हैं, और दावा करते हैं, 'जो मैं समझता हूं, वही सच है।' वे बातें या हमारी धारणाएं गलत हो सकती हैं। इस पर गंभीरता से सोचें, समुचित मूल्यांकन करें और फिर आगे बढ़ें। इससे आप पाएंगे कि व्यक्ति या वस्तु वैसी नहीं थी जैसा हम सोच रहे थे।

रीडर्स मेल

मखाना का कारगर विपणन जरूरी

मखाना आयरन, प्रोटीन कार्बोहाइड्रेट, मैग्नीशियम, पोटैशियम, फॉस्फोरस, जिंक, फाइबर सरीखे कई पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण सामान्य दिनों के साथ-साथ व्रतधारियों के लिए भी महत्त्वपूर्ण खाद्य वस्तु है। अहम बात यह भी है कि मखाना न केवल खाद्य वस्तु के रूप में देखी जाती है, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से मखाना भी बिहार की पहचान है। इसका सर्वाधिक उत्पादन भी बिहार में ही होता है। राज्य सरकार के साथ-साथ केंद्र सरकार के सहयोग के कारण मखाना के उत्पादन में और भी अधिक वृद्धि हुई है। इस कारण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसकी माग में काफी इजाफा हुआ है। सामान्य लोगों के लिए चिंता वाली बात यह हो जाती है कि उत्पादन और बिक्री में वृद्धि होने के साथ मखाना की कीमतों में भी वृद्धि हो रही है। अन्य किसी भी ड्राई फ्रूट की अपेक्षा मखाना की कीमतों में बेतहाशा वृद्धि हुई है। वर्तमान में स्थानीय मार्केट में यह बारह सौ रुपये किलो बिकती है, सरकार को कुछ ऐसा करना चाहिए कि उत्पादन और बिक्री में वृद्धि होने के साथ-साथ मूल्य में अधिक वृद्धि न हो ताकि स्थानीय लोग भी क्षेत्रीय उत्पादन का भरपूर सेवन सहजता से कर सकें।

मिथिलेश कुमार, भागलपुर

चुनावी शासन पद्धति का विरोध

कहते हैं कि आज की दुनिया में 'लोकतंत्र' वाली शासन पद्धति ही सर्वोत्कृष्ट है। विश्व में आधे से थोड़ा ही अधिक देश लोकतांत्रिक ढांचे के तहत आते हैं। उनमें भी कुछ देश तो महज चुनावी लोकतंत्र कहे जा सकते हैं। भारत का पड़ोसी नेपाल, जिसे दुनिया में एक तरह से भारत के अभिन्न राज्य के रूप में समझा एवं माना जाता है, में चुनावी शासन पद्धति का विरोध शुरू हो चुका है। वहां नवम्बर, 1990 में जन आंदोलन के बाद नया संविधान अपनाया गया और देश संवैधानिक राजतंत्र बन गया। लेकिन लोगों को लग रहा है कि बेरोजगारी, महंगाई और विकास की मांग राजशाही के जरिए ही पूरी की जा सकती है। इसलिए उसके समर्थन में जनांदोलन जैसा माहौल इन दिनों चल रहा है। ऐसा इसलिए कि नेपाल राजनीतिक अस्थिरता का 'विश्व चैंपियन' बन गया है। छोटे से हिमालयी गणराज्य ने 15 वर्षों में अपना 14वां प्रधानमंत्री नियुक्त किया है, जो विशुद्ध रूप से लेन-देन वाली सार्वजनिक मामलों की संस्कृति को दर्शाता है।

लवलेश कुमार, आरा

जिलाध्यक्ष को दी जाएं शक्ति

कांग्रेस के लोग जनता को बता रहे हैं कि राहुल गांधी चाहते हैं कि जिला अध्यक्ष को शक्ति दी जाएं। जिला अध्यक्ष की सिफारिश पर टिकट मिलें और उसे केंद्रीय चुनाव समिति की बैठक का हिस्सा भी बनाया जाए। लेकिन इसमें एक महत्त्वपूर्ण सवाल है कि इस बदलाव के बाद जिला अध्यक्ष कैसे चुने जाएंगे? राज्य के बड़े नेता अपने नजदीकियों को ही जिला अध्यक्ष बनाएंगे और राष्ट्रीय नेता अपना प्रदेशाध्यक्ष बैठाएंगे तो इस प्रक्रिया का कैसा फायदा? उससे भी महत्त्वपूर्ण बात, जहां राष्ट्रीय अध्यक्ष तक को शक्ति नहीं मिली वहां जनता को मूर्ख बनाने के लिए ही ऐसी बातें हो सकती हैं।

राम गोपाल, रामनगर

letter.editorsahara@gmail.com

आस्था की अमृत डुबकी

कार्तिक पूर्णिमा के पावन पर्व पर गढ़ गंगा मेला एवं ब्रजघाट शहरी मेले में पहुंचे 40 लाख से अधिक श्रद्धालुओं ने गंगा मैया के उदघोषो के साथ आस्था की डुबकी लगाई। श्रद्धालुओं के उमड़े सैलाब को देखते हुऐ पुलिस-प्रशासन ने काफी तैयारी की हुई थी लेकिन श्रद्धालुओ के सैलाब के आगे यह व्यवस्थाऐं भी कम ही नजर आयीं। ड्रोन कैमरो की नजर में रहा संपूर्ण मेला। इस मेले के महत्वपूर्ण चतुर्थदशी के स्नान दीपदान पर 20लाख श्रद्धालु मेला स्थल पर पहुंच गए थे जिन परिवारों ने एक वर्ष के अंदर अपने प्रियजनो को खोया है उनकी आत्मशांति के लिए दीपदान किया ओर स्नान करके वापस लौट गए।

बुधवार को कार्तिक पूर्णिमा के पावन पर्व पर गढ गंगा खादर मेला व ब्रजघाट शहरी मेले में विभिन्न प्रदेशों से पहुंचे 40लाख से अधिक श्रद्धालुओं ने जय गंगा मैया, हर-हर गंगे के जयकारों के बीच गंगा नदी में आस्था की डूबकी लगाई। श्रद्धालुओं ने गंगा स्नान के उपरांत गंगा किनारे बैठे पुरोहितों से सत्यनारायण की कथा सुनी और हवन, यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठान कराये। श्रद्धालुओ ने गढ़ क्षेत्र में महादेव, गंगा मंदिर, हनुमान मंदिर सहित विभिन्न मंदिरां में दर्शन किये। मेले की व्यवस्थाओ को लेकर जिला पंचायत व प्रशासन ने बड़े बडे दावे किए थे लेकिन मुख्य स्नान में भाग लेने उमड़े श्रद्धालुओ की आस्था के जन सैलाब के सामने प्रशासन द्वारा की गई सभी व्यवस्थाएं कम ही नजर आयीं। इस बार प्रशासन के स्वच्छता के प्रति विशेष अभियान चलाकर श्रद्धालुओं को गंगा को निर्मल बनाये रखने एवं मेला क्षेत्र को स्वच्छ बनाये रखने के लिए जगारूक किया। मेला व्यवस्था को सही रखने के लिए इस बार जिलाधिकारी जिलाधिकारी अभिषेक पाण्डे व एसपी कुंवर ज्ञानंजय सिंह ने अधिनस्थों को साथ लेकर मेले की कमान संभाले रखी। मेले में मुख्यमंत्री के आगमन से व्यवस्थाऐं ओर अच्छी हुई हालांकि श्रद्धालुओ के भीड के देखते हुऐ मेले का बजट कम है ओर आने वाले वर्षो में ओर अधिक बजट होने पर ही श्रद्धालुओ को सही सुविधाऐं मिल सकेंगी। गढ मेले में समय-समय पर लखनऊ से सचिव, मेरठ मण्डायुक्त भानु चंद्र गौस्वामी, एडीजी जोन भानू भास्कर, डीआईजी कलानिधि नैथानी सहित जिम्मेदार अधिकारी पहुंचे ओर भ्रमण/निरीक्षण करने के उपरांत मेले में बनी अस्थाई पुलिस लाईन में समीक्षा बैठक करके दिशा निर्देश देते रहे। इस मेले के महत्वपूर्ण चतुर्थदशी के स्नान दीपदान पर 20लाख श्रद्धालु मेला स्थल पर पहुंच गए थे जिन परिवारों ने एक वर्ष के अंदर अपने प्रियजनो को खोया है उनकी आत्मशांति के लिए दीपदान की परंपरा का निर्वाहन करके यह श्रद्धालु स्नान करके रात्रि में ही वापस लौट गए। दीपदान के समय गंगा में ऐसा नजारा लग रहा था जैसे आसमान से तारे जमीन पर उतर आये हों।

बुद्धवार को पूर्णिमा के स्नान के समय सुबह मुख्यमंत्री ने स्नानार्थी श्रद्धालुओ के स्वागत सम्मान के लिए हेलीकॉप्टर से पुष्पवर्षा कराई। जिससे मेला क्षेत्र में वातावरण भक्ति की अस्था के संगम के रूप में दिखाई दिया। पुष्पवर्षा से श्रद्धालु बहुत खुश नजर आये ओर गंगा मैया के उदघोषों/जयकारां के साथ मुख्यमंत्री योगी जी की जय के भी नारे लगाने लगे। मिशन शक्ति की प्रेरणा के लिए पुष्पवर्षा भी महिला एसडीएम ईला प्रकाश से कराई गई।

श्रद्धालुओं ने मेला स्थल पर उठाया धर्मलाभ : श्रद्धालुओं ने मेला स्थल पर चल रही भागवत कथा, प्रवचन,अखाडो एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमो में पहुंचकर धर्मलाभ उठाया। मेले में प्रजापिता ब्रहमकुमारी विश्वविद्यालय की तरफ से बना 30फीट ऊंचा शिवलिंग आर्कषण का केन्द्र रहा। इस कैम्प में 12 ज्योर्तिलिंगो के दर्शन कराये गये। खिचडी वाले बाबा व अन्य आश्रम के कैम्पो में श्रद्धालुओ को रामायण, श्रीमद भागवत कथा सुनाई गई। मेला क्षेत्र में विभिन्न स्थानों पर प्रसाद वितरण व भण्डारों का आयोजन भी हुआ। मेले में प्रदेश सरकार की जनकल्याणकारी योजनाओ का खूब प्रचार प्रसार किया गया ओर मिशन शक्ति में मुख्य चौक का नाम भी शक्ति चौक रखा गया।

ब्रजघाट शहरी मेले पर रही चेयरमैन व ईओ की निगरानी : तीर्थ नगरी ब्रजघाट में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर लगने वाले शहरी मेले को श्रद्धालुओ के लिए ओर अधिक अच्छा बनाने के लिए गढ पालिका चेयरमैन राकेश बजरंगी ओर अधिशासी अधिकारी पवित्रा त्रिपाठी मेले में ही अधिनस्थों एवं मेले कमैटी के साथ लगातार सक्रिय रहे।

आबकारी विभाग ने की विशेष चैकिंग : जिला आबकारी विभाग द्वारा गढ गंगा मेला क्षेत्र को मद्य निषेध बनाये रखने के लिए मुख्य मेला मार्ग एवं क्षेत्र में विशेष चैकिंग चैकिंग व छापेमारी करते हुऐ भारी मात्रा में अवैध कच्ची शराब पकडी ओर अवैध शराब रखने वालो को गिरफ्तार कर उनके विरूद्ध कार्रवाई की गई है।

खोया पाया कैंप बना मददगार : मेला क्षेत्र में लाखो की भीड में जहां मोबाईल काम नही करने के कारण मात्र शोपिस बनकर रह गये है वहीं मेला क्षेत्र में बना खोया पाया कैंप मददगार साबित हुआ जिसके माध्यम से 60 से अधिक बच्चो, वृद्ध, महिला आदि को उनके परिजनो से मिलवाया गया। कैंप की कमान इंस्पेक्टर बचन सिंह व एसआई एसपी सिंह के साथ पुलिसकर्मीयो की टीम ने संभाली।

ड्रोन कैमरो की रही नजर : इस वर्ष संपूर्ण मेला ड्रोन कैमरो एवं सीसीटीवी कैमरों की नजर में रहा जिससे पुलिस प्रशासन के अधिकारीयों को व्यवस्था अच्छी बनाये रखने में मदद मिली।

● भूपेन्द्र कुमार शर्मा

हमें गर्व है हम भारतीय हैं

राष्ट्रीय सहारा
● राष्ट्रीयता ● कर्तव्य ● समर्पण

सहारा इण्डिया मास कम्युनिकेशन के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक जिया कादरी द्वारा सहारा इंडिया मास कम्युनिकेशन द्वारा हिन्दुस्तान मीडिया वेन्चर्स लिमिटेड प्रेस, मौजा-दरियापुर, पुलिस स्टेशन-शाहपुर, दानापुर, पटना से मुद्रित तथा चतुर्थ तल, सहारा इण्डिया विहार, बोरिंग रोड क्रासिंग, पटना से प्रकाशित। । स्थानीय संपादक - संजय त्रिपाठी *।
पटना कार्यालय- 3911448/417/454/422, फैक्स : 2535935,2520760 विज्ञापन-3911455/434, प्रसार- 3911451/428
वर्ष - 20, अंक 6824
आर.एन.आई. सं. -बीआईएचएचआईएन/2006/18082 Postal Reg. No. : R-10/NP-50/06-07
*इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु उत्तरदायी

नवभारत टाइम्स • विचार

नवभारत टाइम्स । मुंबई । शुक्रवार, 7 नवंबर 2025

वोट वह सबसे शक्तिशाली हथियार है जिससे आप दुनिया को बदल सकते हैं।
– नेल्सन मंडेला

लोकतंत्र का जोश

बिहार विधानसभा चुनाव के पहले चरण में मतदाताओं ने जबरदस्त जोश दिखाया। 64% से अधिक मतदान लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत है। मतदान में जनता की भागीदारी अधिक होने का मतलब है कि लोकतंत्र जीवंत है। इसका अर्थ यह भी है कि लोग राजनीति से उदासीन नहीं हैं। डेमोक्रेसी में ऐसा ही होना भी चाहिए।

बड़े नाम कतार में । पहले चरण में 121 सीटों के लिए वोटिंग हुई है। महागठबंधन के सीएम पद के उम्मीदवार तेजस्वी यादव, डिप्टी सीएम विजय कुमार सिन्हा, सम्राट चौधरी समेत कई बड़े नामों की किस्मत दांव पर है इस चरण में। गुरुवार की वोटिंग अभिनेता से नेता बनने का सपना देख रहे खेसारी लाल यादव और मैथिली ठाकुर जैसे उम्मीदवारों की जीत-हार तय करेगी, तो यह लड़ाई अनंत सिंह जैसे बाहुबलियों की भी है।

बिहार में वोटिंग बढ़ी

भविष्य का फैसला । बिहार में दो दशकों से सत्तासीन नीतीश कुमार या उनकी जगह कोई और - हाल के चुनावों में यह सवाल इतनी मजबूती के साथ कभी नहीं पूछा गया था। जनता जो निर्णय लेगी, वह राज्य की सामाजिक-राजनीतिक दिशा तय करेगा। सकारात्मक बात यह है कि बिहार के लोगों ने इस बात को समझा और 2020 की तुलना में लगभग 13% ज्यादा वोटिंग की।

क्या है संदेश । आमतौर पर ज्यादा मतदान को बदलाव का संकेत माना जाता है। हालांकि बिहार के केस में इस आंकड़े से इतना साफ निष्कर्ष निकालना संभव नहीं। यहां कई फैक्टर हैं। हां, इतना जरूर है कि पिछला विधानसभा चुनाव कोविड की छाया के बीच हुआ था, तो वोटिंग पर उसका असर पड़ा हो सकता है। लेकिन, इस बार भी Special Intensive Revision और वोट चोरी जैसे विवाद थे।

सिस्टम पर भरोसा । वोटिंग के एक दिन पहले ही कांग्रेस नेता राहुल गांधी ने चुनाव आयोग पर नए आरोप लगाए। फिर SIR का मुद्दा रहा, जिसकी फाइनल लिस्ट में इंटेंसिव रिवीजन के पहले के मुकाबले करीब 47 लाख कम वोटर हैं। इसके बावजूद जनता ने पोलिंग बूथों तक पहुंच कर संदेश दिया कि उसे चुनावी प्रक्रिया और वोट की ताकत पर पूरा भरोसा है।

अच्छी पहल । पिछले विवादों को देखते हुए चुनाव आयोग ने इस बार रियल टाइम डेटा उपलब्ध कराने की तैयारी की है, ताकि बाद में वोटिंग पर्सेंटेज पर अंगुली न उठे। यह पहल इस मायने में अच्छी है कि चुनावी प्रक्रिया जितनी पारदर्शी, सरल और तेज हो, उतना ही बेहतर। कुछ जगहों से विवाद की भी खबरें आईं, लेकिन उनके बीच भी लोगों का मताधिकार का इस्तेमाल करना सुखद है।

तिराहा

न्याय का जुमला

अखबार पलटते ही सुधर्मा के चेहरे पर गर्व व आत्मविश्वास भरी मुस्कान पसर गई। एक घटना विशेष के सौ संभावित कारणों को उन्होंने एक दिन पहले रेखांकित किया था। अखबार में छपी खबर उसमें एक कारण को पुष्ट कर रही थी। सोशल मीडिया के दौर में सूचनाओं के लिए सुबह का इंतजार नहीं करना पड़ता, पर उसका विस्तृत ब्योरा पढ़ते हुए विशेषज्ञ टिप्पणी करने का अलग ही रस है। खासकर जब पाठक समीक्षक में रूपांतरित होते हुए कहता है, 'देखा! मैं कहता न था? आखिर, वही हुआ।' फिर मय सबूत व गवाह समीक्षकों की जो अदालत लगती है और धड़ाधड़ फैसले होते हैं, उसके क्या कहने!

प्रेम शंकर मिश्र

'मैं तो सरकार को चिट्ठी लिखने वाला हूं कि इन अदालतों को कानूनी मान्यता दे दी जाए। इससे लाखों मुकदमों के बोझ से टेढ़ी न्याय की कमर को कुछ तो सीधा होने का मौका मिल जाएगा। नुक्कड़ डिबेट को अपीलीय न्यायालय का दर्जा हो। पॉडकास्ट और 'स्पेस' अलग खंडपीठ होगी। अकाउंट के फॉलोअर्स, पहुंच और प्रसिद्धि के अनुसार न्यायमूर्ति की वरिष्ठता व निर्णयों की प्रभावकारिता तय होगी। सांविधिक न्यायालयों की 'फेवरेबल बेंच' की व्यवस्था यहां चोरी-छुपे नहीं बल्कि डंके की चोट पर लागू की जाएगी।' सुखनंदन मन ही मन बुदबुदा रहे थे, लेकिन सुधर्मा के कानों तक बात वैसे ही पहुंच गई, जैसे वाया 'हरिराम' हर बात साहब तक पहुंच जाती है। 'ऐसे कैसे फेवरेबल बेंच? अंतरात्मा भी कोई चीज होती है।' 'देखो! ये अंतरात्मा बड़ी अजीब है, अक्सर प्रगति की राह में खड़ी हो जाती है। इसीलिए, प्रगतिशील इसे देवकी की तरह कालकोठरी में डाल देते हैं। सिद्धांत है - Judges speak through their judgments, लेकिन जो व्यवहार में उतर जाए, वह सिद्धांत कैसा? इसलिए, वह बोलते सब कुछ हैं, लेकिन लिखते वही हैं जिससे वर्तमान निखरे, भविष्य सुधरे। इसके बाद भी जो बच जाता है वह रिटायरमेंट के बाद बोल कर पूरा कर लेते हैं। अब जुमला ही 'न्याय' है तो उसको सर्वसुलभ बनाने में हर्ज क्या है!', सुखनंदन ने जिज्ञासा शांत की।

एकदा

संकलन : हरिप्रसाद राय

पद की ज़िम्मेदारी

लाल बहादुर शास्त्री का नाम ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के प्रतीक के रूप में अमर है। उनकी योग्यता और कार्यक्षमता को देखते हुए 7 दिसंबर, 1956 को उन्हें देश का रेल मंत्री नियुक्त किया गया। सामान्य यात्रियों की तरह रेल यात्रा की कठिनाइयां उन्होंने स्वयं झेली थीं, इसलिए पद संभालते ही उन्होंने यात्रियों की समस्याओं के समाधान में पूरी निष्ठा से काम शुरू किया। सामाजिक समरसता और समानता की दिशा में बड़ा कदम उठाते हुए उन्होंने तृतीय श्रेणी के डिब्बे को खत्म कर दिया। ब्रिटिश काल की खानपान श्रेणियों को भी समाप्त कर भोजन की गुणवत्ता पर कठोर नियंत्रण किया। शास्त्री जी जानते थे कि रेलवे देश के विकास की धुरी है, इसलिए रेल विस्तार और सुरक्षा पर उनकी विशेष दृष्टि रहती थी। लेकिन नवंबर, 1956 की दक्षिण भारत की भयंकर रेल दुर्घटना ने उन्हें गहराई से व्यथित कर दिया। उन्होंने इस दुर्घटना की नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए कैबिनेट मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। यह स्वतंत्र भारत में पहला उदाहरण था, जिसने राजनीति में नैतिकता का नया अध्याय जोड़ा। उनका यह निर्णय आज भी हर जनसेवक के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

Subrata Dhar
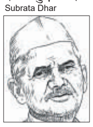

बराबरी की भाषा पर सबसे बड़ी बहस

जब जेंटलमैन का टैग टूटा, तब भाषा ने भी बराबरी के लिए बल्ला उठाया

नमिता जोशी

Cricket is a gentleman's game. कभी ये वाक्य क्रिकेट की पहचान हुआ करता था। मैदान पर सफ़ेद कपड़ों में उतरते मर्दों का खेल, जिसमें शालीनता और सज्जनता के गुण गिनाए जाते थे। लेकिन वक्त बदल गया। मैदान वही रहा, बल्ला वही पर अब बल्ला उठाने वाला सिर्फ़ 'जेंटलमैन' नहीं रहा।

पहचान एक जेंडर की जागीर नहीं । वर्ल्ड कप जीतने के बाद भारतीय महिला क्रिकेट टीम की कप्तान हरमनप्रीत कौर ने एक तस्वीर अपने इंस्टाग्राम अकाउंट के स्टेटस में शेयर की। इसमें वह वर्ल्ड कप ट्रोफी को गले लगाकर लेटी हैं और उनकी टी-शर्ट पर लिखा है: Cricket is a gentleman's फिर 'gentleman' पर लाल लाइन खींच कर उसे स्ट्रोक मारकर काटा हुआ है और आगे लिखा है 'EVERYONE's game,' बस, उस एक स्ट्रोक में हरमन ने भाषा की सदियों पुरानी आदत को तोड़ दिया।

वो स्ट्रोक सिर्फ़ एक शब्द पर नहीं था, बल्कि उस सोच पर था जिसने खेल को, काम को और पहचान को हमेशा किसी एक जेंडर की जागीर मान लिया। हरमन ने तस्वीर में जो लिखा, वो सिर्फ़ क्रिकेट पर नहीं, पूरी भाषा पर लागू होता है। क्योंकि क्रिकेट की तरह ही हमारी भाषा भी लंबे समय तक 'जेंटलमैन' की ही रही है, जहां हर पेशा, हर पद, हर पहचान पुरुष के नाम से जानी गई।

NBT की मुहिम

- शब्द बनने से समाज नहीं बदलता, लेकिन शुरुआत वहीं से होती है
- **masculine** के साथ **feminine** को भी पहचान मिलनी चाहिए
- पुरुषवादी समाज में जेंडर न्यूट्रल की बात करने का कोई अर्थ नहीं

NBT की मुहिम 'बराबरी की भाषा' इसी टीस को कम करने की कोशिश है। हम मानते हैं कि शब्द बन जाने से समाज नहीं बदलता, लेकिन शुरुआत वहीं से होती है। जब कलाकारा शब्द लोगों के बीच स्वीकार हुआ, तो सिर्फ़ एक अक्षर नहीं बदला, एक नज़रिया बदला। जब विधायिका को वोटों से चुना गया, तो लोकतंत्र ने पहली बार भाषा में भी लोकतंत्र देखा। भाषा में नया प्रयोग करने के विरोधी, बराबरी की भाषा के विरोधी अक्सर कहते हैं, क्यों अच्छी खासी समृद्ध भाषा की टांग तोड़ रहे हो?

सवाल ये है कि जब क्रिकेट जैसी परंपरागत रूप से मर्दाना कही जाने वाली चीज़ में हरमनप्रीत जैसे नाम चमक सकते हैं, तो भाषा में बराबरी का बल्ला उठाने पर इतनी तकलीफ़ क्यों? जब अध्यापक का अध्यापिका, गायक का गायिका, विद्वान का विदुषी बनाने में हिचक नहीं थी तो पहलवान, सैनिक और वैज्ञानिक जैसे पेशों के स्त्रीलिंग बनाने में क्या दिक्कत है? क्या विरोधियों की आखों के आगे थानेदार या सैनिक शब्द बोलते ही किसी मूंछों वाले दबंग पुरुष की छवि नहीं उभरती?

इसके बाद विरोध के स्वर आते हैं कि दुनिया gender-neutral की तरफ़ बढ़ रही है और आप फिर से gender ला रहे हैं। हम कहते हैं, अपने यहां neutral था ही कहां? पहले तो सब यहां masculine था। चाहे सैनिक हो या वैज्ञानिक। जब सारा सिस्टम एक लिंग के नाम पर बना हो, तो दूसरे के आने पर बराबरी मांगना पीछे जाना नहीं,बल्कि आख़िरकार बराबरी तक पहुंचना है। न्यूट्रल तो तब बनेंगे जब masculine के साथ feminine को भी पहचान मिलती। गांव-कस्बों में पुरुषों के मुकाबले महिलाओं का दर्जा क्या है, सभी जानते हैं।

बराबरी की भाषा के विरोधी यह भी कहते हैं कि 'हर शब्द का स्त्रीलिंग कैसे बनाओगे', वे दरअसल यह भूल जाते हैं कि भाषा कोई पत्थर नहीं, भाषा तो वक्त, ज़रूरत और समाज के साथ खुद को बदलती है बिल्कुल किसी जीव की तरह।

बराबरी = की भाषा
नवभारत टाइम्स की पहल

आमने-सामने

सत्ता में ज्यादातर पुरुष बैठे हैं । अगर आज प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति के स्त्रीलिंग रूप नहीं हैं, तो इसका मतलब यह नहीं कि उन्हें बनाया ही नहीं जा सकता। इसका मतलब सिर्फ़ इतना है कि अब तक किसी ने ज़रूरत ही नहीं समझी, क्योंकि सत्ता तक पहुंचने वाली ज़्यादातर कुर्सियां पुरुषों के पास ही थीं। जब महिलाएं वहां अधिक संख्या में पहुंचेंगी, तो भाषा अपने आप रास्ता बना लेगी। जैसे अध्यक्षा, संचालिका जैसे शब्द बन चुके हैं और अब सहज लगते हैं उसी तरह दूसरे पवित्र समझे जाने वाले शब्दों के साथ भी बदलाव होगा। भाषा की टांग नहीं टूटती, जब वह समावेशी होती है बल्कि उसकी रीढ़ मज़बूत होती है। जो भाषा प्रतिनिधित्व से डरती है, वही कमजोर पड़ती है क्योंकि बराबरी हास्यास्पद नहीं, बल्कि भाषाई विकास का अगला पड़ाव है।

पदों-पेशों के हिसाब से भाषा बदलने की नहीं ज़रूरत, नज़रिया बदलना होगा

नीरेंद्र नागर

एक तरफ़ जहां दुनिया लैंगिक समानता की ओर जा रही है, वहां पुरुष और स्त्रियों के लिए पदों या पेशों के अलग-अलग रूप की वकालत कुछ वैसा ही है जैसे आधुनिक लड़कियों से कहना कि वे शर्ट या जींस न पहनें, साड़ी या सलवार पहनें ताकि वे पुरुषों से अलग दिखें।

फ्रेंच से क्यों प्रेरणा ले हिंदी । कहा जाता है कि फ्रेंच आदि भाषाओं में पेशों और पदों के लिए स्त्रियों और पुरुषों के लिए अलग-अलग शब्द हैं। लेकिन क्या उन भाषाओं से प्रेरणा लेकर हिंदी में वही काम किया जाए? उन भाषाओं में वे शब्द पहले से हैं इसलिए चलते हैं, और खलते भी नहीं हैं। लेकिन हिंदी में ऐसा नहीं है। हिंदी में कुछ पदों-पेशों में दो-दो रूप हैं, अधिकतर में नहीं हैं। अब क्या जिनके नहीं हैं, उनके नए बनाए जाएं या जिनके हैं, उनको हटाया जाए? पहले यह समझते हैं कि हिंदी में यह आधा-अधूरा खेल क्यों है।

दरअसल, हिंदी में कई स्रोतों से शब्द आए हैं। संस्कृत से जो शब्द आए हैं, उनमें उन्हीं पदों/पेशों के स्त्रीलिंग रूप हैं जो अतीत में मौजूद थे। महिलाएं सेवा करती थीं सो सेवक का स्त्रीवाची शब्द सेविका है, पर राजा को शासन चलाने में कोई मंत्रणा नहीं देती थीं, तो मंत्री के लिए कोई स्त्रीवाची शब्द नहीं है। इसी तरह वेश्या मिल जाएगा, पर लेकिन उसका पुरुषवाची शब्द नहीं मिलेगा क्योंकि पुरुष उन दिनों रोज़ी-रोटी के लिए यह काम करने को मजबूर नहीं थे। कहने का मतलब यह कि अतीत में जिन पेशों से पुरुष जुड़े हुए थे, उनके पुरुषवाची नाम थे और जिन पेशों से स्त्रियां जुड़ी हुई थीं, उनके स्त्रीवाची नाम थे। अब स्त्रियां भी ऐसे कई पेशों से जुड़ रही हैं जिनमें पहले इनके लिए प्रवेश वर्जित था, लेकिन उनके लिए हमें संस्कृत में कोई शब्द नहीं मिलता।

यह तो बात हुई संस्कृत से आए शब्दों की। हिंदी में जो देशी या विदेशी शब्द भी आए हैं, उनमें भी हमें उन पेशों या पदों के लिए स्त्रीलिंग शब्द नहीं मिलेंगे जो पहले होते ही नहीं थे। माली और मालिन मिल जाएगा, लेकिन अफ़सर और मिस्त्री के लिए उपयुक्त स्त्रीवाची शब्द नहीं मिलेंगे। ऐसे में आप क्या करेंगे? नए शब्द बनाएंगे? बन सकते अगर सारे शब्द एक जैसे होते। अंग्रेज़ी में आप किसी भी क्रिया के बाद er लगाकर काम करने वाले का अर्थ दे सकते हैं और एक जेंडर न्यूट्रल शब्द बना सकते हैं। परंतु हिंदी या संस्कृत में ऐसा कोई एक कॉमन प्रत्यय नहीं है।

इसलिए अलग-अलग शब्द हैं और उनके स्त्रीलिंग बनाने के नियम भी अलग हैं। ऐसे में नवभारत टाइम्स ने क्या किया। संस्कृत के नियमों और उदाहरणों का सहारा लिया और बालक-बालिका की तरह सैनिक का सैनिका कर दिया। इसी तरह अदाकार से अदाकारा होता है तो पत्रकार से पत्रकारा कर दिया। लेकिन मंत्री का क्या करेंगे? क्या मंत्रिणी करेंगे? यदि कोई महिला प्रधानमंत्री हुई तो उनको प्रधानमंत्राणी कहा जाएगा? और राष्ट्रपति का क्या करेंगे? निश्चित रूप से राष्ट्रपत्नी नहीं क्योंकि राष्ट्रपति में पति husband के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है, वह स्वामी के रूप में इस्तेमाल हुआ है। मंत्री और पति शब्द लिंगनिरपेक्ष हैं। इन पदों पर चाहे पुरुष बैठा हो या स्त्री, कोई अंतर नहीं पड़ता।

गलती सोच की है

- जिन पेशों से पुरुष जुड़े हुए थे, उनके पुरुषवाची नाम थे
- जिन पेशों से स्त्रियां जुड़ी हुई थीं, उनके स्त्रीवाची नाम थे
- राष्ट्रपति जैसे शब्दों से समाज को पुरुषवाद की बू नहीं आती

यह हमारे दिमाग का पिछड़ापन । यह हमारे अपने दिमाग़ का पिछड़ापन है कि हमें इन शब्दों में पुरुष चेहरे नज़र आते हैं। यह बिल्कुल वैसा ही है कि पत्नी के बारे में सोचने पर हमारे दिमाग़ में घर का काम देखने वाली, पूजा-पाठ करने वाली और बच्चों को पालने वाली स्त्री का ख़्याल आता है और पति के बारे में सोचते ही नौकरी या व्यवसाय करने वाले पुरुष का ख़्याल आता है।

हैरत की बात यह है कि जब हम scientist, farmer या soldier शब्द लिखते हैं, तब तो हमें ऐसा कोई ख़्याल नहीं आता। निष्कर्ष यह कि हमें नाम बदलने की ज़रूरत नहीं है, हमारा नज़रिया बदलने की ज़रूरत है। सुनीता विलियम्ज़ जब अंतरिक्ष में गईं तो मीडिया ने उन्हें अंतरिक्ष यात्री लिखा। तब क्या किसी को खला था कि यात्री की जगह यात्रिणी क्यों नहीं लिखा? नहीं। फिर सैनिका, वैज्ञानिका या पत्रकारा लिखने की ज़िद क्यों?

एनबीटी की पहल 'बराबरी की भाषा' पर आप क्या सोचते हैं, **nbtreader@timesofindia.com** /वट्सऐप नंबर 92207 47220 पर अपने विचार शेयर करें।

जनता जंक्शन

इरफ़ान

सप्ताह की शख्सियत

माधव दौड़ रहे, ताकि बेटा हिम्मत न हारे

*55 की उम्र में शुरुआत और 68 का होते-होते मैराथन का शतक – दौड़ ने **माधव सारिपल्ला** को नई पहचान दी है। वह पहली बार दौड़े थे अपने बेटे के लिए, लेकिन अब उनका लक्ष्य है युवाओं को प्रेरित करना।*

पहली मैराथन 21 किमी

कर्नाटक के मंगलुरु निवासी माधव ऑटो रिक्शा चलाते हैं। उनके बेटे धनराज को learning disability है। स्पेशल स्कूल में उसने स्केटिंग सीखी, लेकिन एक इवेंट के दौरान ऐसी चोट लगी कि स्केट का साथ हमेशा के लिए छूट गया। तब बेटे का हौसला बढ़ाने के लिए माधव उसके साथ दौड़ा करते थे। धीरे-धीरे उन्हें इसमें मजा आने लगा और भरोसा हुआ कि वह भी लंबी दौड़ का हिस्सा बन सकते हैं। 2011 में उन्होंने पहली बार 21 किमी मैराथन में हिस्सा लिया।

अब भी चल रही तैयारी

माधव एक बार दौड़े, तो फिर रुके ही नहीं। कर्नाटक में कहीं भी मैराथन हो, वहां वह जरूर नजर आते हैं। इस शौक ने धीरे-धीरे उन्हें मैराथन का परिचित चेहरा बना दिया। अब वह 68 के हैं, पर इस खेल को जारी रखे हुए हैं, क्योंकि उन्हें देखकर तमाम दूसरे युवा भी इस तरफ आकर्षित होते हैं। माधव इस समय भी प्रैक्टिस कर रहे हैं – इसी रविवार को फिर एक मैराथन है।

किन लोगों के जतन से गूंजा वंदे मातरम्

बंगाल से 'वंदे मातरम्' मंत्र को बाहर ले जाने में जिन लोगों की भूमिका रही है, उनमें कुछ नाम बहुत महत्वपूर्ण हैं। सुब्रह्मण्यम भारती ने दक्षिण भारत में इसे जनमानस का कंठहार बनाया। बाल गंगाधर तिलक ने पश्चिम भारत में इसे जन-जन तक पहुंचाया, तो उत्तर भारत में इसे लोकप्रिय बनाने में लाला लाजपत राय की भूमिका अहम रही। इन सब में दार्शनिक पुट भरने का काम किया अरविंद घोष और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की लेखनी ने।

अखिलेश झा

ग्रामोफोन रेकॉर्ड्स का रोल

इस गीत की धुन को देश और दुनिया के कोने-कोने तक पहुंचाने में सबसे अहम भूमिका निभाई ग्रामोफोन के रेकॉर्ड्स ने। नारायण चन्द्र मुखर्जी, सत्यभूषण गुप्ता और आर एन मुखर्जी की आवाज़ में 'वंदे मातरम्' गीत के रेकॉर्ड्स देश और देश के बाहर लोगों को उपलब्ध होने लगे थे। लेकिन, 'वंदे मातरम्' मंत्र को जिन ऊंचा सुनने वालों तक पहुंचाना था, वह सबसे मुश्किल काम किया वीर विनायक दामोदर सावरकर ने। बैरिस्टरी की आड़ में 1906 में लंदन पहुंचकर सावरकर ने वो कर दिखाया, जिसकी मिसाल वे खुद हैं, कोई दूसरा नहीं। जिस काम के लिए 1906 से 1910 के बीच बंगाल के क्रांतिकारियों को ढाका, कलकत्ता और बारीसाल में कोड़े लगाने की सज़ा दी जा रही थी, उन्हें जेल भेजा जा रहा था, वही काम सावरकर साम्राज्य के केंद्र लंदन में राजा-रानी की नाक के नीचे कर रहे थे।

उन्होंने 'वंदे मातरम्' को लंदन के इंडिया हाउस में सुबह-शाम की प्रार्थना बना दिया, अभिवादन को दो नए शब्द दे दिए- 'वंदे मातरम्'। भारतीय जनमानस के लिए महत्वपूर्ण दिवसों को यूं मनाना शुरू किया, जैसा बंगाल, मुंबई, लाहौर या मद्रास में मनाया जाता था। और, हर आयोजन में मंगलाचरण बस एक ही था- 'वंदे मातरम्'। जब 1907 में इंग्लैंड 1857 के पहले भारतीय स्वाधीनता संग्राम को कुचलने का जश्न मना रहा था अपने अंग्रेज सैनिक अधिकारियों को सम्मानित कर, तब उन्होंने 10 मई, 1908 को इंडिया हाउस में भारत के विद्रोही सैनिकों के सम्मान में एक बड़ा कार्यक्रम किया। उसमें सावरकर के साथ सक्रिय रूप से सैकड़ों भारतीय छात्र शामिल थे, जिनमें मदनलाल ढींगरा, हरनाम सिंह, रफीक मुहम्मद खां और ज्ञानचन्द वर्मा भी थे। उस आयोजन में ज्ञानचंद ने 'वंदे मातरम्' गाया और रफीक अहमद खां ने वीर कुंवर सिंह पर भाषण दिया। सावरकर ने सभी प्रतिभागियों के लिए 'वंदे मातरम्' बैज बनवाया, जिस पर 'वंदे मातरम्' वाला तिरंगा ध्वज मुद्रित था।

कॉमन रूम

AI Image

सावरकर ने अंग्रेजों द्वारा फैलाए गए सैनिक विद्रोह के नैरेटिव को सिर्फ एक आयोजन कर नहीं नकारा, उन्होंने एक शोधपरक किताब ही लिख दी- भारत का 1857 का स्वाधीनता संग्राम (The Indian War of Independence of 1857), पहले संस्करण की प्रकाशकीय तिथि 10 मई, 1909 है, इसलिए माना जाता है कि उसी समय अंग्रेजी संस्करण तैयार हुआ होगा। मूलतः किताब सावरकर ने मराठी में लिखी थी 1906-08 के बीच। उसे अंग्रेजी में अनूदित करवा, किताब को नीदरलैंड्स से मुद्रित करवाया गया 1909 में। उस दौर में राष्ट्रीय संदेश वाली पुस्तकें 'वंदे मातरम्' से शुरू होती थीं, सावरकर की यह पुस्तक 'वंदे मातरम्' पर समाप्त की गई थी।

सावरकर की किताब पर अंकुश

सावरकर की किताब के अंश लंदन में रविवार के दिन अलग-अलग जगहों पर पढ़े जाने लगे। किताबों के अंश पढ़े जाने से पहले वंदे मातरम् का गायन अनिवार्य रूप से होता था। अंग्रेजों ने उस क़िताब को प्रतिबंधित साहित्य की सूची में डाल दिया। वे न सिर्फ भारत आने वाले यात्रियों के सामान में हथियारों की जांच करते बल्कि यह भी देखते कि सावरकर की किताब भारत न पहुंचे। सावरकर की किताबें भी पहुंचती रहीं, उनके विचार भी और वे सारे साज़ो-सामान भी, जो अंग्रेजों को भयाक्रान्त करने के लिए अपरिहार्य थे। वंदे मातरम्!

THE SPEAKING TREE
और पढ़ने के लिए देखें
www.speakingtree.nbt.in

बहुत कुछ न होते हुए भी जब मन ख़ुशियों से भर जाए

नारायणी गणेश

आज ज्यादातर लोग अधिक से अधिक सुविधाएं समेट लेना चाहते हैं। हम दूर-दराज के देशों की यात्राएं करते हैं, विदेशी भोजन का स्वाद लेते हैं, जिम और क्लब में जाते हैं, डिजाइनर कपड़े पहनते हैं, सुंदर कारें खरीदते हैं, आलीशान घरों और आधुनिक गैजेट्स के मालिक हैं। फिर भी बहुत कम लोग खुश हैं।

पिछले महीने कसौली में आयोजित खुशवंत सिंह लिटफेस्ट 2025 में विचारक संतोष देसाई ने 'अभाव का आनंद' की बात करते हुए इसी विरोधाभास पर प्रकाश डाला। उन्होंने बचपन और युवावस्था की यादें साझा करते हुए बताया कि उस समय छुट्टियों का अर्थ था - अपने पैतृक घर जाना, दादा-दादी, चाचा-चाची और चचेरे भाइयों-बहनों के साथ समय बिताना।

सभी एक बड़े हॉल में गद्दे बिछाकर साथ सोते थे, बातें करते-करते नींद आ जाती थी। घर में एक ही बाथरूम होता था, जिसे सब बारी-बारी से इस्तेमाल करते, बिना किसी झगड़े या शिकायत के। खाना सबके लिए एक जैसा बनता, किसी की विशेष पसंद-नापसंद नहीं देखी जाती। फिर भी सभी खुश रहते थे। यही था अभाव का आनंद। तब बहुत कुछ न होते हुए भी मन संतोष और प्रेम से भरा रहता था।

सच्चा सुख इसी में है कि जो कुछ हमारे पास है, उसे पूरी निष्ठा और कृतज्ञता के साथ जी लेना। यही है 'अभाव का आनंद'।

आर.एन.आई. पंजीयन नंबर 1613/1957 स्वत्वाधिकारी बेनेट, कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड के लिए आर. कृष्णमूर्ति द्वारा टाइम्स ऑफ इंडिया बिल्डिंग, डॉ. डी. एन. रोड, फोर्ट, मुंबई 400001 से प्रकाशित और उनके द्वारा (1) टाइम्स ऑफ इंडिया सबर्बन प्रेस, आकुर्ली रोड, निकट वेस्टर्न एक्सप्रेस हाइवे, कांदिवली (पू.) मुंबई 400101 एवं (2) टाइम्स ऑफ इंडिया प्रिंट सिटी, प्लॉट नं. 4, टी.टी.सी. इंडस्ट्रियल एरिया, ठाणे बेलापुर रोड, ऐरोली, नवी मुंबई-400708. फोन नं. (022) 2760 9999 ; फैक्सः(022) 2760 5275। फोन मुंबईः (022) 66353535, 22733535 रेस्पांसः (022) 66353636, 22733636 फैक्सः (022) 22731889, 22731144, कांदिवली (022) 28872324 से मुद्रित। **स्थानीय संपादक (मुंबई) : सुंदर चंद ठाकुर** (पी. आर. बी. अधिनियम के अंतर्गत समाचारों के चयन के लिए उत्तरदायी) सर्वाधिकार सुरक्षित। प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना संपूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित। सड़क व रेल परिवहन सेवा शुल्कः मुंबई, ठाणे व रायगड जिलों के बाहर 1.00 रुपया। विमान सेवा शुल्कः रायपुर, नागपुर, गोवा एवं वाया 2.00 रुपये, इंदौर, चेन्नै एवं वाया 3.00 रुपये, अहमदाबाद, बेंगलुरु, कोचीन, कोयम्बतूर, एरनाकुलम, हैदराबाद, कोझीकोड, मंगलूर, त्रिवेंद्रम, उदयपुर, वाइजग एवं वाया 4.00 रुपये, दिल्ली, कोलकाता, एवं वाया 5.00 रुपये।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्

भगवान इस जग के कण-कण में विद्यमान हैं।

आदित्य नारायण चोपड़ा
adityachopra@punjabkesari.com

जनादेश की पहली 'किश्त'

बिहार में पहले चरण के दौरान 121 सीटों पर हुए शानदार 64.46 फीसदी मतदान से यह तय हो गया है कि मतदाताओं ने राज्य में स्थायी व टिकाऊ सरकार बनाने का मन बना लिया है। बेशक अभी दूसरे चरण का मतदान 11 नवम्बर को होना बाकी है मगर पहले चरण से यह स्पष्ट हो गया है कि बिहारी मतदाता उत्तेजित हैं और वह हर हाल में निर्णायक फैसला करना चाहता हैं। मतदान का पहला चरण कांग्रेस नेता श्री राहुल के वोट चोरी के गंभीर आरोपों के साये में सम्पन्न हुआ है। इसका असर बिहार के मतदाताओं पर किस रूप में पड़ेगा इसका पता 14 नवम्बर को ही चलेगा जिस दिन मतगणना होगी। राहुल गांधी के आरोपों का देश के चुनाव आयोग से सीधा लेना- देना तो है ही साथ ही पूरे भारत के समस्त मतदाताओं से भी लेना-देना है क्योंकि भारत की जनता को वोट देने का अधिकार लम्बे संघर्ष के बाद मिला है। इस अधिकार को पाने के लिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अंग्रेजों के खिलाफ कड़ा संघर्ष किया था। बापू का संघर्ष केवल अंग्रेजी राज से मुक्ति पाने का ही नहीं था बल्कि भारत के आम व दबे-कुचले लोगों में आत्मसम्मान का भाव जगाने के लिए भी था। यह सम्मान भारत का नागरिक तभी प्राप्त कर सकता था जब वह राजनैतिक रूप से पूर्णस्वतन्त्र हो जाये। अत: भारत के संविधान ने इस एक वोट के अधिकार को सभी भारतवासियों को एक समान रूप से दिया जिससे स्वतन्त्र भारत का हर नागरिक स्वयंभू बन सके और अपनी मनपसन्द सरकार का गठन कर सके। भारत पूरे विश्व में सर्वाधिक विविधताओं वाला देश है अत: इस विविधता में एकता के भाव को जोड़ने के लिए समस्त वयस्क लोगों को एक वोट का अधिकार बिना किसी पूर्वाग्रह के दिया गया। ये पूर्वग्रह जाति धर्म व स्त्री-पुरुष भेद के हो सकते थे। इसलिए हर चुनाव में हमें एक वोट की कीमत का अन्दाजा होता है क्योंकि अन्त में लोकतन्त्र का भाग्य विधाता आम आदमी ही होता है। यह प्रसन्नता की बात है कि बिहार विधानसभा के चुनावों में बिहार के आम आदमी के कष्टों का विमर्श ही सतह पर इस प्रकार तैर रहा है कि प्रत्येक राजनैतिक दल को उसका संज्ञान लेना पड़ रहा है। यदि चुनाव में विशुद्ध लफ्फाजी की जगह शिक्षा, स्वास्थ्य व पलायन के मुद्दों पर हर राजनैतिक दल को बात करनी पड़ रही है तो इसे हम लोकतन्त्र की विजय ही कहेंगे क्योंकि अक्सर चुनाव के मौके पर ऐसे मुद्दे हवा में तैरा दिये जाते हैं जिनका आम आदमी की समस्याओं से प्रत्यक्ष लेना-देना नहीं होता। अत: चुनावों में पढ़ाई, दवाई और कमाई की बात अगर विपक्षी नेता तेजस्वी यादव कर रहे हैं तो दूसरी तरफ सत्तारूढ़ गठबन्धन राजग की ओर से स्वयं प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी भी कर रहे हैं। यह बिहार के सजग व बुद्धिमान मतदाताओं के लिए एक सौगात की तरह है। अब देखना केवल यह है कि जमीन पर मतदाता इसे किस प्रकार लेते हैं। बिहार में दो गठबन्धनों के बीच ही मुख्य संघर्ष है जो राजग (भाजपा समाहित) व महागठबन्धन (कांग्रेस समाहित) के बीच ही है। इसलिए 14 नवम्बर को हमें देखने को मिल सकता है कि जनता ने किसी एक गठबन्धन को अपना पूरा प्यार व स्नेह दिया है। मैं यहां किसी की हार-जीत की घोषणा नहीं कर रहा हूं बल्कि यह बता रहा हूं कि बढ़े हुए मतदान प्रतिशत का क्या अर्थ निकाला जा सकता है। पिछले वर्षों में जिस राज्य में भी चुनाव हुए हैं वहां जनता ने निर्णायक मत दिया है मगर इसमें एक पेंच भी है कि अधिसंख्य विधानसभा सीटों पर बहुत कम मतों से ही हार-जीत का फैसला हुआ है। उदाहरण के लिए हरियाणा जैसे राज्य में केवल 22 हजार मतों के कुल अन्तर से ही भाजपा पुन: गद्दी पर आसीन हुई। इससे पूर्व स्वयं बिहार में ही 2020 के चुनावों में केवल 12 हजार मतों का अन्तर रहा था और वहां भाजपा बड़े आराम से बहुमत प्राप्त कर गई थी। इसी से हम अन्दाजा लगा सकते हैं कि लोकतन्त्र मे एक वोट की कीमत कितनी हो सकती है? बिहार को हम अन्य राज्यों के बराबर भी रख कर नहीं देख सकते हैं क्योंकि इस राज्य के इतिहास में ही भारत की गौरव गाथा छिपी पड़ी है। यह और बात है कि वर्तमान समय में यह राज्य देश के सबसे गरीब राज्यों में गिना जाता है। अत: राजनैतिक दलों का यह कर्त्तव्य बनता है कि वे इस धरोहर का सम्मान करें और यहां की राजनीति को नये आयाम दें। परन्तु हम देख रहे हैं कि राजनीतिज्ञों की भाषा लगातार गिरती जा रही है और कभी–कभी तो यह सड़क छाप तक की श्रेणी में आ जाती है। आज जो मतदान हुआ है उसमें राज्य की नीतीश सरकार के 16 मन्त्रियों का भाग्य ईवीएम मशीनों में बन्द हो जायेगा। इसके अलावा विपक्षी नेता तेजस्वी यादव का भी भाग्य आम जनता ईवीएम मशीन में कैद कर देगी। पहले चरण के मतदान का सन्देश अगर कोई निकाला जा सकता है तो वह यही है कि राज्य की जनता अपने अधिकारों के प्रति बहुत सजग है । ध्यान देने वाली बात यह भी है कि यह मतदान चुनाव आयोग द्वारा बिहार में विशेष मतदाता सूची संशोधन के बाद हो रहा है जिसमें लाखों की संख्या में बिहारी मतदाताओं के नाम काटे गये हैं। इसका क्या असर बिहार की राजनीति पर पड़ता है, यह भी देखने वाली बात होगी। देखने वाली बात तो यह भी होगी कि राष्ट्रीय जनता दल के अध्यक्ष लालू प्रसाद यादव के 1990 से 2005 तक के शासन को भाजपा व इसके सहयोगी दल जिस प्रकार जंगलराज बता रहे हैं, उसका असर बिहार की जनता पर किस तरह पड़ता है मगर इतना निश्चित माना जा रहा है कि बिहार की युवा पीढ़ी इस समय आक्रोश में है और वह दोनों ओर के राजनेताओं के वक्तव्यों को बड़े गौर से सुन रही है।

राहुल गांधी के आरोपों का देश के चुनाव आयोग से सीधा लेना- देना तो है ही साथ ही पूरे भारत के समस्त मतदाताओं से भी लेना-देना है क्योंकि भारत की जनता को वोट देने का अधिकार लम्बे संघर्ष के बाद मिला है। इस अधिकार को पाने के लिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अंग्रेजों के खिलाफ कड़ा संघर्ष किया था। बापू का संघर्ष केवल अंग्रेजी राज से मुक्ति पाने का ही नहीं था बल्कि भारत के आम व दबे-कुचले लोगों में आत्मसम्मान का भाव जगाने के लिए भी था। यह सम्मान भारत का नागरिक तभी प्राप्त कर सकता था जब वह राजनैतिक रूप से पूर्णस्वतन्त्र हो जाये।

समस्या को सुलझाएं

गीता पाढा

''लोकतंत्र में नेता प्रतिपक्ष द्वारा जब
वोट चोरी जैसे संगीन सवाल उठाए जाएं,
और वे इस मुद्दे पर सरकार और
चुनाव आयोग दोनों से स्पष्ट उत्तर चाहे,,
आरोप प्रत्यारोप के इस दौर में जनता जनार्दन खुद को असंमजस में पाएं,,
इन आरोपों को निराधार बताकर आयोग संवैधानिक दायित्व से नजरें न चुराएं,,
सत्ता पक्ष और विपक्ष इस मुद्दे पर संवाद के लिए एक मंच पर आएं,
और राष्ट्रहित के लिए मिलकर इस समस्या को सुलझाएं...।।"

कलम-दवात
कुमकुम चड्ढा

हमारा दोस्त और हमसफर

जब अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की अप्रत्याशित नीतियों ने पूरी दुनिया को अस्थिर कर दिया है, ऐसे समय में सभी देशों के लिए अपने संबंधों को नया रूप देना और मौजूदा रिश्तों को और मजबूत करना आवश्यक हो गया है। साथ ही, नए गठजोड़ बनाना भी समय की मांग है। यही कारण है कि हर देश अपने कूटनीतिक "रीसेट बटन" को दबा रहा है।

भारत भी इससे अलग नहीं है। जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने चीन की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया, तो वे भी यही कर रहे थे और यह रणनीति सफल साबित हुई, क्योंकि इससे ट्रंप को अपना रुख बदलने पर मजबूर होना पड़ा।

पिछले वर्ष सितंबर में प्रधानमंत्री मोदी, रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन और चीनी नेता शी चिनफिंग के बीच बनी निकटता ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विशेष ध्यान आकर्षित किया था। इस पर प्रतिक्रिया देते हुए ट्रंप ने टिप्पणी की थी, "लगता है हमने भारत और रूस को चीन की गहराइयों में खो दिया है।"

हालांकि, ट्रंप ने भी जल्द ही चीन के साथ संबंध सुधारने की दिशा में कदम बढ़ाया, जिस पर अमेरिका ने पहले भारी शुल्क लगाए थे। हाल में दक्षिण कोरिया में हुई मुलाकात के दौरान दोनों देशों के नेताओं के बीच हाथ मिलाना, मुस्कानें और धीमी बातचीत देखने को मिलीं, इस बैठक को ट्रंप ने रिपोर्टों के अनुसार "12 में से 12 अंक" वाला बताया था।

इसी पृष्ठभूमि में भारत को भी ट्रंप की ही भाषा में कहें तो "12 में से 12 अंक" वाले दोस्ताना रिश्तों की जरूरत है। इसी संदर्भ में भारत और मोरक्को के बीच बढ़ते संबंध महत्त्वपूर्ण हैं।

भारत और मोरक्को की साझेदारी रक्षा और सैन्य सहयोग, खाद्य और स्वास्थ्य सुरक्षा, ऊर्जा रूपांतरण और स्थायित्व जैसे कई अहम क्षेत्रों तक फैली हुई है। दोनों देश नवीकरणीय ऊर्जा को प्राथमिकता देते हैं -मोरक्को अफ्रीका में हरित ऊर्जा का अग्रणी बनना चाहता है, जबकि भारत वैश्विक स्तर पर अपनी स्थिरता की छाप को मजबूत करने के प्रयास में है।

इसके अलावा, दोनों देश संयुक्त सैन्य अभ्यास और खुफिया जानकारी साझा करने जैसे प्रयासों के माध्यम से क्षेत्रीय सुरक्षा को सुदृढ़ कर रहे हैं तथा आतंकवाद जैसी साझा चुनौतियों से निपटने के लिए सहयोग बढ़ा रहे हैं।

इसलिए जब भारत में मोरक्को के राजदूत मोहम्मद मलिकी भारत-मोरक्को द्विपक्षीय संबंधों को लेकर उत्साहित नजर आते हैं, तो यह स्वाभाविक है। उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा, "भारत हमारा रणनीतिक साझेदार है, और मेरा मानना है कि खाद्य एवं स्वास्थ्य सुरक्षा ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें हम बहुत निकटता से मिलकर कार्य कर सकते हैं। हमारे बीच संबंध वास्तव में उससे कहीं अधिक गहरे हैं, जितना लोग समझते हैं। इसके अलावा, आतंकवाद-रोधी सहयोग, समुद्री सुरक्षा और साइबर सुरक्षा जैसे संवेदनशील विषयों पर भी हमारे बीच मजबूत साझेदारी है। इन सभी क्षेत्रों में दोनों देशों की ओर से दृढ़ इच्छाशक्ति दिखाई देती है, और मुझे विश्वास है कि हम रक्षा और औषधि उद्योग जैसे क्षेत्रों में भी उत्कृष्ट प्रगति कर सकते हैं।"

कई राजनयिकों के विपरीत, मोहम्मद मलिकी अपने शब्दों को नापतोल कर नहीं बोलते, वे बेबाक, स्पष्ट और जीवन के हर पहलू का पूरे उत्साह से आनंद लेने वाले व्यक्ति हैं। राजनयिक होने के साथ-साथ लेखक भी, मलिकी एक बहुआयामी व्यक्तित्व हैं, उन गिने-चुने लोगों में से एक, जिन्होंने शक्ति और जीवन के दबावों के बीच संतुलन साधने की कला विकसित की है, चाहे वह उनके राजनयिक जीवन से पहले हो या बाद में।

भारत से इतर, उनकी बातचीत कई विषयों को छूती है। कराची में हुए बम विस्फोट से लेकर राजनीतिज्ञ शशि थरूर और उद्योगपति रतन टाटा तक, जिन्हें वे "कई भारतीयों के लिए देवता समान" मानते हैं। वे अपने छात्र जीवन की याद भी साझा करते हैं, जब उन्होंने "आइसक्रीम बेचकर पैसे कमाए"।

भारत में रहकर उन्होंने एक दिलचस्प बात सीखी - "भारतीयों को खाने पर बुलाइए, लेकिन कभी मंगलवार को नहीं।" अपने व्यक्तित्व को आकार देने वाले वर्षों में उन पर सबसे बड़ा प्रभाव उनके पिता का रहा, जिन्हें वे "अपने समय से आगे का व्यक्ति" बताते हैं। जहां उनकी मां सामान्य माताओं की तरह संरक्षण देने वाली थीं, वहीं पिता ने उन्हें अनुशासन सिखाया - "कभी-कभी ज्यादा कठोर, लेकिन अब पीछे मुड़कर देखता हूं तो वही सबसे सही तरीका था," वे कहते हैं। पैसे को लेकर मलिकी का दृष्टिकोण भी अनोखा है , "मैं यह नहीं पूछता कि हमारे पास खर्च करने के लिए पैसा है या नहीं। अगर मुझे किसी कार्य की उपयोगिता पर विश्वास है, तो मैं पहले निर्णय लेता हूं और फिर उसके लिए जरूरी धन की व्यवस्था करता हूं। आम तौर पर लोग पहले बजट देखते हैं, फिर काम शुरू करते हैं, लेकिन मेरा तरीका उलटा है। पहले काम शुरू कीजिए, पैसा अपने आप निकल आता है। यही कारण है कि अंतत: आप अपेक्षा से अधिक कार्य कर पाते हैं, क्योंकि सीमाओं से बंधे नहीं होते।" यह सिद्धांत उन्होंने राजदूत रहते हुए भी अपनाया और छात्र जीवन में भी।

"विश्वविद्यालय के दूसरे वर्ष के बाद मैंने माता-पिता से एक पैसा भी नहीं लिया," वे बताते हैं। "गर्मियों की छुट्टियों में मैं फ्रांस जाता था, समुद्र तटों का आनंद लेता और साथ में आइसक्रीम बेचता था। आइसक्रीम खुद बनाता था और हर बार अच्छी कमाई करके लौटता था।" वे हंसते हुए जोड़ते हैं, "शुरूआत में मैंने पिता से उधार लिया था, लेकिन बाद में उन्हें उसकी दुगुनी-तिगुनी रकम लौटा दी।"

उनकी सफलता का रहस्य क्या था? "जब बाकी विक्रेता दोपहर में आराम करने चले जाते थे, मैं धूप में बेचने निकल जाता था। मैं न तो ज्यादा चालाक था, न ही होशियार। बस मोरक्को से आया था और सूरज की आदत थी। दोपहर के एक से तीन बजे के बीच बाकी सब चले जाते और मैं उस वक्त दोगुनी बिक्री कर लेता। मैंने समुद्र तट पर बच्चों से भी दोस्ती कर ली थी। वे अपने माता-पिता से कहते कि हम मोहम्मद से ही आइसक्रीम लेंगे। इस तरह मुझे अक्सर अतिरिक्त इनाम भी मिलते।"

उन्होंने आइसक्रीम बनाना भी एक रेसिपी बुक से सीखा, जिसने उनकी कमाई और बढ़ा दी। "जब मैं मोरक्को लौटता था, तब मेरे पास इतना पैसा होता कि एक नहीं, कभी-कभी दो साल तक भी आराम से गुजारा हो जाता," वे मुस्कुराते हुए याद करते हैं।

गंभीरता से बात करें तो मलिकी दोस्ती में गहरा विश्वास रखते हैं। वे कहते हैं, "मैं हर दिन इसे जीता हूं, हर दिन इसे देखता हूं, और अपनी मित्रताओं को सहेजता और महत्व देता हूं।"

लेखक होने के नाते दर्शनशास्त्र उनके जीवन, समय और कार्यों में गहराई से रचा-बसा है। "मैं कौन हूं? मैं कहां से आया हूं? पीड़ा क्या है?" ये वे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर उन्होंने अपनी आगामी पुस्तक में खोजने का प्रयास किया है। वे बताते हैं, "यह एक परंपरागत आत्मकथा नहीं, बल्कि एक गैर-परंपरावादी आत्मकथा है, जिसमें उन घटनाओं का उल्लेख है जिन्होंने मुझे गहराई से प्रभावित किया। इनमें सीखें भी थीं, गलतियां भी, और कुछ ऐसे क्षण जो जीवन बदल देने वाले साबित हुए।" हालांकि, वे पुस्तक के प्रकाशन से पहले अधिक विवरण साझा करने से बचते हैं।

फिर भी वे कुछ अनुभवों का जिक्र करते हैं , "घर में चोरी", "कराची में बम धमाका जिससे मैं बाल-बाल बचा", और "एक भूकंप" का सामना। वे बताते हैं, "कैमरून में चोरी मेरी शादी से कुछ महीने पहले हुई थी। उस समय मेरे पास अच्छी-खासी रकम और खरीदी हुई ज्वेलरी थी। कराची में बम धमाका उस समय हुआ जब अमेरिका के राष्ट्रपति जॉर्ज बुश वहां आए हुए थे, और मैं उसी इलाके के एक होटल में ठहरा था।" वह कहते हैं, "वहीं मैंने आतंकवाद को करीब से देखा। आम तौर पर हमें लगता है कि ऐसा दूसरों के साथ होता है, हमारे साथ नहीं। हम आतंकवाद के बारे में पढ़ते हैं, फिल्मों में देखते हैं, लेकिन खुद को उससे अलग मानते हैं। पर जब आप खुद उसके बीच में होते हैं, तब बहुत से सवाल उठते हैं।"

यहीं वे रुक जाते हैं और आगे की बातों पर मुस्कुरा कर कहते हैं, "बाकी सब जानने के लिए आपको मेरी किताब पढ़नी होगी।" अंत में वे जोड़ते हैं, "जब आप किसी आपदा से बच जाते हैं, तब समझ में आता है कि ईश्वर ने आपको अतिरिक्त समय दिया है और फिर सवाल उठता है कि उस समय का उपयोग सबसे बेहतर तरीके से कैसे किया जाए।"

उनकी भारत यात्रा पहली बार 1990 के दशक में हुई थी, जब उनका मुख्य उद्देश्य आगरा में ताजमहल देखना था। तब से बहुत कुछ बदल चुका है- ट्रैफिक भी। वे मुस्कुराते हुए कहते हैं, "लेकिन मैंने हमेशा यहां के लोगों की संतुष्टि में आकर्षण पाया है, तब भी और अब भी। यह उस गरीबी के बावजूद है जो आंखों से दिखती है। मंदिरों में सोना था, पर कोई उसे छूता नहीं था। मुझे हमेशा भारत की इमारतों की भव्यता (जैसे जामा मस्जिद) ने भी मोहित किया है। और जो बात तब थी, वह अब भी है यहां के लोगों की आत्मीयता।"

कमियों की बात करें तो मलिकी मानते हैं कि स्वच्छता की कमी और अधूरे पड़े बुनियादी ढांचे के प्रोजेक्ट्स जैसी बातें सुधारी जा सकती हैं।

रतन टाटा और शशि थरूर दोनों को वे अपने मित्र बताते हैं। "रतन टाटा से मेरा रिश्ता किसी व्यावसायिक कारण से नहीं, बल्कि पूरी तरह मानवीय मूल्यों पर आधारित था। मैं खुद को भाग्यशाली मानता हूं कि उन्होंने मुझे अपना मित्र कहा," वे कहते हैं।

थरूर से जुड़ी एक मजेदार "मंगलवार डिनर" कहानी वे साझा करते हैं "मैंने शशि थरूर और कुछ अन्य मित्रों को डिनर पर बुलाया। वह मंगलवार का दिन था, और मुझे नहीं पता था कि भारत में मंगलवार को लोगों को बुलाना मुश्किल होता है। आठ लोगों की मेज पर छह-सात तरह के मेन्यू थे, कोई बिना लहसुन का, कोई बिना प्याज का, कोई शाकाहारी, कोई अंडा नहीं खाता। आखिर में मैंने हाथ खड़े कर दिए," वे हंसते हुए याद करते हैं।

बड़ी तस्वीर की बात करें तो मलिकी कहते हैं कि उनका सफर अब तक "काफी सहज" रहा है और कोई बड़ी बाधा नहीं आई "टच वुड," वे कहते हैं, और पास रखी महोगनी की साइड-टेबल पर जोर से दस्तक देते हैं।

केरल ने गरीबी दूर करने का दिखाया रास्ता

आकाश चोपड़ा

केरल ने इससे पहले भी कई उपलब्धियां हासिल की हैं, फिर चाहें वो 100 फीसदी साक्षरता प्राप्त करना हो, पहला डिजिटल साक्षर राज्य बनना हो या पूरी तरह से विद्युतीकृत राज्य बनना है। केरल अब भारत का पहला राज्य बन गया है, जिसने 'अत्यंत गरीबी' यानी एक्सट्रीम पॉवर्टी को पूरी तरह खत्म कर दिया है। मुख्यमंत्री पिनाराई विजयन ने राज्य विधानसभा में इसका ऐलान किया। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार भारत में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में कमी तो आई है, लेकिन बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और ओडिशा जैसे राज्यों में गरीबी कम तो हुई है, लेकिन 'अत्यंत गरीबी' पूरी तरह से खत्म नहीं कर पाए हैं। केरल के मुख्यमंत्री ने बताया कि राज्य सरकार ने कई सर्वे और डेटा विश्लेषण के बाद पाया कि अब केरल में ऐसा कोई परिवार नहीं बचा है। केरल, जो सामाजिक और मानव विकास में अपने अनुकरणीय रिकॉर्ड और विकसित देशों के बराबर स्वास्थ्य सेवा प्रणालियों के लिए जाना जाता है- अत्यधिक गरीबी का उन्मूलन। यह चार साल के, सावधानीपूर्वक नियोजित कार्यक्रम का परिणाम था जिसमें व्यापक सामुदायिक भागीदारी के साथ-साथ स्थानीय स्वशासन विभाग की अगुवाई में कई एजेंसियां शामिल थीं। मई 2021 में पिनाराई विजयन के नेतृत्व वाली दूसरी एलडीएफ सरकार की पहली कैबिनेट बैठक के दौरान अत्यधिक गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम (ईपीईपी) शुरू किया गया था। केरल के जन-केंद्रित विकास और विकेन्द्रीकृत योजना के लिए उत्तरोत्तर राज्य सरकारें श्रेय की पात्र हैं, जिसने यह सुनिश्चित किया कि गरीबी 1973-74 में 59.8 प्रतिशत से घटकर 2011-12 में 11.3 प्रतिशत हो जाए। केरल की मात्र 0.55 प्रतिशत आबादी बहुआयामी रूप से गरीब थी - जो राष्ट्रीय औसत 14.96 प्रतिशत से काफी कम है।

गरीबी से लड़ना एक अंतहीन काम है और अत्यधिक गरीबी को मिटाने के दावे की आलोचना, खासकर आदिवासी आबादी की दुर्दशा के संदर्भ में, अपरिहार्य है। राज्य सरकार ने गरीबी की पुनरावृत्ति को रोकने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई भी नया परिवार अत्यधिक गरीबी में न जाए, ईपीईपी 2.0 शुरू किया है। एलडीएफ ने मिशन मोड में गरीबी के सभी रूपों से निपटने का संकल्प लिया है। 'केरल मॉडल' के आलोचकों ने अक्सर स्थिर विकास और बढ़ती बेरोजगारी को इसकी कथित विफलता के प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है। राज्य ने इन क्षेत्रों में घाटे को पाटने के लिए प्रमुख बुनियादी

ढांचा परियोजनाओं और उच्च तकनीक वाले हरित उद्योगों को गति दी है। यह बेरोजगारी को कम करने के लिए शिक्षित लोगों को कौशल भी प्रदान कर रहा है। ईपीईपी दर्शाता है कि प्रगतिशील शासन सामाजिक सुरक्षा या स्थिरता से समझौता किए बिना, कल्याण और विकास दोनों पर आधारित हो सकता है। बड़े पैमाने पर समुदाय-संचालित यह मॉडल भले ही दोषरहित न हो, लेकिन यह स्वयं विकसित हो रहा है और जमीनी स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत करता है। यह एक वैकल्पिक विकास प्रतिमान प्रस्तुत करता है- एक ऐसी केरल कहानी जो प्रचारित करने लायक है। मुख्यमंत्री ने कहा कि 2021 में सरकार बनने के बाद पहली कैबिनेट बैठक में जो फैसले लिए गए, उनमें में से एक 'अत्यधिक गरीबी उन्मूलन' भी था। उन्होंने कहा, "यह विधानसभा चुनाव के दौरान लोगों से किए गए सबसे महत्वपूर्ण वादों में से एक को पूरा करने की शुरुआत थी।" इसी कड़ी में, एक्सट्रीम पॉवर्टी से सैकड़ों लोगों को बाहर निकालने के लिए केरल सरकार ने कई योजनाएं चलाईं। रिपोर्ट के मुताबिक, 1,000 करोड़ रुपये की लागत का विशेष कार्यक्रम चलाया। 20,648 परिवारों के लिए हर दिन भोजन की व्यवस्था की गई, इनमें से 2,210 परिवारों को गरम खाना उपलब्ध कराया गया।

85,721 लोगों को जरूरी इलाज और दवाइयां दी गईं। 5,400 नए घर बनाए गए या बन रहे हैं। 5,522 घरों की मरम्मत की गई और 2,713 भूमिहीन परिवारों को घर बनाने के लिए जमीन दी गई। मुख्यमंत्री ने एक पोस्ट में बताया कि 21,263 लोगों को पहली बार राशन कार्ड, आधार कार्ड और पेंशन दस्तावेज दिए गए। 4,394 परिवारों को आजीविका परियोजनाओं के लिए आर्थिक मदद दी गई। सरकार ने 64,006 कमजोर परिवारों की पहचान की और हर परिवार की अलग-अलग जरूरतों के हिसाब से छोटी योजनाएं बनाई गईं।

कल्याणकारी राज्य शासन की वह संकल्पना है जिसमें राज्य नागरिकों के आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कल्याणकारी राज्य अवसर की समानता, धन-सम्पत्ति के समान वितरण, तथा जो लोग अच्छे जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं को स्वयं जुटा पाने में असमर्थ है उनकी सहायता करने जैसे सिद्धान्तों पर आधारित है। यह एक सामान्य शब्द है जिसके अन्तर्गत अनेकानेक प्रकार के आर्थिक एवं सामाजिक संगठन आ जाते हैं। कल्याणकारी राज्य सरकार का एक रूप है जिसमें राज्य समान अवसर के सिद्धांतों, धन के समान वितरण और नागरिकों के लिए सार्वजनिक जिम्मेदारी के आधार पर नागरिकों की आर्थिक और सामाजिक भलाई की रक्षा करता है और उन्हें बढ़ावा देता है, जो स्वयं का लाभ उठाने में असमर्थ हैं। चाणक्य हो या फिर अरस्तु या प्लेटो, इन्होंने भी लोक कल्याण कारी राज्य की अवधारणा को महत्त्व दिया है।

लोक कल्याणकारी राज्य से तात्पर्य किसी विशेष वर्ग का कल्याण न होकर सम्पूर्ण जनता का कल्याण होता है। इस तरह सम्पूर्ण जनता को केन्द्र मानकर जो राज्य कार्य करता है, वह लोक कल्याणकारी राज्य है। केरल की पावन धरती, जहां नारियल के हरे-भरे बागान समुद्र की लहरों का आलिंगन करते हैं और पश्चिमी घाट की पर्वत श्रृंखलाएं मानसून की बूंदों से सराबोर हो जाती हैं, केरल अति-गरीबी से मुक्त हो गया है। यह पूरी प्रक्रिया न केवल पारदर्शी और जन-भागीदारी से परिपूर्ण थी, बल्कि मानवीय गरिमा को सर्वोपरि रखकर संचालित हुई। केरल की इस उपलब्धि ने नई आशा जगाई है।

बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्य केरल की माइक्रो-प्लानिंग से सबक ले सकते हैं। केंद्र की योजनाएं- जैसे पीएम आवास, आयुष्मान भारत को ईपीईपी जैसे कार्यक्रमों से जोड़कर और प्रभावी बनाया जा सकता है। केरल की यह घोषणा सामूहिक इच्छाशक्ति और दशकों की दूरदर्शी नीतियों-भूमि सुधार, सार्वजनिक स्वास्थ्य और सामाजिक न्याय का जीवंत प्रमाण है। यही कारण है कि वह गर्व से कह रहा है कि गरीबी-उन्मूलन संभव है।

नवंबर की वो सुबह जब रावलपिंडी जागा और पाकिस्तान का इतिहास बदल डाला

गुलाबी ठंड दस्तक दे चुकी थी। सुबह की ठंडी हवा में धुंध तैरने लगी थी। रावलपिंडी स्थित गॉर्डन कॉलेज के गेट के बाहर सैकड़ों छात्र इकट्ठा थे। हाथों में तख्तियां थीं। इनमें लिखा था- रोटी, आजादी और इन्साफ! और दिलों में उबाल। कोई एक बोलता - 'अय्यूब खान हाय-हाय!', तो बाकी भीड़ एक स्वर में जवाब देती 'जम्हूरियत जिंदाबाद!'

यह 7 नवंबर 1968 की सुबह थी, जब पाकिस्तान की गलियों में पहली बार सत्ता के खिलाफ एक जनसैलाब उमड़ा था। महज गुस्से की आवाज नहीं थे, बल्कि एक पूरे युग के बदलाव का संकेत थे। यह वही आंदोलन था जिसने पाकिस्तान की राजनीति की दिशा मोड़ दी, और आने वाले वर्षों में जुल्फिकार अली भुट्टो जैसे नेताओं को जनता की आवाज बना दिया। उस समय पाकिस्तान में जनरल अय्यूब खान का शासन था, जिन्होंने 1958 में सेना के जरिए सत्ता पर कब्जा किया था। शुरूआत में उन्हें 'विकास का प्रतीक' कहा गया, लेकिन 1960 के दशक के अंत तक उनकी आर्थिक नीतियों ने असमानता बढ़ा दी। शहरों में उद्योगपतियों की अमीरी और गांवों में बढ़ती गरीबी ने जनता को भीतर से तोड़ दिया। छात्रों का यह मार्च धीरे-धीरे रावलपिंडी शहर की नसों में फैलने लगा। दुकानदारों ने शटर गिरा दिए, राह चलते लोग झंडे थामने लगे, और सड़कें नारों से भर गईं। पुलिस ने पहले लाठीचार्ज किया, फिर आंसू गैस छोड़ी और आखिर में गोली चली। एक युवक मारा गया और उसी पल यह प्रदर्शन एक राष्ट्रीय आंदोलन में बदल गया। उस दिन के बाद प्रदर्शन सिर्फ छात्रों तक सीमित नहीं रहे। कराची, लाहौर, पेशावर और ढाका तक आंदोलन फैल गया। फैक्ट्री मजदूर, पत्रकार, कलाकार सबने नारे बुलंद किए। यह वो वक्त था जब पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान एक ही मांग में एकजुट हुए-लोकतंत्र चाहिए। इसी दौर में उर्दू के महान शायर फैज अहमद फैज के शब्दों ने आंदोलन की आत्मा को आवाज दी। उनके शब्द, बोल कि लब आजाद हैं तेरे हर सभा में गूंजने लगे। फैज की पंक्तियां छात्रों के झंडों पर लिखी जाने लगीं, और रावलपिंडी की सड़कों पर शायरी और क्रांति एक हो गए। राजनीतिक हलचल ने जुल्फिकार अली भुट्टो को जनता का चेहरा बना दिया। वही आंदोलन जिसने अय्यूब खान के शासन को हिला दिया, आगे चलकर 1970 के चुनावों का रास्ता खोल गया। अय्यूब खान ने आंदोलन को विद्रोह बताया, लेकिन देश अब उनके खिलाफ खड़ा हो चुका था। फरवरी 1969 तक विरोध इतना तेज हो गया कि उन्हें इस्तीफा देना पड़ा। सत्ता जनरल याह्या खान के हाथों में गई, जिन्होंने चुनाव करवाए और इन्हीं चुनावों ने शेख मुजीबुर रहमान को पूर्वी पाकिस्तान में भारी जीत दिलाई, जिसने 1971 में बांग्लादेश के निर्माण का रास्ता प्रशस्त किया।

दिल्ली आर.एन.आई. नं. 40474/83
पंजाब केसरी
दिल्ली कार्यालय :
फोन आफिस: 011-30712200, 45212200,
प्रसार विभाग: 011-30712224
विज्ञापन विभाग: 011-30712229
सम्पादकीय विभाग: 011-30712292-93
मैगजीन विभाग: 011-30712330
फैक्स : 91-11-30712290, 30712384, 011-45212383, 84
Email: Editorial@punjabkesari.com

स्वत्वाधिकारी दैनिक समाचार लिमिटेड, 2-प्रिंटिंग प्रैस कॉम्पलैक्स, नजदीक वजीरपुर डीटीसी डिपो, दिल्ली-110035 के लिए मुद्रक, प्रकाशक तथा सम्पादक अनिल शारदा द्वारा पंजाब केसरी प्रिंटिंग प्रैस, 2-प्रिंटिंग प्रैस कॉम्पलैक्स, वजीरपुर, दिल्ली से मुद्रित तथा 2, प्रिंटिंग प्रैस कॉम्पलैक्स, वजीरपुर, दिल्ली से प्रकाशित।

https://t.me/AllNewsPapersPaid

प्रवाह

77 साल बेमिसाल

निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक
स्थापना : 18 अप्रैल 1948 • आगरा

निराशा के पहाड़ से आशा का एक पत्थर बेहतर होता है।
-मार्टिन लूथर किंग, जूनियर

सड़क, सुरक्षा और सुधार

पिछले दिनों देश के विभिन्न राज्यों में सड़क हादसों में जैसी खतरनाक बढ़ोतरी देखी गई, उससे सवाल उठता है कि विकास की धमनियां माने जा रहे ये हाईवे क्या दुर्घटनाओं के हाईवे बन चुके हैं। आए-दिन बसों में आग लग रही है, डंपर वाहनों को टक्कर मार रहा है और कुछ नहीं तो बस-ट्रक-टैंपो आपस में ही भिड़ रहे हैं। जैसे कोई प्राकृतिक त्रासदी एकाएक हजारों जिंदगियों को लील लेती है, उसी तरह देश की सड़कों पर घट रही ये दैनिक आपदाएं भी एक मौन त्रासदी को रेखांकित करती हैं। अकेले 2023 में, भारतीय सड़कों पर 1,72,000 से अधिक लोगों की जान चली गई, यानी औसतन हर दिन 474 मौतें या लगभग हर तीन मिनट में एक मौत। जब 400 से ज्यादा यात्रियों को ले जा रहा कोई विमान दुर्घटनाग्रस्त होता है, तब हादसे के बाद जांच तंत्र की सक्रियता व गंभीरता दिखती है, लेकिन सड़कों पर इतनी ही जिंदगियां रोज खत्म होने के बावजूद कहीं कोई शोरगुल नहीं दिखता। इन दुर्घटनाओं की वजहें आमतौर पर नियमों की अनदेखी, वाहन में कोई तकनीकी खराबी या ड्राइवर को नींद आना इत्यादि होती हैं। तेलंगाना में हुए भीषण हादसे के पीछे सड़क चौड़ी करने की परियोजना को एनजीटी से हरी झंडी न मिल पाना बताया जा रहा है। हैरत की बात है कि जिस दिन यह दुर्घटना हुई, एनजीटी ने उसी दिन इसे मंजूरी दे दी, जबकि यह मामला वर्षों से लंबित था। सवाल यह भी है कि सड़क को चौड़ा कर देना ही अगर कम दुर्घटनाओं की गारंटी होता, तो चौड़े एक्सप्रेस-वे पर होने वाली दुर्घटनाओं की क्या वजह समझी जाए। दरअसल, दोषपूर्ण सड़क डिजाइन, घटिया निर्माण और कमजोर प्रबंधन भी इन हादसों के कारण हैं, जिनकी तरफ खुद सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्री नितिन गडकरी भी इशारा कर चुके हैं। इससे यह तो समझ आता ही है कि देश की सड़कें दुनिया में सर्वाधिक असुरक्षित क्यों मानी जाती हैं। यह स्थिति तब और भी अधिक चुनौतीपूर्ण है, जब भारत दुनिया में अमेरिका के बाद दूसरा सबसे बड़ा सड़क नेटवर्क है। सड़क दुर्घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति अर्थव्यवस्था पर भी बोझ बढ़ाती है, जिनसे जीडीपी का

करीब तीन फीसदी हिस्सा सालाना प्रभावित होता है। हाल ही में, सड़क व राजमार्ग मंत्रालय ने राष्ट्रीय राजमार्गों के किसी हिस्से पर एक वर्ष में एक से अधिक दुर्घटनाओं पर ठेकेदारों को दंडित करने का जो फैसला किया है, वह कितना प्रभावी होगा, यह तो वक्त ही बताएगा, लेकिन देश के सड़क तंत्र को व्यापक सुधारों की तत्काल जरूरत है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

युवाओं में क्यों बढ़ रहा कैंसर

भारत सहित पूरी दुनिया में जिस तरह से अब युवाओं में भी कैंसर के मामले बढ़ रहे हैं, वे इस बीमारी के बारे में अलग ढंग से सोचने की जरूरत को दर्शाते हैं। इसके कारणों पर तो शोध होते ही रहेंगे, लेकिन यह तय है कि स्वस्थ जीवनशैली व कुछ सामान्य उपायों से हम इस बीमारी के खतरे को 40 फीसदी तक कम कर सकते हैं।

दस वर्ष पहले किडनी ऑन्कोलॉजिस्ट डॉ. किमरीन रैथमेल ने अजीब प्रवृत्ति देखी कि उनके पास किडनी कैंसर से पीड़ित कई युवा मरीज आ रहे थे। उस वक्त उन्होंने सोचा कि ये मामले उनके जैसे बड़े कैंसर अस्पताल में भेजे गए होंगे, लेकिन इस साल वसंत में जब नेशनल कैंसर इंस्टीट्यूट (एनसीआई) के शोधकर्ताओं ने 2010 से 2019 के बीच की रिपोर्ट प्रकाशित की, तो उसमें दिखाया गया कि अमेरिका में 50 वर्ष से कम उम्र के एक हजार लोगों में से 14 में कैंसर के मामले पाए गए। एनसीआई की पूर्व निदेशक रह चुकीं डॉ. रैथमेल ने कहा, 'तब मुझे एहसास हुआ कि ऐसी प्रवृत्ति हर जगह होगी। दशकों तक कैंसर पर किए गए अध्ययन के बाद ये आंकड़े मुझे कैंसर के बारे में अलग तरह से सोचने पर मजबूर करते हैं।'

नीना अग्रवाल
द न्यूयॉर्क टाइम्स

वर्षों से 'प्रारंभिक कैंसर' की बढ़ती दरों का उल्लेख हो रहा है, जिन्हें आम तौर पर 50 वर्ष से कम उम्र के वयस्कों में होने वाला कैंसर कहा जाता है। लेकिन देश और काल के साथ-साथ स्तन, कोलोरेक्टल, किडनी, अग्नाशय, पेट, वृषण और गर्भाशय के कैंसर सहित एक दर्जन से अधिक प्रकार के कैंसरों में इस प्रवृत्ति की व्यापकता स्पष्ट हो रही है। शुरुआती उम्र में होने वाले कैंसर अब भी दुर्लभ हैं, लेकिन आंकड़ों से पता चलता है कि 1990 के बाद वैश्विक स्तर पर इसमें वृद्धि हुई है और हर साल हजारों नए मामले सामने आ रहे हैं। इसलिए, वैज्ञानिक यह पता लगाने का प्रयास कर रहे हैं कि कैंसर इतनी तेज गति से क्यों बढ़ रहा है। कैंसर शोधकर्ताओं का मानना है कि 1950 के दशक से जीवनशैली में ऐतिहासिक बदलाव शुरू हुआ। पचास के दशक या उसके आसपास पैदा हुए लोगों में 1990 के दशक में कैंसर के शुरुआती दौर की दर ज्यादा देखी जाने लगी। हर दशक के हिसाब से खतरा बढ़ता गया। उदाहरण के लिए, 1990 में पैदा हुए लोगों में 1955 में पैदा हुए लोगों की तुलना में कुछ कैंसर का जोखिम दो से तीन गुना ज्यादा होता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि यह बताता है कि हाल के दशकों में

पर्यावरणीय और जीवनशैली संबंधी जोखिम शुरुआती दौर के कैंसर में वृद्धि का कारण हो सकते हैं। बोस्टन के ब्रिघम एंड विमेंस हॉस्पिटल में मॉलिक्यूलर पैथोलॉजिकल एपिडेमियोलॉजी की प्रमुख डॉ. शुजी ओगिनो कहती हैं कि उच्च आय वाले देशों में पर्यावरण तथा दैनिक जीवन में बहुत बदलाव आया है। हम शारीरिक रूप से कम सक्रिय हैं। हम ज्यादा प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ और चीनी का सेवन करते हैं। हमें हर जगह प्लास्टिक एवं रसायनों का सामना करना पड़ता है। कुछ आंकड़ों के अनुसार, हम पर्याप्त नींद भी नहीं ले रहे। वाशिंगटन यूनिवर्सिटी के कैंसर सेंटर में सर्जरी की एसोसिएट प्रोफेसर और प्रारंभिक कोलोरेक्टल कैंसर पर एक वैश्विक अध्ययन की प्रमुख डॉ. यिन काओ का कहना है कि उक्त कारक का प्रारंभिक कैंसर से कुछ न कुछ संबंध हो सकता है, लेकिन इनमें से कौन-सा कारक जिम्मेदार है, फिलहाल कहना जल्दबाजी होगी। उनके अनुसार, 'कैंसर के नए कारकों की पहचान करना वाकई चुनौतीपूर्ण है।' जैसे कि धूम्रपान से होने वाले फेफड़ों के कैंसर को साबित करने में लंबा समय तथा ढेर सारे सबूत लगे।

फिर भी, मोटापा, शराब का सेवन और खराब आहार को प्रारंभिक कैंसर से जोड़ने वाले साक्ष्य काफी मजबूत हैं। शराब डीएनए को क्षति पहुंचा सकती है और महिलाओं के हार्मोन एस्ट्रोजन के स्तर को बढ़ा सकती है, जो कुछ प्रकार के स्तन कैंसर को बढ़ावा देते हैं। शोध बताते हैं कि शराब पीने वाली महिलाओं की संख्या बढ़ती जा रही है। लगभग 1.5 करोड़ अमेरिकी कैंसर मामलों की समीक्षा में पाया गया कि 1995 और 2014 के बीच मोटापे से संबंधित 12 में से छह कैंसर की घटनाएं युवा वयस्कों में बढ़ीं, तथा उत्तरोत्तर युवा पीढ़ी में यह वृद्धि अधिक तीव्र रही। कोलोरेक्टल कैंसर, शुरुआती कैंसर के सबसे आम प्रकारों में से एक है। डॉ. काओ और उनके सहयोगियों ने 20 वर्षों में 85,000 महिला नर्सों के आंकड़ों का अध्ययन करने पर पाया कि मोटापे से ग्रस्त महिलाओं में शुरुआती कोलोरेक्टल कैंसर होने की आशंका स्वस्थ वजन वाली महिलाओं की तुलना में लगभग दोगुनी थी।

अध्ययनों में यह भी पाया गया कि पश्चिमी आहार भी प्रारंभिक कोलोरेक्टल कैंसर के लिए जिम्मेदार है, जिसमें आमतौर पर फलों और सब्जियों की मात्रा कम होती है तथा लाल एवं प्रसंस्कृत मांस, शर्करा युक्त पेय व अति-प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की मात्रा अधिक होती है। प्रजनन संबंधी बदलाव स्तन कैंसर के लिए महत्वपूर्ण हैं। महिलाएं प्रारंभिक अवस्था में होने वाले कैंसर से असमान रूप से प्रभावित होती हैं, क्योंकि स्तन कैंसर इसके सबसे आम प्रकारों में से एक है। अमेरिका में लड़कियों को अब लगभग 11 या 12 साल की उम्र में मासिक धर्म शुरू हो जाता है- 1950 के दशक में जन्मी लड़कियों की तुलना में थोड़ा पहले। पहली गर्भावस्था की औसत आयु अब 27.5 वर्ष है, जो 1950 के दशक की शुरुआत में 20 वर्ष की आयु से अधिक है। वैज्ञानिकों का कहना है कि यह लंबा अंतराल युवा वयस्कों में स्तन कैंसर की बढ़ती दर का एक कारण हो सकता है। न्यूयॉर्क स्थित कोल्ड स्प्रिंग हार्बर प्रयोगशाला की एसोसिएट प्रोफेसर कैमिला डॉस सैंटोस ने बताया कि शोध बताते हैं कि गर्भावस्था तथा स्तनपान के दौरान स्तन में प्रतिरक्षा कोशिकाओं की संख्या बढ़ जाती है, जो संभावित कैंसरकारी कोशिकाओं से सुरक्षा प्रदान करती है। लेकिन सामाजिक बदलावों के कारण पहली गर्भावस्था देर से होने और कम बच्चे होने के कारण महिलाओं को इस प्राकृतिक प्रक्रिया के नुकसान लंबे समय तक झेलने पड़ते हैं, और उन्हें सुरक्षात्मक लाभ कम मिलते हैं। डॉ. कोलिड्ज ने कहा कि 20 वर्ष की आयु में होने वाली डीएनए क्षति विशेष रूप से खतरनाक होती है, 'क्योंकि आपके पूरे जीवन में कैंसर का खतरा शीर्ष पर होता है।'

डॉ. शुजी ओगिनो कहती हैं कि स्वस्थ लोगों, यहां तक कि शिशुओं के जीनोम में भी, कैंसर पैदा करने वाले जीन में उत्परिवर्तन होते हैं। लेकिन, ट्यूमर विकसित होने में दशकों लग जाते हैं। उन्होंने कहा कि यह एक बड़ा अवसर है। जीवनशैली में बदलाव करके (जैसे धूम्रपान छोड़ना, शराब का सेवन सीमित करना और स्वस्थ वजन बनाए रखना) कैंसर के खतरे को लगभग 40 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है।

©The New York Times 2025

पर्यावरण

कमजोर देशों के अस्तित्व का सवाल

आगामी दस नवंबर को जब सभी देश ब्राजील में कॉप-30 के लिए एकजुट होंगे, तब उन्हें सहमत होना होगा कि पेरिस समझौता ही अंततः दुनिया को बचा सकता है।

एक बार फिर दुनिया को ग्लोबल वार्मिंग की गिरफ्त से छुटकारा दिलाने के लिए सभी देश ब्राजील के बेलम में आगामी दस नवंबर को यूएन के जलवायु परिवर्तन सम्मेलन कॉन्फ्रेंस ऑफ पार्टीज (कॉप-30) में एकजुट होने जा रहे हैं। दस साल पहले जब पेरिस समझौता हुआ था, तब दुनिया ने तय किया था कि हर देश को अपने उत्सर्जन में कटौती करके ग्लोबल वार्मिंग को पूर्व-औद्योगिक स्तर से 1.5 डिग्री सेल्सियस के अंदर रखना है। लेकिन तमाम वादों-इरादों के बाद भी ऐसा नहीं हो सका। वर्तमान हालात में अगर सभी देश पेरिस समझौते के तहत अपने वादों को पूरी तरह से लागू करते हैं, तब भी ग्लोबल वार्मिंग तापमान में वृद्धि 2.6 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच जाएगी और दुनिया पेरिस-पूर्व अनुमानों की तुलना में प्रति वर्ष 57 अतिरिक्त गर्म दिनों को झेल सकती है। 2015 में पेरिस समझौते के वक्त वैज्ञानिकों का मानना था कि अगर कुछ नहीं किया गया, तो सदी के अंत तक दुनिया चार डिग्री सेल्सियस तक गर्म हो जाएगी। ऐसे में, पृथ्वी पर करीब 114 'बहुत गर्म दिन' हर साल आएंगे-जब तापमान ऐतिहासिक औसत के 90वें परसेंटाइल से ऊपर चला जाता है यानी जानलेवा गर्मी। अगर मौजूदा उत्सर्जन कटौती योजनाएं लागू होती हैं और तापमान 2.6 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रहता है, तो दुनिया ऐसे 57 दिन कम झेलेगी।

डॉ. सीमा जावेद

मौसम अब सिर्फ बदलता नहीं, बल्कि चेतावनी देता है। पहले सारी दुनिया 2024 में असहनीय गर्मी में झुलसी, फिर 2025 बाढ़ की सौगात लेकर आया, जिसने भारत सहित नेपाल, बांग्लादेश, चीन आदि दक्षिण एशियाई देशों को अस्त-व्यस्त कर दिया। बाढ़ से सेंट्रल टेक्सास भी अछूता नहीं रहा। और अब तूफान मेलिसा जमैका में तबाही मचाने के बाद क्यूबा जा पहुंचा और द्वीप के इतिहास के सबसे तेज तूफानों में से एक बन गया। लैंसेट काउंटडाउन की ग्लोबल रिपोर्ट, *क्रैडल टू ग्रेव* ने साफ कह दिया है, जीवाश्म ईंधन सिर्फ जलवायु संकट की वजह नहीं हैं, ये हमारी सेहत को गर्भ से समाधि तक नुकसान पहुंचा रहे हैं। रिपोर्ट बताती है कि इनका पूरा जीवनचक्र, निकासी, रिफाइनिंग, ट्रांसपोर्ट, स्टोरेज, जलाने से लेकर वेस्ट तक, हर चरण इन्सानों की सेहत पर वार करता है-गर्भपात से लेकर बच्चों में अस्थमा, ब्लड कैंसर, स्ट्रोक, कैंसर और यहां तक कि मानसिक बीमारियां भी। जीवाश्म ईंधन का जहर हर उम्र को छू रहा है।

ऐसे में, ऐतिहासिक पेरिस समझौता अब भी दुनिया को एक सुरक्षित जलवायु की दिशा में मोड़ सकता है, बशर्ते रफ्तार तेज हो। मगर इस जंग में सबसे अहम हथियार यानी क्लाइमेट एडेप्टेशन फाइनेंस, अब भी पीछे छूट रहा है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) की नई रिपोर्ट *एडेप्टेशन गैप रिपोर्ट 2025* ने चेताया है कि विकासशील देशों को जलवायु प्रभावों से खुद को बचाने के लिए 2035 तक हर साल कम से कम 310 अरब डॉलर की जरूरत होगी। लेकिन हकीकत यह है कि 2023 में यह मदद केवल 26 अरब डॉलर रही, यानी 12 से 14 गुना का लंबा फासला। यूएन महासचिव एंटोनियो गुटेरेस ने कहा कि जलवायु प्रभाव हर दिन तेज हो रहे हैं, लेकिन एडेप्टेशन फाइनेंस उस रफ्तार से नहीं बढ़ रहा। अगर यही रुझान जारी रहा, तो ग्लासगो क्लाइमेट पैक्ट का लक्ष्य यानी 2019 के स्तर से एडेप्टेशन फाइनेंस को दोगुना कर 2025 तक 40 अरब डॉलर तक पहुंचाने का वादा, अधूरा रह जाएगा। क्लाइमेट रेजिलिएंट व लो-कार्बन डेवलपमेंट के लिए पैसे की दरकार है। लेकिन यूएनईपी ने आगाह किया है कि अगर यह पैसा कर्ज के रूप में आया, तो कमजोर देशों पर नया बोझ बढ़ जाएगा। विकासशील देशों के लिए यह वक्त महज 'एडेप्टेशन' का नहीं, बल्कि 'सर्वाइवल' का है।

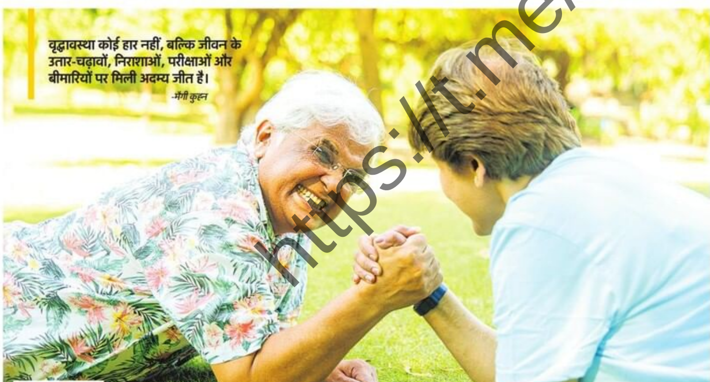

यह नई शुरुआत का समय है

वृद्धावस्था जीवन की वह स्वर्णिम ऋतु है, जब अनुभव ज्ञान में बदलता है, चिंतन प्रखर होता है, और इन्सान अपनी पूर्णता, विवेक तथा निपुणता के सर्वोच्च बिंदु पर पहुंच सकता है।

हम जीवन के सर्वोच्च बिंदु पर पलक झपकते नहीं पहुंचते, बल्कि यह जीवन भर के धीरे-धीरे, निरंतर व समर्पित प्रयासों का परिणाम होता है। जीवन का सार यही है कि जिंदगी की यात्रा धैर्य और निरंतरता मांगती है। एक सचेत, सार्थक जीवन जीने के लिए आवश्यक है कि उसका शुरुआती भाग बुजुर्गों की संगति, संवाद और सीख में लगाया जाए, क्योंकि जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर संचित किया गया यह अनुभव और ज्ञान ही वृद्धावस्था को गहन, अर्थपूर्ण और समृद्ध बनाता है। यही अनुभव निर्णयों को दिशा देते हैं, समस्याओं को सरल बनाते हैं और रिश्तों को मजबूती प्रदान करते हैं।

बाल्टासर ग्रेसियन

जीवन ऋतुओं की तरह बदलता है। बाल्यावस्था वसंत की तरह है-नई, कोमल, उत्साह से भरी हुई, जहां सपने पनपते हैं, पत्ते हरे रहते हैं और हर फूल खिलता है। यौवन पतझड़ के समान है, जहां जीवन परिपक्व हो चुका होता है, जिम्मेदारियां बढ़ती हैं, पत्ते झड़ते हैं, पर फल पकते हैं। यह वह समय है, जब मनुष्य समाज, परिवार और कर्मभूमि में पूर्ण मनोयोग से रमा रहता है। वृद्धावस्था शीतकाल के जैसी होती है-बिल्कुल शांत, स्थिर, ठंडी, पर गहन चिंतन से भरपूर, जहां बाहरी हलचल कम होती है, किंतु भीतर का प्रकाश और भी उज्ज्वल हो उठता है।

मुड़-मुड़ के देख

इस संपूर्ण यात्रा का चरम है 'अमरत्व का द्वीप', एक ऐसा प्रतीकात्मक स्थल, जहां व्यक्ति अपने सारे जीवन-अनुभवों को समेटकर बुद्धि की पराकाष्ठा और परम सत्य तक पहुंचता है। यह आत्मिक अमरत्व, अंतर्मन की प्रकाशपूर्ण पूर्णता का प्रतीक है-वृद्धावस्था का वह सर्वोच्च, परिवर्तनकारी क्षण, निरंतर सीखने और विकास को प्रेरित करता है। जीवन की यही विविधता उसे बेहद रमणीय बनाती है। वृद्धावस्था अंत नहीं, उत्थान का समय है यानी जीवन की वह स्वर्णिम ऋतु, जब अनुभव ज्ञान में बदलता है, चिंतन प्रखर होता है, और मनुष्य अपनी पूर्णता, विवेक और निपुणता के सर्वोच्च बिंदु पर पहुंच सकता है, यदि वह पूरी उम्र आत्म-सुधार, सीखने और निरंतर विकास की राह पर अडिग बना रहे।

दूसरी पारी

दुख बांटने से ही कम होता है

68 वर्षीय कैंसरग्रस्त महिला की अपने बच्चों को लेकर दुविधा पर मनोवैज्ञानिक नीलकंठ ने यह सलाह दी...

मैं 68 वर्षीय महिला हूं और हाल ही में पता चला कि मुझे कैंसर हो गया है। हालांकि, यह शुरुआती चरण में है, लेकिन मैं बाहर रहने वाले अपने बच्चों को बताकर परेशान नहीं करना चाहती। सिर्फ मेरे पति जानते हैं। क्या मुझे बच्चों को इस बारे में बताना चाहिए?

मैं आपकी मनःस्थिति और परेशानियों को समझ सकता हूं। वाकई अपने कैंसरग्रस्त होने की जानकारी बच्चों को देना आसान नहीं है, लेकिन अपने बच्चों और परिवार के अन्य लोगों से अपनी बीमारी को छिपाने से आपकी परेशानियां कम नहीं होंगी, बल्कि बढ़ेंगी ही।

इस बात को जरा इस तरह से समझिए कि ईश्वर न करे, अगर आपके बच्चे को कोई समस्या हो और वह उसे आपसे छिपाए, तो आपको कैसा महसूस होगा। निश्चित रूप से आपको बुरा लगेगा। ऐसे में, मेरी सलाह तो यही है कि अपने बच्चों को अपनी बीमारी के बारे में अवश्य बताएं, इससे आपका मन हल्का होगा और आप बेहतर महसूस करेंगी। दुख बांटने से ही कम होता है। अगर आपके बच्चों और परिवार के अन्य लोगों को इस समस्या के बारे में पता चलेगा, तो बेशक उन्हें पीड़ा होगी, लेकिन उनका समर्थन और सहयोग आपको मिलेगा, जो आपके लिए ताकत बनेगा।

इसके अलावा, अब कैंसर की बीमारी से ग्रस्त लोग भी इलाज की बदौलत अनेक वर्षों तक जीते हैं। अगर आपके बच्चों को पता चलेगा, तो वे कुशल चिकित्सक से संपर्क करके बेहतर इलाज की व्यवस्था कर पाएंगे। आपकी उम्र 68 वर्ष है, तो आपके पति की उम्र भी कम से कम इतनी तो होगी ही। अब इस उम्र में अकेले उनसे आपकी चिकित्सा का प्रबंध करना चुनौतीपूर्ण कार्य होगा। ऐसे में,

आपके इलाज की जिम्मेदारी भी बच्चों या परिवार के लोगों पर ही है। वही लोग फैसला करेंगे कि आपका इलाज कहां और किस चिकित्सक से कराया जाएगा। अगर आपको स्वयं अपने बच्चों को बीमारी के बारे में बताने में असहज महसूस होता है, तो आप अपने पति को कहिए कि वही बच्चों से बात करें। ऐसी परिस्थिति में आपका मजबूत बने रहना और बेहतर इलाज करवाना बेहद जरूरी है। यदि आप ही घबरा जाएंगी, तो बच्चे भावनात्मक रूप से और टूट जाएंगे।

कैंसर होने का पता चलने का मतलब यह नहीं है कि कहानी खत्म हो गई। आजकल उन्नत प्रौद्योगिकी एवं चिकित्सा क्षेत्र में हुए अत्याधुनिक अनुसंधान के कारण कई तरह के कैंसर का इलाज भी संभव है। शुरुआती चरण में कैंसर के ठीक होने की संभावनाएं अधिक होती हैं। अपने देश में ही ऐसे कई उदाहरण हैं, जो कैंसर के इलाज के बाद स्वस्थ हैं और जिंदगी का आनंद ले रहे हैं। अपने बच्चों व परिवार के लोगों को निश्चित रूप से अपनी बीमारी के बारे में बताइए और उन्हें बेहतर इलाज करवाने दीजिए। बच्चे आपका बेहतर ख्याल रखेंगे और ईश्वर ने चाहा, तो आप शीघ्र स्वस्थ हो जाएंगी। हमारी शुभकामनाएं!

*जिंदगी की **दूसरी पारी** बहुत महत्वपूर्ण होती है। हर शुक्रवार इस पर आपको नया पढ़ने को मिलेगा। आप अपने विचार, अनुभव या समस्याएं **edit@amarujala.com** पर भेज सकते हैं, विशेषज्ञों की मदद से हम कोशिश करेंगे कि संवाद का पुल बन सके।*

82 की उम्र में जिंदगी को लेकर यह रोमांच

अधिकांश लोग उम्र का हवाला देकर जोखिम उठाने का साहस नहीं करते एवं आराम करना चाहते हैं। वहीं, इसके विपरीत ऋषिकेश में भारत की सबसे ऊंची बंजी जंपिंग पूरी करके एक 82 वर्षीय महिला ने सोशल मीडिया पर तहलका मचा दिया है, जिनका नाम है ओलेना बॉयको। ब्रिटेन की रहने वाली बॉयको ने उम्र को महज एक संख्या साबित करते हुए 117 मीटर की ऊंचाई से कूदकर लाखों लोगों का दिल जीत लिया और अपनी निडरता के लिए खूब प्रशंसा बटोरी। ओलेना ने साहस और उत्साह की एक प्रेरक मिसाल पेश की है। उनका यह कारनामा वायरल होने के बाद लोग कह रहे हैं कि सपने देखने की कोई उम्र नहीं होती, बस उन्हें पूरा करने का जुनून चाहिए। हर कदम पर नया इतिहास रचने की हिम्मत ही जिंदगी का असली रोमांच है। सोशल मीडिया पर ट्रेंडिंग वीडियो में ओलेना छलांग लगाने से पहले पूरी तरह से सहज, ऊर्जा और उत्साह से लबरेज, खुशी से नाचती तथा शान से चलती दिखाई दे रही हैं। लोगों ने उनकी छलांग को 'साहस की छलांग' और 'जीवन को पूरी तरह से जीने का सबक' बताया है।

वरिष्ठ नागरिकों के काम की संस्थाएं

- *वरिष्ठ नागरिक मनोरंजन केंद्र*
  ये केंद्र बुजुर्गों को सामाजिक मेल-जोल, शारीरिक गतिविधि व मानसिक उत्तेजना प्रदान करते हैं। इनका उद्देश्य वरिष्ठ नागरिकों के अकेलेपन को दूर करना, स्वास्थ्य में सुधार करना और उन्हें एक-दूसरे से जुड़ने का मौका देना है। ये केंद्र योग, व्यायाम, खेल, व्याख्यान और सामुदायिक आयोजनों जैसी विभिन्न गतिविधियों की पेशकश करते हैं। अपने राज्य में इसका केंद्र खोजने या लाभ लेने के लिए, वरिष्ठ नागरिक हेल्पलाइन 14567 पर संपर्क कर सकते हैं।
- *साईं सहारा ओल्ड एज होम*
  यह मानसिक रूप से कमजोर बुजुर्गों को आश्रय, पौष्टिक भोजन, दवाइयां और मनोवैज्ञानिक उपचार प्रदान करता है। यह विशेष रूप से उन वरिष्ठ नागरिकों पर ध्यान केंद्रित करता है, जो डिमेंशिया, अल्जाइमर, डिप्रेशन, चिंता विकार या अन्य मानसिक समस्याओं से पीड़ित हैं, और जिन्हें परिवार या समाज से समुचित सहायता नहीं मिल पाती। अधिक जानकारी और सहायता के लिए www.saisahara.org पर जाएं या 9811585762 पर संपर्क कर सकते हैं।

https://t.me/AllNewsPapersPaid1

हिन्दुस्तान
1936
सत्य • सार्थक • सदैव

उत्साह से मतदान

बिहार में पहले चरण के मतदान का शांतिपूर्वक संपन्न होना सुखद और प्रशंसनीय है। शाम पांच बजे तक हुए 60 प्रतिशत से ज्यादा मतदान से स्पष्ट हो गया कि अंतिम रूप से इस बार मतदान प्रतिशत सराहनीय रहने वाला है। पिछले विधानसभा चुनाव से ज्यादा मतदान से विश्लेषकों के कान खड़े हो गए हैं, तो आश्चर्य नहीं। पहले चरण के मतदान में बड़ी संख्या में महिलाओं को वोट डालते देखा गया है, इससे भी कयासों को बल मिला है। बिहार के कुल 243 विधानसभा क्षेत्रों में से 121 पर मतदान हुआ है। जिसमें मुख्य मुकाबला सत्तारूढ़ एनडीए और प्रमुख विपक्षी महागठबंधन के बीच है और तीसरे पक्ष के रूप में जन सुराज पार्टी भी अपना भाग्य आजमा रही है। इस बार बागी भी बड़ी संख्या में खड़े हैं, तो वोट कटने की आशंकाओं से विश्लेषण की जटिलता बढ़ गई है। बड़े पैमाने पर मतदान के बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि बिहार में हवा किसके पक्ष में बह रही है? हर पक्ष के पास अपने मजबूत मुद्दे हैं और सबने मतदाताओं को लुभाने के लिए हरसंभव प्रयास किए हैं, तो मतदाता भी पूरे मन से मतदान के लिए निकले हैं।

इस बार यह भी खास गौर करने की बात है कि दोपहर एक बजे तक ही मतदान का आंकड़ा 42 प्रतिशत के पार पहुंच गया था। मतदान केंद्रों पर लगी लंबी कतारें गवाही देने लगी थीं कि बिहार के लोगों के लिए इस चुनाव का क्या महत्व है? आज बिहार एक निर्णायक मोड़ पर खड़ा है और मतदाताओं को जिस तरह से खुश करने की कोशिश हुई है, उससे पता चलता है कि जीते कोई भी, बिहार में सरकार की कार्यशैली और गति बदलने वाली है। लोगों की आकांक्षाओं-अपेक्षाओं में वृद्धि हुई है। फिलहाल, मतदान की चर्चा करें, तो दोपहर एक बजे गोपालगंज में जब मतदान 47 प्रतिशत को छू रहा था, तब पटना में मतदान 37 प्रतिशत तक पहुंचा था। इसका मतलब है कि छोटे शहरों और गांवों में मतदान के प्रति ज्यादा उत्साह है। अक्सर यह कह दिया जाता है कि ज्यादा मतदान का एक संकेत सत्ता परिवर्तन होता है, पर विगत दशक में अनेक मौके आए हैं, जब ज्यादा मतदान सत्तारूढ़ दल या गठबंधन के पक्ष में गया है। एक अन्य संकेत है कि महिलाओं के वोट नीतीश कुमार के पक्ष में ज्यादा पड़ते हैं और इस बार मतदान में महिला भागीदारी ज्यादा दिख रही है। हालांकि, ये सामान्य विश्लेषण हैं, जो परिणाम के बाद किनारे धरे रह जाएं, तो आश्चर्य नहीं। भारी मतदान से कोई भी सुनिश्चित संकेत निकालना समझदारी नहीं है।

बिहार में हर दल के पास अपने मजबूत मुद्दे हैं और सबने मतदाताओं को लुभाने के लिए हरसंभव प्रयास किए हैं। लोग भी पूरे मन से मतदान के लिए निकले।

इसमें कोई दोराय नहीं कि जिन 18 जिलों में मतदान हुआ है, वहां कभी मतदान के समय तनाव और हिंसा की आशंका रहती थी, लेकिन इस बार फिर चुनाव आयोग की तैयारी कामयाब दिख रही है। मतदान से काफी दिन पहले ही केंद्रों के आसपास जिस तरह से अर्द्ध सैनिक बलों की सहायता से सुरक्षा प्रबंध किए गए, उससे शांतिपूर्ण मतदान में सहूलियत हुई है। हालांकि, कुछ जगहों पर शिकायतें आई हैं। राजद की ओर से एक आरोप यह लगाया गया कि मतदान केंद्रों पर बार-बार बिजली कटने से असर पड़ा, हालांकि, इस आरोप से चुनाव आयोग ने साफ इनकार किया है। एक अन्य शिकायत लखीसराय से है, जहां उप-मुख्यमंत्री विजय सिन्हा और एक राजद विधायक के बीच सड़क पर झड़प हो गई। ऐसी झड़प से बचना चाहिए। यह अलिखित परंपरा है कि चुनाव या मतदान के समय प्रतिद्वंद्वी नेताओं को आमने-सामने आने से बचना चाहिए। नए दौर में शांतिपूर्ण व सफल चुनाव बिहार की एक विशेषता बन जाए, तो इससे बेहतर कुछ नहीं।

हिन्दुस्तान Hindustan | 75 साल पहले
07 नवम्बर, 1950

दूध की समस्या

कहा जाता है कि पुराने जमाने में भारत में दूध और घी की नदियां बहती थीं। इस कथन को अक्षरशः लेने की आवश्यकता नहीं। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि ये पदार्थ हमारे देश में प्रचुर मात्रा में सुलभ थे। आज भी बड़े-बूढ़े इस बात की गवाही देंगे कि उन्होंने स्वयं वह जमाना देखा है, जब भारत के देहातों में दूध बेचना पाप समझा जाता था और अजनबी अतिथि निःशुल्क यह पदार्थ प्राप्त करते थे।

किन्तु अब स्थिति इतनी बदल गई है कि देहातों में दूध के दर्शन दुर्लभ हो गये हैं। पचास- पचास और सौ- सौ मील की दूरी पर स्थित देहातों का दूध खिंचकर बड़े नगरों में बिक्री के लिए चला जाता है। जिन घरों में दूध पैदा होता है, उनके बच्चों को ही वह नसीब नहीं होता। नगरों में जो दूध लोगों को मिलता है, उसको दूध का नाम देने में भी संकोच होता है। उसके संबंध में यही कहना कठिन होता है कि दूध में पानी मिलाया गया है अथवा पानी में दूध। दूध में मिलावट किस हद तक बढ़ गई है, यह सरकार के उच्चाधिकारियों से भी छिपा नहीं रह गया है। भारत सरकार के कृषि-पदार्थ विक्रय सलाहकार अपनी ताजा रिपोर्ट में कहते हैं, 'दूध में पानी और मलाई निकले दूध की मिलावट भारत में एक आम बात हो गई है। दूध में मैदा और अरारोट जैसा पदार्थ भी मिला दिया जाता है, जिससे दूध की परीक्षा करने वाला यंत्र मिलावट को नहीं पकड़ पाता। दूध में मिलावट इतनी व्यापक हो गई है कि अब लोग प्रायः इसकी परवा ही नहीं करते।' भारत सरकार के सलाहकार के इस कथन में तनिक भी अत्युक्ति नहीं है।

खाद्य पदार्थों में जो लोग मिलावट करते हैं, उनकी गणना समाज के निकृष्टतम अपराधियों में की जानी चाहिए। उनकी जितनी निन्दा की जाये, उतनी ही थोड़ी होगी। हमारा राष्ट्रीय चरित्र कितना गिर गया है, उसका यह जीता-जागता प्रमाण है। किन्तु किसी बुराई की केवल निन्दा करने से ही काम नहीं चल सकता। इस बुराई की रोकथाम करने के लिए विभिन्न प्रांतीय सरकारों ने कानून बनाये हैं, किन्तु कठिनाई यह है कि इन कानूनों पर सख्ती के साथ अमल नहीं किया जाता। बड़े नगरों में म्यूनिसिपल कमेटियों को इस विषय में कार्रवाई करने की सत्ता दी गई है। म्यूनिसिपल कमेटियां अपने इस प्राथमिक कर्तव्य की भी उपेक्षा करती दिखाई देती हैं।

डेढ़ सौ साल से हमें जगाता वंदे मातरम्

योगी आदित्यनाथ | मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

राष्ट्रगीत के 150 वर्ष पूर्ण होने का यह अवसर आत्म-निरीक्षण का क्षण भी है। क्या हम उस भाव को जी पा रहे हैं, जिसके लिए असंख्य देशभक्तों ने प्राणों की आहुति दी?

वंदे मातरम्... यह केवल उच्चरित शब्द नहीं है, यह भारतीय आत्मा का वह शाश्वत निनाद है, जो डेढ़ शताब्दी से अनवरत गुंजित हो रहा है। यह मात्र गीत नहीं, राष्ट्र-जागरण का वह दिव्य महामंत्र है, जिसने पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े भारत को आत्मबोध का प्रकाश दिया, निराशा के घोर तमस में अस्मिता की ज्योति प्रज्वलित की, संघर्ष को संबल और स्वाधीनता को स्वरूप प्रदान किया।

इस गीत में न तो सत्ता का मोह है, न किसी जाति, संप्रदाय या प्रांत का आग्रह। यह गीत संपूर्ण भारत की सामूहिक चेतना का प्रतीक है। वह चेतना, जो हजारों वर्षों की सभ्यता, संस्कृति और अध्यात्म से निर्मित हुई है। इस गीत ने हमें यह सिखाया कि राष्ट्र केवल एक भौगोलिक सीमा नहीं, बल्कि एक जीवंत, संवेदनशील, मातृस्वरूपा सत्ता है, जिसके प्रति हमारी निष्ठा, श्रद्धा और समर्पण ही हमारी असली पहचान है। यह गीत भारतीय जीवन-दर्शन का प्रतीक है, जहां राष्ट्रभक्ति केवल राजनीतिक विचार नहीं, बल्कि भक्ति, साधना और सेवा का रूप ले लेती है।

वंदे मातरम् की रचना अपने आप में एक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण था। जब ब्रिटिश शासन भारत की धार्मिक-सांस्कृतिक चेतना को कुचलने का प्रयास कर रहा था, तब बंकिमचंद्र ने अपने उपन्यास *आनंद मठ* में इस गीत को स्थान दिया। आनंद मठ के संन्यासी यह गीत गाते थे। यह 'संन्यासी विद्रोह' की प्रेरणा बना, जिसने ब्रिटिश सत्ता के सामने भारतीय आत्मबल का पहला प्रतिरोध खड़ा किया। बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने सन् 1875 में जब इस गीत की रचना की, तब उन्होंने केवल काव्य नहीं लिखा, उन्होंने राष्ट्र की सोई हुई आत्मा को जगाने का संकल्प किया। *सुजलाम् सुफलाम् मलयजशीतलाम् शस्यश्यामलाम् मातरम्* की पंक्ति ने भारतीय मानस में चेतना का संचार किया। इस एक पंक्ति में भारत की समृद्धि, सौंदर्य और शक्ति एक साथ मूर्तिमान हो उठे।

सन् 1905 के बंग-भंग आंदोलन के समय *वंदे मातरम्* एक गीत नहीं रहा। इसकी गूंज विद्यालयों, सभाओं, जुलूसों और हर उस मार्ग पर सुनाई देती थी, जहां स्वतंत्रता का स्वप्न जीवित था। फांसी के तख्ते पर चढ़ते क्रांतिकारियों के होंठों पर अंतिम उच्चारण भी 'वंदे मातरम्' ही था। गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर ने जब इसे अपने स्वर में गाया, तो यह केवल गीत नहीं रहा, यह एक आध्यात्मिक अनुभूति बन गया। *वंदे मातरम्* ने धर्म और देशप्रेम को एक सूत्र में बांधा, जिससे भक्ति और देशभक्ति एक ही धारा बनकर बहने लगीं। इसी भावधारा ने लाखों भारतीयों को उस स्वाधीनता यज्ञ में आहुति बन जाने की प्रेरणा दी, जिसकी लौ से भारत ने स्वतंत्रता का सवेरा देखा।

स्वतंत्र भारत के निर्माताओं ने भी इस गीत को राष्ट्र की आत्मा का प्रतीक माना। यही कारण है कि *वंदे मातरम्* आज भी प्रत्येक भारतीय के लिए श्रद्धा और गर्व का विषय है। यह गीत कालातीत है, क्योंकि इसमें न तो किसी युग का बंधन है, न किसी प्रदेश की सीमा। इसमें उस भारतमाता की दिव्यता झलकती है, जो केवल भूभाग नहीं, बल्कि सभ्यता, संस्कृति व सनातन चेतना का जीवंत रूप है। आज जब हम *वंदे मातरम्* की रचना के 150 वर्ष पूर्ण होने का पावन अवसर मना रहे हैं, यह केवल स्मरण का नहीं, बल्कि आत्मावलोकन का क्षण भी है। क्या हम उस भाव को जी पा रहे हैं, जिसके लिए असंख्य देशभक्तों ने अपने प्राणों की आहुति दी? क्या हम अपने जीवन में वही समर्पण, वही अनुशासन और वही मातृभूमि-भक्ति स्थापित कर पाए हैं?

दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज कुछ तथाकथित बुद्धिजीवी *वंदे मातरम्* पर प्रश्नचिह्न लगाने का साहस करते हैं। कभी इसे सांप्रदायिक कहकर सीमित करने का प्रयास किया जाता है, तो कभी इसे किसी संप्रदाय विशेष से जोड़कर उसकी सार्वभौमिकता को संकुचित किया जाता है। यह प्रवृत्ति न केवल अज्ञान और ऐतिहासिक विस्मृति की उपज है, बल्कि राष्ट्रभावना व सांस्कृतिक एकता के प्रति गहरे अनादर का प्रतीक भी है।

वस्तुतः *वंदे मातरम्* किसी मत, पंथ या संप्रदाय का गीत नहीं, यह संपूर्ण भारत की आत्मा का स्वर है। इसमें उस मातृभूमि की वंदना है, जिसकी कृपा से हम सब अस्तित्व पाते हैं। यही कारण है कि 24 जनवरी, 1950 को भारत की संविधान सभा ने सर्वसम्मति से *वंदे मातरम्* को राष्ट्रगीत के रूप में मान्यता दी। यह निर्णय केवल एक औपचारिक घोषणा नहीं था, इस सत्य का प्रतिपादन भी था कि *वंदे मातरम्* भारतीय राष्ट्र की एकात्म चेतना, श्रद्धा व स्वाभिमान का अमर प्रतीक है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के शब्दों में, '*वंदे मातरम्* के गान में करोड़ों देशवासियों ने हमेशा राष्ट्रप्रेम के अपार उफान को महसूस किया है। हमारी पीढ़ियों ने *वंदे मातरम्* में भारत के एक जीवंत और भव्य स्वरूप के दर्शन किए हैं।'

आज भारत आत्मनिर्भरता और विकास की नई यात्रा पर अग्रसर है। इस यात्रा की मूल प्रेरणा वही है, जो डेढ़ शताब्दी पूर्व बंकिमचंद्र ने दी थी, मातृभूमि पर गर्व करने की भावना और कर्म को सेवा में बदलने की भावना। प्रधानमंत्री मोदी के नेतृत्व में जब देश 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' के मंत्र के साथ आगे बढ़ रहा है, तब *वंदे मातरम्* उस एकता की भावना को और गहराई देता है। यह गीत हमें स्मरण कराता है कि भारत की शक्ति उसकी विविधता में है, उसके लोक-जीवन, भाषाओं और संस्कृतियों के समन्वय में है।

वंदे मातरम् का अर्थ केवल मातृभूमि को प्रणाम करना नहीं, बल्कि यह वचन देना है कि हम उसकी रक्षा करेंगे, उसे समृद्ध और गौरवान्वित बनाएंगे। जब कोई किसान अपनी भूमि को उपजाऊ बनाता है, सैनिक सीमा पर डटा रहता है, शिक्षक अपने विद्यार्थियों में संस्कार बोता है और युवा नवाचार से देश का नाम रोशन करता है, तब 'वंदे मातरम्' अपने सार्थक रूप में जीवित रहता है। आज की युवा पीढ़ी को इस गीत के मूल भाव को अपने जीवन का हिस्सा बनाना होगा। तकनीकी युग की तेज रफ्तार में भी यदि उसके हृदय में मातृभूमि के प्रति प्रेम और कर्तव्य का संकल्प बना रहे, तभी यह गीत अमर रहेगा।

आज जब हम इस गीत की 150 वर्षों की यात्रा को नमन करते हैं, तो यह केवल एक साहित्यिक उपलब्धि का सम्मान नहीं, बल्कि उस राष्ट्र-चेतना के स्रोत का अभिनंदन है, जिसने भारत को भारत बनाया। यह गीत हमें सिखाता है कि राष्ट्रप्रेम कोई उत्सव नहीं, यह नित्य आराधना है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

कैंसर के इलाज में बड़ी उम्मीद बन रही इम्यूनोथेरेपी

निरंकार सिंह | पूर्व सहायक संपादक, हिंदी विश्वकोश

आज राष्ट्रीय कैंसर जागरूकता दिवस है। चिकित्सा विज्ञान में आजकल कई अलग पद्धतियों से कैंसर का उपचार किया जाता है और ये पद्धतियां कई मामलों में कारगर भी साबित हो रही हैं। इनमें से ही एक पद्धति 'इम्यूनोथेरेपी' है। इसमें कैंसर सेल्स से लड़ने के लिए हमारे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता (इम्यूनिटी) को मजबूत बनाया जाता है।

इम्यूनोथेरेपी में रोगी के रोग प्रतिरोधक प्रणाली (इम्यून सिस्टम) में सामान्य ट्यूमर मार्कर लगाने के लिए मैसेंजर आरएनए का उपयोग किया जाता है। दरअसल, इसका लक्ष्य इम्यून सिस्टम को इस प्रकार से विकसित करना है कि वह कैंसर कोशिकाओं को पहचानकर उनका मुकाबला कर सके। दुनिया भर में वैज्ञानिक इसकी दवा और वैक्सीन पर काम कर रहे हैं। इसी कड़ी में हाल के वर्षों में जीआरपी (ग्लूकोस रेगुलेटेड प्रोटींस) आधारित वैक्सीन पर हुई रिसर्च ने सबका ध्यान खींचा है। माना यह जा रहा है कि यह वैक्सीन कैंसर के इलाज और रोकथाम में बड़ी भूमिका निभा सकती है। जीआरपी हमारे शरीर में मौजूद एक खास प्रकार के प्रोटीन होते हैं। ये कोशिकाओं को तनाव से बचाते हैं और प्रोटीन को सही आकार देने में मदद करते हैं। लेकिन इनकी सबसे खास बात यह है कि ये हमारे इम्यून सिस्टम को सक्रिय करते हैं। जीआरपी शरीर की प्रतिरोधक कोशिकाओं को कैंसर की पहचान करने और उसे नष्ट करने की क्षमता बढ़ाता है। इसकी सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह शरीर को पूरे कैंसर एंटीजेन की जानकारी देता है, जिससे हमारी रोग प्रतिरोधक कोशिकाएं कैंसर की पहचान कर उस पर तेजी से हमला कर सकें। यही वजह है कि जीआरपी-170 को भविष्य की कैंसर वैक्सीन के लिए 'गेमचेंजर' माना जा रहा है।

शुरुआती प्रयोग में जीआरपी आधारित वैक्सीन ने चूहों पर अच्छे नतीजे दिखाए हैं। इस वैक्सीन ने कैंसर की शुरुआत को रोका है।

अब तक हुए प्री-क्लिनिकल परीक्षण में जीआरपी आधारित वैक्सीन ने चूहों पर अच्छे नतीजे दिखाए हैं। वैज्ञानिक मानते हैं कि जीआरपी वैक्सीन को नैनो-पार्टिकल्स और एडजुवेंट्स (जो इम्यून सिस्टम को और तेज करते हैं) के साथ मिलाकर और ज्यादा असरदार बनाया जा सकता है। इसके अलावा, हरेक मरीज के ट्यूमर से जीआरपी कॉम्प्लेक्स निकालकर पर्सनलाइज्ड वैक्सीन भी तैयार की जा सकती है। इससे इलाज और सटीक हो जाएगा। भारत के कैंसर अनुसंधान केंद्र (सीसीआर) के शोधार्थी इन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति कर रहे हैं। सीसीआर के चिकित्सक-वैज्ञानिक कैंसर, एचआईवी या प्रतिरक्षा-अक्षमता विकारों से पीड़ित रोगियों के परिणाम में सुधार लाने के उद्देश्य से नैदानिक परीक्षणों में नई प्रतिरक्षा-चिकित्सा पद्धति का सक्रिय रूप से परीक्षण कर रहे हैं। सीसीआर में किए गए शोध ने कई नवीन और प्रभावी चिकित्सा पद्धतियों को जन्म दिया है। कैंसर की वैकल्पिक चिकित्सा के क्षेत्र में काम कर रही एक अग्रणी संस्था के वैज्ञानिकों को भी बड़ी कामयाबी मिली है।

डीएस रिसर्च सेंटर, कोलकाता के वैज्ञानिकों ने खाद्य पदार्थों की पोषक ऊर्जा से उस औषधि को तैयार कर लिया है, जो कैंसर कोशिकाओं पर लगाम लगाकर उसका उन्मूलन करने में सक्षम हैं। कोलकाता के जादवपुर यूनिवर्सिटी के नैदानिक अनुसंधान केंद्र (सीआरसी) के निदेशक डॉ टी के चटर्जी के अनुसार, 'डीएस रिसर्च सेंटर की पोषक ऊर्जा से तैयार की गई औषधि- 'सर्वपिष्टी' के पशुओं पर किए गए परीक्षण के परिणाम उत्साहजनक हैं। ऐसे ही परिणाम इसे मानव शरीर पर प्रयोग करने से भी प्राप्त किए जा सकते हैं। यह कैंसर उपचार के इतिहास में युगांतकारी घटना होगी। सीआरसी विभिन्न रोगों के लिए दवाईयों का नैदानिक परीक्षण करता है।

भारत में कैंसर के मामले चिंताजनक रूप से बढ़ रहे हैं तथा आनुवंशिक, जीवन-शैली, आहार, पर्यावरण और स्वास्थ्य देखभाल जैसे कारकों के जटिल अंतर्संबंध के कारण कुछ प्रकार के कैंसर अधिक प्रचलित हो रहे हैं। विशेषज्ञ चेतावनी दे रहे हैं कि युवा भारतीय भी उन कैंसर रोगों से तेजी से प्रभावित हो रहे हैं, जो पारंपरिक रूप से बुजुर्गों को प्रभावित करते रहे हैं। जागरूकता की कमी, देर से निदान और सामाजिक कलंक के कारण इनके परिणाम और भी बदतर होते जा रहे हैं। अब उम्मीद जगी है कि इन खोजों से कैंसर पर लगाम लगेगी।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

मनसा वाचा कर्मणा

अपने भाग्य का फैसला

भाग्य ऐसी चीज है, जिसे आप अचेतन में निर्मित करते आए हैं। आप इसे सचेतन में भी निर्मित कर सकते हैं। आप अपने भाग्य को फिर से लिख सकते हैं। आप कहां जाना चाहते हैं, आप तय करें, अपना मार्ग और मंजिल खुद चुनें। यह आपके हाथ में है।

अगर आप अपने अंतरतम को छू सकें; अगर एक क्षण के लिए अनुभव कर सकें कि सृजन का स्रोत आपके भीतर है और संपूर्ण ध्यान स्वयं पर लगा सकें, तो आप अपना भाग्य दोबारा लिख सकते हैं। वास्तव में, आपका ध्यान हमेशा बिखरा रहता है, क्योंकि जिसे आप 'मैं' मानते हैं, वह आपका घर है, आपकी कार, पत्नी, संतान, शिक्षा, आपका ओहदा और आपकी अन्य सभी पहचानें हैं। अगर मैं आपको इन सभी चीजों से अलग कर दूं, शरीर और मन से भी अलग कर दूं, जिन्हें आपने इकट्ठा किया है, तो आप ऐसा महसूस करेंगे, जैसे आपका अस्तित्व ही नहीं है। तो जिसे आप 'मैं' कहते हैं, वह अभी आपके चारों तरफ फैला हुआ है।

जब मैं 'आप' कहता हूं, तो वह सिर्फ 'आप' हैं। अगर इस पर अपना ध्यान लगाएं, तो आप जिस तरह से चाहेंगे, अपना भाग्य फिर से लिख सकते हैं। अभी, जो 'आप' हैं, वह फैला हुआ है; आप एक बिखरे हुए प्राणी हैं। आप अपने अंदर स्थापित नहीं हैं। आपको अब भी सारे कचरों को बटोरना पड़ता है। फिर यह कचरा आप बन जाता है। आप अभी भी आप नहीं बन पाए हैं; आप एक भीड़ हैं। एक भीड़ का भाग्य हमेशा पहले से निश्चित होता है। जैसे ही आप एक व्यक्ति (इंडिविजुअल) बन जाते हैं, आप अपने भाग्य के स्वामी हो जाते हैं।

देखिए, इस शरीर के साथ बंधन कितना गहरा है। यह सभी आसक्तियों का स्रोत है। आपको अनासक्ति की खोज में कहीं जाने की जरूरत नहीं है। अपने जीवन में आपको इससे उससे दूरी बनाते नहीं चलना है, पर जब एक बार आप बिखर जाते हैं, आपका भाग्य पूर्व निश्चित हो जाता है। आपके जैसे भी कर्म होते हैं, यह बस उसी रास्ते जाता है। जब आप 'इंडिविजुअल' बन जाते हैं (संन्यासी या ब्रह्मचारी होने का अर्थ है, पूरा ध्यान अपने पर केंद्रित करना), तब आपके लिए उलझन नहीं होगी।

जैसे ही आप इंडिविजुअल (व्यक्ति) बन जाते हैं,

आप एक भीड़ हैं और एक भीड़ का भाग्य हमेशा पहले से निश्चित होता है। जैसे ही आप एक व्यक्ति (इंडिविजुअल) बन जाते हैं, आप अपने भाग्य के स्वामी हो जाते हैं।

भाग्य आपका हो जाता है। आपको चुनना है कि आप बंधन चुनेंगे या मुक्ति? हर जीवन में जो सबसे गहरी तड़प है, वह मुक्त होने की है; उस बुनियादी प्रक्रिया से मुक्त होने की, जिसे हम जीवन या मृत्यु कहते हैं। जैसे ही आपका भाग्य सचेतन बनने लगता है, अगला कदम स्वतः उठेगा, क्योंकि आपके अंदर इतना विवेक है कि वह मुक्ति चुनेगा, न कि बंधन। चूंकि आपका भाग्य अचेतनता में निर्मित होता है, आप अपनी चारों तरफ बंधन बुनते रहते हैं।

सद्गुरु जग्गी वासुदेव

ओम बिरला | लोकसभा अध्यक्ष

दुनिया भारत में निवेश करना चाहती है; क्योंकि हमारे यहां लोकतंत्र है, स्थिर मजबूत शासन है। यहां के कार्यबल में जैसे-जैसे महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, भारत आगे बढ़ा है। विकसित भारत के निर्माण में महिलाओं की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण होगी।

आम जनता को आगाह करते आंकड़े

आपको पता है, डेमोक्रेसी (लोकतंत्र) किसे कहते हैं? जिसमें जनता अपनी हुकूमत खुद चुने, पर कौन सी जनता? घर में लेटी जनता नहीं, खेत में काम करती जनता नहीं। फैक्टरी या कंपनी में सिर खपाती जनता नहीं? बिजनेस या फिर कॉल सेंटर में जूझी हुई जनता नहीं। जानते हैं, वह जनता कौन होती है, जो लोकतंत्र को गढ़ती है? वह जनता होती है 'मतदाता-सूची' में जिनका नाम हो। जो वोट कर सके। यानी, सारा लोकतंत्र ही मतदाता-सूची पर टिका है और वही अब संदिग्ध हो रही है। आपको यह अधिकार मिला था, जिसे चाहो उसे चुनो। यह अधिकार अगर दीमक चाट गई, तो फिर सिरों की गिनती में तो रहेंगे, मगर कोई अधिकार नहीं रखेंगे।

राहुल गांधी ने बड़ी मेहनत से अपने संसाधनों का इस्तेमाल करके ये खुलासे किए हैं। इसकी गंभीरता को समझिए। चुनाव आयोग हो या कोई भी संस्था, उसे पहले इसकी जांच करनी चाहिए। यह तमाशा नहीं है, या तो जांच करके राहुल को गलत साबित कीजिए या फिर जगह छोड़िए। आज जो राहुल को नजरंदाज कर रहे हैं। वे अपने भविष्य को नजरंदाज कर रहे हैं। जो इस पर गंभीर नही हैं, वे अपने ही लिए गंभीर नहीं हैं। जिन्हें राहुल पर हंसी आ रही है, वास्तव में वे अपने ही ऊपर हंस रहे हैं। देश बनने के बाद पहला नेता प्रतिपक्ष ऐसा मिला है, जो लोकतंत्र और इंसानों की बराबरी को लेकर इतना सजग है। जो रोज जनता को जगा रहा है। जो भयंकर दमन सहकर भी जूझ रहा है। उसे नजरंदाज करके आप अपना ही नुकसान कर रहे हैं।

राहुल की बात उन युवाओं तक जरूर सीधे चली गई है, जो नए हैं। जो कट्टर और कुंठित नही हैं। वे अंग्रेजी-हिंदी में नहीं फंसते, बल्कि सच्ची बात पर गौर करते हैं। वे पढ़े-लिखे हैं, पढ़े-लिखे इंसान की बात की गंभीरता समझते हैं। हमें इत्मीनान है कि कम-से-कम युवाओं में राहुल का संदेश सीधा जाकर असर कर रहा है। अधेड़ों, अधपके बालों वाले कथित युवाओं और थोड़े उम्रदराज लोगों को समझना होगा। अगर आपके हाथ से वोट देने की ताकत का असर खत्म हो जाए, तो कोई भी आपकी नहीं सुनेगा। जो सुनवाई है अभी, वह वोट की ताकत की वजह से है। राहुल की बात को हवा में मत उड़ाइए, वरना बहुत पछतावा होगा। यह बात सबके लिए है। राहुल के खुलासों पर बहस कीजिए, सवाल कीजिए, जवाब दीजिए- मगर नजरंदाज मत कीजिए। सजग रहिए। बीमारी पता चल गई है और जनता इलाज भी खोज लेगी, क्योंकि सबसे ऊपर जनता ही है। वह जो भी रास्ता तय करेगी, वही सबका रास्ता होगा।

हफीज किदवई, टिप्पणीकार

अनुलोम-विलोम
कथित वोट चोरी

वोट चुराने के आरोप विश्वसनीय नहीं

पास में नहीं दाने (साख), राहुल चले भुनाने (उकसाने/ भड़काने)। वह ब्राजील की मॉडल द्वारा हरियाणा विधानसभा चुनाव में किसी भी मतदान केंद्र पर वोट डालने का प्रमाण तो चुनाव आयोग को दें, तब आम जनता उनकी बात पर एक आना भी विश्वास करेगी। 22 बार वोट डालने की तो बात ही छोड़िए! यह प्रमाण देना कोई बहुत कठिन या असंभव भी नहीं है। कांग्रेस के पास मतदान केंद्रों का मतदान वाले दिन का रजिस्टर होगा, जो उसके पोलिंग एजेंट को मिला होगा। साथ ही चुनाव आयोग, अन्य सभी राजनीतिक दल और निर्दलीय प्रत्याशी के पास भी यह रजिस्टर होगा। इससे पता चल जाएगा कि मॉडल ने वोट डाला या नहीं? उनको यह पता ही होगा कि मतदान केंद्र पर हर मतदाता की पहचान मतदाता पहचान पत्र, आधार या अन्य पहचान पत्र द्वारा की जाती है और फिर संतुष्ट होने पर ही उसे वोट गिराने दिया जाता है। इसीलिए, हर राजनीतिक दल या निर्दलीय प्रत्याशी के पोलिंग एजेंट को मतदान केंद्र के अंदर बिठाया जाता है। राहुल गांधी आखिर वहां से सच्चाई क्यों नहीं पता करते?

अशोक कुमार गोयल, टिप्पणीकार

कांग्रेस नेता राहुल गांधी ने हरियाणा की मतदाता सूची में गड़बड़ी के आरोप लगाए हैं। उनका कहना है कि 25 लाख वोटरों की गड़बड़ी होने की वजह से ही विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को हार मिली। उन्होंने चुनाव आयोग द्वारा तैयार मतदाता सूची दिखाते हुए कहा कि इसमें एक ही स्थान पर कई लोगों के नाम दर्ज हैं और एक ही नाम का उपयोग कई स्थानों पर किया गया है। सूची में मतदाता का फोटो भी साफ नहीं है। उन्होंने कहा कि इन्हीं फर्जी वोटों के सहारे कांग्रेस को हराया गया है। राहुल गांधी ने हरियाणा की मतदाता सूची को लेकर जो आरोप लगाए हैं, उनका जवाब तो चुनाव आयोग देगा, लेकिन सवाल यह उठता है कि जब मतदाता सूची का शुद्धिकरण होता है, तब कांग्रेस विरोध क्यों करती है? मतदाता सूचियों की गड़बड़ियों को दूर करने के लिए ही चुनाव आयोग ने देश के 12 राज्यों में गहन पुनरीक्षण अभियान शुरू किया है। मगर कांग्रेस आयोग के विरोध में खड़ी हो जाती है। इसका अर्थ है कि एक ओर राहुल गांधी फर्जी वोटों के आधार पर भाजपा की जीत का दावा करते हैं, तो दूसरी ओर मतदाता सूची को शुद्ध करने का विरोध भी करते हैं। सवाल यह भी है कि यदि गत विधानसभा चुनाव में मतदाता सूची त्रुटिपूर्ण थी, तो हरियाणा में कांग्रेस के कार्यकर्ताओं और नेताओं ने आपत्ति दर्ज क्यों नहीं कराई?

एस पी मित्तल, टिप्पणीकार

https://t.me/AllNewsPaperPaid1

संपादकीय जागरण

(8) शुक्रवार, 7 नवंबर, 2025 : मार्गशीर्ष कृष्ण - 2 वि. 2082

क्रोध की अवस्था का सबसे उत्तम उपाय है मौन

फर्जी विश्वविद्यालय

इससे संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता कि शिक्षा मंत्रालय फर्जी विश्वविद्यालयों के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए राज्यों के मुख्य सचिवों को पत्र लिखने जा रहा है। आश्चर्य नहीं कि इस पत्राचार के बाद भी फर्जी शिक्षा संस्थान बंद न हों। इसकी आशंका इसलिए है, क्योंकि अतीत में इस तरह की पहल की जा चुकी है, लेकिन सभी फर्जी शिक्षा संस्थानों पर ताला नहीं लगाया जा सका। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यानी यूजीसी हर वर्ष फर्जी विश्वविद्यालयों की सूची जारी करता है, ताकि छात्र उनमें प्रवेश लेने और अपना समय एवं धन बर्बाद करने से बचें। इसके बाद भी वे चलते रहते हैं। इसका मतलब है कि छात्र उनमें प्रवेश लेते हैं। यूजीसी फर्जी विश्वविद्यालयों की सूची जारी करने के साथ ही यह भी बताता है कि इन शिक्षा संस्थानों की ओर से दी जाने वाली डिग्री किसी काम की नहीं होती, लेकिन उनका अस्तित्व बना ही रहता है। कई फर्जी विश्वविद्यालय ऐसे हैं, जिनके खिलाफ एफआइआर भी दर्ज की जा चुकी है, लेकिन उन्हें इसलिए बंद नहीं किया जा सका, क्योंकि कुछ ने अदालतों की शरण ले ली तो कुछ ने किसी अन्य आधार पर अपने को वैध ठहराने की चेष्टा की। स्पष्ट है कि शिक्षा संस्थानों के संचालन संबंधी नियम-कानूनों में कुछ ऐसे छिद्र हैं, जिनका लाभ फर्जी विश्वविद्यालयों को चलाने वाले उठा रहे हैं। फर्जी विश्वविद्यालयों का संचालित होते रहना केवल छात्रों के साथ खिलवाड़ ही नहीं, बल्कि शिक्षा संस्थानों को संचालित करने वाली व्यवस्था का उपहास भी है। यह व्यवस्था कितनी दीन-हीन है, इसका पता इससे चलता है कि देश में जो 22 फर्जी विश्वविद्यालय चल रहे हैं, उनमें से 10 देश की राजधानी दिल्ली यानी संसद, सुप्रीम कोर्ट, शिक्षा मंत्रालय और यूजीसी की नाक के नीचे चल रहे हैं। क्या यह एक मजाक नहीं? कुछ फर्जी विश्वविद्यालय तकनीक, प्रबंधन और कानून की भी डिग्रियां बांटते हैं। किसी को यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि आखिर इन फर्जी विश्वविद्यालयों से कथित तौर पर डिग्री हासिल करने वाले छात्र करते क्या हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि वे अपनी अमान्य डिग्रियों का कहीं पर इस्तेमाल करने में समर्थ हो जाते हों? यह सहज ही समझा जा सकता है कि फर्जी विश्वविद्यालय चोरी-छिपे नहीं, बल्कि खुलेआम सार्वजनिक स्थानों में चल रहे होते हैं। आखिर एक अवैध समानांतर व्यवस्था के सामने विधि का शासन इतना असहाय कैसे हो सकता है? प्रश्न यह भी है कि नियम-कानूनों को कठोर करके इन फर्जी विश्वविद्यालयों को एक झटके में बंद क्यों नहीं किया जा सकता या फिर उन पर ऐसी कोई शर्त क्यों नहीं थोपी जा सकती कि वे यूजीसी के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य हों, ताकि छात्रों के भविष्य से खिलवाड़ न होने पाए?

बना रहे उत्साह

बिहार विधानसभा के पहले चरण के चुनाव में मतदाताओं ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। इस दौरान 18 जिलों की 121 विधानसभा क्षेत्रों के मतदाता अपने पसंदीदा प्रत्याशी को चुनने के लिए घरों से निकले। 64 प्रतिशत से अधिक लोगों ने अपने मताधिकार का उपयोग किया। चुनाव आयोग ने भी प्रथम चरण में मतदान प्रतिशत को बढ़ाने के लिए काफी प्रयास किया था। वोटरों को जागरूक करने के लिए अभियान चलाए गए तथा मतदान केंद्र पर भी पहले से बेहतर सुविधाओं की व्यवस्था की गई। हालांकि, शुरू में मतदान की गति विभिन्न इलाकों में धीमी रही, किंतु बाद में इसमें तेजी आई। कहीं-कहीं मतदान के बहिष्कार, ईवीएम की खराबी और आपसी झड़प की सूचना भी मिली। आयोग द्वारा इस पर तत्काल यथोचित कार्रवाई की गई। सबसे अहम यह रहा कि मुंगेर जिले के नक्सल प्रभावित भीमबांध में करीब 20 साल बाद लोगों ने मतदान किया। इस बार भी मतदान केंद्र पर महिलाओं की लंबी कतारें देखी गईं। युवाओं में भी उत्साह देखने को मिला, वृद्ध भी मतदान केंद्रों पर पहुंचे। 11 नवंबर को होने वाले दूसरे चरण के मतदान में भी यह उत्साह बरकरार रहना चाहिए। चुनाव आयोग को भी लोगों को और जागरूक करना होगा। लोगों को यह बताना होगा कि मतदान करना किसी भी लोकतांत्रिक समाज की आधारशिला है और यह उनका मौलिक अधिकार है। इसके लिए उन्हें किसी भी कार्य से पहले मतदान को प्राथमिकता में रखना होगा और घर से निकलना होगा। तभी लोकतांत्रिक मूल्यों और सिद्धांतों की रक्षा हो सकेगी।

मतदान लोकतंत्र के स्वास्थ्य के लिए नितांत महत्वपूर्ण है। इसमें भागीदारी सुनिश्चित होनी ही चाहिए।

कह के रहेंगे — माधव जोशी

जागरण जनमत — कल का परिणाम

क्या न्यूयार्क मेयर चुनाव में ममदानी की जीत ट्रंप को राजनीतिक रूप से कमजोर करेगी?

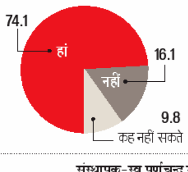

आज का सवाल
क्या ध्रुव जुरैल को टेस्ट टीम में विशेषज्ञ बल्लेबाज के रूप में खिलाया जाना चाहिए?

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है। सभी आंकड़े प्रतिशत में।

राष्ट्र जागरण का प्रथम मंत्र वंदे मातरम्

अमित शाह

औपनिवेशिक भारत के सबसे अंधकारमय काल में लिखा गया वंदे मातरम् जागृति का एक ऐसा प्रभात-गीत बन गया, जिसने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को सभ्यतागत गौरव के साथ जोड़ दिया

हमारे देश के इतिहास में ऐसे कई महत्वपूर्ण पड़ाव आए, जब गीतों, कलाओं ने अलग-अलग रूपों में लोक भावनाओं को सहेजकर आंदोलन को आकार देने में महती भूमिका निभाई। चाहे छत्रपति शिवाजी महाराज जी की सेना के युद्धगीत हों, आजादी के आंदोलन में सेनानियों के गान हों या आपातकाल के विरुद्ध युवाओं के सामूहिक गीत, इन सबने भारतीय समाज को स्वाभिमान की प्रेरणा भी दी और एकजुट भी किया। ऐसा ही है भारत का राष्ट्रीय गीत वंदे मातरम्, जिसका इतिहास किसी युद्धभूमि से नहीं, बल्कि विद्वान बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय जी के शांत, लेकिन अडिग संकल्प से शुरू होता है। 1875 में जगद्धात्री पूजा (कार्तिक शुक्ल नवमी या अक्षय नवमी) के दिन उन्होंने उस स्रोत की रचना की, जो भारत की स्वतंत्रता का शाश्वत गीत बन गया। इन पवित्र शब्दों को लिखते हुए वे भारत की गहनतम सभ्यतागत जड़ों से प्रेरणा ले रहे थे। अथर्ववेद के उद्घोष 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः' से लेकर देवी महात्म्य में विश्वमाता के आह्वान से प्रेरणा ले रहे थे।

बंकिम बाबू का यह मंत्र प्रार्थना भी था और भविष्यवाणी भी। वंदे मातरम् केवल भारत का राष्ट्रीय गीत ही नहीं, स्वतंत्रता आंदोलन का प्राण ही नहीं, बल्कि यह बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय जी द्वारा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की प्रथम उद्घोषणा है। इसने हमें याद दिलाया कि भारत केवल जमीन का एक टुकड़ा नहीं, बल्कि एक भू-सांस्कृतिक राष्ट्र है, जिसकी एकता उसकी संस्कृति और सभ्यता से आती है। यह केवल भू-भाग नहीं है, बल्कि तीर्थ है, स्मृति, त्याग, शौर्य और मातृत्व से बंधी पवित्र भूमि है। जैसा कि महर्षि अरबिंद ने वर्णन किया, बंकिम आधुनिक भारत के एक ऋषि थे, जिन्होंने अपने शब्दों के माध्यम से राष्ट्र के आत्मा को पुनर्जीवित किया। उनका आनंदमठ केवल एक उपन्यास नहीं, बल्कि गद्य में एक मंत्र था, जिसने एक ऐसे राष्ट्र को जागृत किया, जो अपनी दिव्य शक्ति को भूल चुका था। अपने एक पत्र में बंकिम बाबू ने लिखा, 'मुझे कोई आपत्ति नहीं है, यदि मेरे सभी कार्य गंगा में बहा दिए जाएं। यह श्लोक ही अनंत काल तक जीवित रहेगा। यह एक महान गान होगा और लोगों के हृदय को जीत लेगा।' ये शब्द भविष्यसूचक थे। औपनिवेशिक भारत के सबसे अंधकारमय काल में लिखा गया वंदे मातरम् जागृति का प्रभात-गीत बन गया, एक ऐसी रचना, जिसने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को सभ्यतागत गौरव के साथ जोड़ दिया। ऐसी पंक्तियां केवल वही व्यक्ति लिख सकता था, जिसके रोम-रोम में राष्ट्र के प्रति भक्तिभाव कूट-कूट कर भरा हो।

अवधेश राजपूत

वर्ष 1896 में रवींद्रनाथ टैगोर जी ने वंदे मातरम् को धुन में पिरोया और कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में इसे गाया, जिससे इसे वाणी और अमरता प्राप्त हुई। यह गीत भाषा और क्षेत्र की सीमाओं से आगे बढ़कर पूरे देश में गूंज उठा। तमिलनाडु में सुब्रमण्यम भारती जी ने इसका तमिल अनुवाद किया और पंजाब में क्रांतिकारियों ने इसे गाते हुए ब्रिटिश राज को खुली चुनौती दी। 1905 में बंग-भंग आंदोलन के दौरान बंगाल में विद्रोह भड़क उठा। अंग्रेजों ने वंदे मातरम्' के सार्वजनिक पाठ पर प्रतिबंध लगा दिया था, फिर भी 14 अप्रैल, 1906 को बारीसाल में हजारों लोगों ने इस आदेश की अवहेलना की। जब पुलिस ने शांतिपूर्ण सभा पर लाठीचार्ज किया तो पुरुष और महिलाएं सड़कों पर वंदे मातरम् का नारा लगाते हुए लहूलुहान हो गए। वहां से 'वंदे मातरम् का मंत्र गदर पार्टी के क्रांतिकारियों के साथ कैलिफोर्निया पहुंच गया। यह आजाद हिंद फौज में भी गूंजा, जब नेताजी के सैनिक सिंगापुर से मार्च कर रहे थे। इसी तरह यह 1946 में रायल इंडियन नेवी की क्रांति में भी गूंजा, जब भारतीय नाविकों ने ब्रिटिश युद्धपोतों पर तिरंगा फहराया। खुदीराम बोस से लेकर अशफाक उल्ला खां तक, चंद्रशेखर आजाद से लेकर तिरुपुर कुमारन तक, नारा एक ही था। यह अब केवल एक गीत नहीं रहा, बल्कि भारत के सामूहिक आत्मा की आवाज बन गया। महात्मा गांधी ने स्वयं स्वीकार किया था कि वंदे मातरम् में "सबसे सुस्त रक्त को भी जगाने की जादुई शक्ति" थी। इसने उदारवादियों और क्रांतिकारियों तथा विद्वानों और नाविकों तक को एकजुट किया। महर्षि अरबिंद जी ने इसीलिए कहा था कि यह 'भारत के पुनर्जन्म का मंत्र' है।

26 अक्टूबर को मन की बात कार्यक्रम में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने वंदे मातरम् गीत के इस इतिहास की देशवासियों को फिर से याद दिलाई। राष्ट्रीय गीत वंदे मातरम् के 150 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में 7 नवंबर से भारत सरकार की ओर से अगले एक वर्ष तक अलग-अलग कार्यक्रमों का आयोजन करने का निर्णय लिया गया है। इन विभिन्न आयोजनों के माध्यम से देश भर में वंदे मातरम् का पूर्ण गान होगा, जिससे देश की युवा पीढ़ी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के विचार को आत्मसात कर पाए।

आज जब हम भारत पर्व मना रहे हैं और सरदार पटेल की जयंती पर उन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण कर रहे हैं तो यह भी याद करते हैं कि कैसे सरदार साहब ने एक भारत का निर्माण कर वंदे मातरम् की भावना को ही मूर्त रूप दिया। यह गीत केवल अतीत का स्मरण मात्र नहीं, बल्कि भविष्य के लिए एक आह्वान भी है। वंदे मातरम् आज भी विकसित भारत 2047 के हमारे संकल्प को प्रेरणा दे रहा है। यह भारत के सभ्यतागत आत्मविश्वास का प्रतीक है। अब इस भावना को आत्मनिर्भर और श्रेष्ठ भारत में परिवर्तित करना हमारी जिम्मेदारी है। वंदे मातरम् स्वतंत्रता का गीत है, अटूट संकल्प की भावना है और भारत के जागरण का प्रथम मंत्र है।

राष्ट्र के आत्मा से जन्मे शब्द कभी समाप्त नहीं होते, वे सदैव जीवित रहते हैं, पीढ़ियों तक गूंजते रहते हैं। यह जयघोष युगों और पीढ़ियों में अनंत काल तक प्रतिध्वनित होता रहेगा। समय आ गया है कि हम अपने समृद्ध इतिहास, अपनी संस्कृति, अपनी मान्यताओं और अपनी परंपराओं को भारतीयता की दृष्टि से देखें।

वंदे मातरम्!

(लेखक केंद्रीय गृहमंत्री हैं)
response@jagran.com

तकनीकी विकास पर ध्यान दे निजी क्षेत्र

एनके सिंह

भारत के तकनीक में पिछड़ने का एक कारण निजी क्षेत्र का शोध एवं विकास के लिए सरकार पर आश्रित रहना है

केंद्र सरकार देश के निजी क्षेत्र से लगातार कह रही है कि वह अपने लाभ का कुछ प्रतिशत शोध एवं विकास यानी आरएंडडी में लगाए। हाल में प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के प्रमुख ने भी कहा कि निजी क्षेत्र पैसे को 'नकद' के रूप में रखने की जगह निवेश करे तो देश की जीडीपी सात प्रतिशत तक जा सकेगी। भारत में शोध एवं विकास जैसे तात्कालिक लाभ न देने वाले उपक्रमों को सरकार के भरोसे छोड़ने का निजी क्षेत्र का रिकार्ड रहा है। हालांकि शोध एवं विकास के लाभ लेने में वे सबसे आगे रहते हैं। अमेरिका जैसे संपन्न देशों में निजी क्षेत्र आरएंडडी के लिए सरकार का इंतजार नहीं करता। गूगल, एनवीडिया या माइक्रोसाफ्ट अधिकांश नवाचार अपने बूते करते हैं। क्वांटम कंप्यूटिंग में गूगल का 'विलो' इसका ताजा उदाहरण है।

तकनीकी नवाचार मानव का स्वभाव है। चूंकि यह जीवन और उसके उपादानों को सहज और सस्ता करता है, लिहाजा इसे अंगीकार करना अपरिहार्य होता है। बैलगाड़ी, साइकिल, मोटर-चालित वाहन, वायुयान-इनमें से किसी के प्रयोग को रोकना समाज को निश्चित ही अवनति की ओर ले जाता है। कंप्यूटर और इंटरनेट तकनीकी का नया दौर है-एआइ, लेकिन यह दौर यहीं नहीं ठहरा है। अगला चरण क्वांटम कंप्यूटिंग का है। यह भी वर्चुअल फेज से निकल कर वास्तविक और व्यावहारिक प्रयोग में आने लगा है। नए क्वांटम कंप्यूटर दुनिया के सबसे तेज सुपर कंप्यूटर के मुकाबले लाखों गुना तेजी से गणना करने जा रहे हैं। चिकित्सा, शिक्षा के साथ कोविड जैसी महामारी में वैक्सीन तैयार करने और कैंसर की कोशिकाओं का त्वरित विश्लेषण कर सटीक निदान बताने में ही नहीं, बल्कि युद्ध में भी इस नई टेक्नोलाजी की अप्रतिम भूमिका होगी।

आज दुनिया के विकसित देशों में होड़ इस बात की नहीं है कि कौन ज्यादा सक्षम ग्राफिक प्रोसेसिंग यूनिट (जीपीयू) बनाएगा या ज्यादा एआइ यूनिट्स स्थापित करेगा। अब यह दौड़ क्वांटम कंप्यूटिंग में क्षमता विकसित करने की हो गई है। जो देश सबसे ज्यादा क्यूबिट्स वाले क्वांटम कंप्यूटर बना सकेगा, वही विजयी होगा-बौद्धिक ही नहीं, आर्थिक और सामरिक रूप से भी। फिलहाल इस दौड़ में अमेरिका का गूगल अपने सुपर कंप्यूटर विलो और चीन अपने जूचोंगझी-3 के साथ खड़े हैं। यूरोप एक जमाने में वैज्ञानिक शोध में सबसे आगे रहा था, लेकिन अब इसमें पिछड़ता जा रहा है। भारत भी इस दौड़ में पीछे है। रेस में बना रहना है तो अमेरिका और चीन का मुकाबला करने के लिए उसे अपनी पूरी शक्ति लगानी होगी। 2021 में 76,000 करोड़ रुपये (85 करोड़ डालर) के परिव्यय के साथ केंद्र सरकार ने नेशनल सेमीकंडक्टर मिशन शुरू किया, जबकि क्वांटम कंप्यूटिंग में प्रमुख देशों के प्रयास देखते हुए 2024 में नेशनल क्वांटम मिशन के लिए अगले सात साल के लिए मात्र 70 करोड़ डालर का फंड रखा। दोष सरकार का नहीं है। विलो अमेरिकी सरकार ने नहीं बनाया है, न ही उसने कोई फंड दिया है। गूगल शोध में अपने व्यय से यह कमाल करके आज दुनिया का नेतृत्व कर रहा है। पिछले एक साल में एनवीडिया का राजस्व दोगुना हुआ है। यह संभव इसलिए हुआ है कि इन निजी कंपनियों ने शोध में जम कर पैसा लगाया। इसके उलट भारत में आजादी के बाद से ही निजी क्षेत्र ने अपने को निरीह और क्षमता-विहीन माना और शोध एवं विकास या ढांचागत विकास के लिए सरकार पर आश्रित रहने लगा। इस कारण भी देश तकनीकी नवाचार के मामले में पिछड़ गया। भारत में शोध पर कुल खर्च इसकी जीडीपी का मात्र 0.6 प्रतिशत है, जबकि चीन का लगभग 2.68 प्रतिशत। ध्यान रहे कि चीन की जीडीपी भारत की लगभग पांच गुना है। यानी शोध राशि में अंतर 20 गुना है। दुर्भाग्यवश भारत में निजी क्षेत्र का योगदान मात्र 37 प्रतिशत है।

प्रौद्योगिकी से जुड़े एक कार्यक्रम में पीएम मोदी ● फाइल

वित्त मंत्रालय की एक हालिया रिपोर्ट के अनुसार देश में एआइ और मशीन-लर्निंग तकनीकी जानने वालों की नौकरियां 61 प्रतिशत बढ़ी हैं। एमेजोन ने दुनिया भर में 22 हजार कर्मियों को निकालने की प्रक्रिया शुरू की है, जिसमें भारत के 1000 कर्मी हैं। वर्ल्ड बैंक की रिपोर्ट कहती है कि दक्षिण एशिया के देशों में एआइ की वजह से उद्योगों में नौकरियां 20 प्रतिशत कम हुई हैं। साथ ही एआइ-संबंधित स्किल वालों का वेतन 30 प्रतिशत बढ़ा है। हालांकि कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि एआइ का यह प्रभाव अस्थायी है, जिसमें नई तकनीकी से कुछ नकारात्मक असर दिखाई देते हैं, लेकिन दीर्घकाल में इससे काम की रफ्तार बढ़ेगी और सुविधाओं का असाधारण विस्तार होगा, जैसा कि 1980-90 के दशक में कंप्यूटर के प्रयोग के बाद के भारत में देखा गया। अन्य उद्योगों या सेवाओं के अलावा एआइ का प्रयोग व्यापक रूप से कृषि में होने की संभावना अधिक है। जरूरत इसकी है कि देश के युवाओं को एआइ-सक्षम बनाया जाए। इसके लिए त्रिस्तरीय प्राविधिक शिक्षा में आइटी ट्रेनिंग से लेकर आइआइटी-रिसर्च तक पूरी शक्ति एआइ के ज्ञान को उपलब्ध कराने में लगाना होगा। चूंकि एआइ और क्वांटम कंप्यूटिंग का प्रयोग सबसे ज्यादा साफ्टवेयर उद्योगों, मैन्यूफैक्चरिंग, कृषि और निर्माण में होने जा रहा है, इसलिए निजी क्षेत्र को अपने लाभ का निश्चित अंश इससे संबंधित शोध में लगाने के लिए बाध्य करना जरूरी है।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)
response@jagran.com

ऊर्जा

सफलता

सफलता के लिए समाज ने कुछ मानक गढ़ दिए हैं-धन, पद, प्रतिष्ठा आदि। प्रायः इन्हीं के आधार पर किसी व्यक्ति के जीवन-मूल्य का निर्णय कर दिया जाता है, परंतु प्रश्न यह है कि क्या मानव जीवन बाहरी उपलब्धियों से परिभाषित हो सकता है? जब प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रकृति में भिन्न है तो एकसमान कसौटी पर सभी को कसना निश्चय ही अनुचित और अतार्किक है।

सफलता का मूल सार बाहर नहीं, भीतर खोजा जाना चाहिए। किसी के लिए आर्थिक समृद्धि जीवन का लक्ष्य हो सकती है, जबकि किसी के लिए भीतरी शांति ही सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। इसका अर्थ यह है कि सफलता की वास्तविक परिभाषा व्यक्ति के मन, अनुभवों और उसकी आत्मप्रकृति से जन्म लेती है। जो हमारे भीतर संतोष और सार्थकता का उदय करे, वही हमारे लिए सफलता का मार्ग है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम समय-समय पर स्वयं से पूछें-क्या हम वही जीवन जी रहे हैं, जिसकी हमारे अंतस को आवश्यकता है? क्या हमारे निर्णय हमारे अपने हैं या केवल समाज के प्रभाव का परिणाम? जब तक हम बाहरी विचारों की छाया से मुक्त नहीं होंगे, तब तक अपनी वास्तविक प्रकृति को पहचान पाना कठिन है। जिस प्रकार सुबह का दृश्य तभी स्पष्ट होता है जब कोहरा हटने लगता है, उसी प्रकार मन का प्रकाश तब ही प्रकट होता है जब बाहरी अपेक्षाओं का आवरण हट जाता है। महापुरुषों के विचार हमें दिशा अवश्य दे सकते हैं, परंतु यात्रा हमें स्वयं ही तय करनी होती है।

अपने जीवन की परिभाषा स्वयं बनाना ही सफलता का सार है। कर्मयोग की यही भावना है कि व्यक्ति अपने स्वभाव, अपनी क्षमता और अपनी आत्मनिष्ठा के अनुरूप कर्म करे। जो व्यक्ति अपने मूल स्वरूप के साथ संगति स्थापित कर लेता है, वही जीवन के मार्ग पर वास्तविक सफलता प्राप्त करता है। सफलता कोई गंतव्य नहीं, बल्कि आत्मबोध की सतत यात्रा है।

आदित्य नारायण अवस्थी

पाठकनामा

pathaknama@pat.jagran.com

बाहुबलियों से मुक्त हो राजनीति

राहुल वर्मा द्वारा लिखित आलेख 'बाहुबलियों की बेलगाम राजनीति' पढ़ा। बिहार विधानसभा चुनाव के प्रथम चरण में 18 जिलों की 121 सीटों पर मतदान हो गया। लेखक ने स्पष्ट रूप से राजनीति में बाहुबलियों के बढ़ते हस्तक्षेप की चर्चा की है। दरअसल बात ये है कि जब से इंटरनेट मीडिया का दौर आया है तब से अधिकतर बाहुबली अपनी राबिन हुड वाली छवि बनाने में लग गए हैं। इस बार बिहार में अधिकतर बाहुबलियों के बेटे, बेटी या पत्नी चुनाव लड़ रही हैं। कई सीटों पर दोनों मोर्चे पर बाहुबली ही हैं। यदि आप बिहार के विधायकों का डाटा निकालेंगे तो तकरीबन विधायक किसी न किसी जुर्म में लिप्त मिलेंगे। लगता है बिहार की जनता भी राउडी टाइप नेता को ही पसंद करती है। अपने वोटों के माध्यम से तो उन्हें चुनकर जनता ही भेजती है। यदि जनता बाहुबलियों का पूर्ण रूप से बहिष्कार कर दे तो शायद वे विधायक बनने में नाकाम हो जाएंगे। महत्वपूर्ण बात ये भी है कि बिहार में जितने भी राजनीतिक दलों के शीर्ष नेता हैं वे जानबूझकर बाहुबलियों को टिकट देते हैं, ताकि उसके प्रभाव से आसपास की सीटें भी उनके खाते में आ जाएं। और उनकी पार्टी सत्ता में आ जाए। उन्हें जनता के हितों से कोई मतलब नहीं। उन्हें बस सत्ता साधकर सियासी रोटियां सेंकनी हैं। पिछले दिनों दो बाहुबलियों की रंजिश में एक की जान चली गई। आज भी बिहार में बाहुबलियों का दबदबा बना हुआ है। इसके पीछे वजह है सत्ता का संरक्षण। यदि संरक्षण न दिया जाए तो वे इस तरह से कानून को हाथ में नहीं लेंगे। अब देखना ये है कि इस बार बिहार विधानसभा चुनाव में बाहुबलियों का दबदबा कायम रहता है या फिर बिहार की जनता उन्हें सिरे से नकारती है।

मुशर्रफ परवेज, छात्र, दिल्ली विश्वविद्यालय

राजनीति में रुके अपराधीकरण

राहुल वर्मा का आलेख 'बाहुबलियों की बेलगाम राजनीति' पढ़ा। आज की राजनीति का उद्देश्य सत्ता की प्राप्ति हो गई है। एक दौर में नेतागण चुनाव जीतने के लिए बाहुबलियों का इस्तेमाल करते थे, लेकिन आज बाहुबली खुद ही चुनाव लड़ रहे हैं और अप्रत्याशित सफलता हासिल कर रहे हैं। सभी दलों को ऐसे उम्मीदवार की तलाश होती है, जो पार्टी को चंदा भी दे सके एवं चुनावी मैदान में जीत हासिल कर सके। इसलिए किसी भी दल को बाहुबलियों को प्रत्याशी बनाने से परहेज नहीं है। विधानसभा और लोकसभा का क्षेत्र व्यापक होता है। एक सामान्य राजनीतिक कार्यकर्ता के लिए चुनाव प्रबंधन चुनौतीपूर्ण कार्य है, जबकि बाहुबलियों के लिए यह एक आसान काम है। राजनीति में परिवारवाद की जड़ गहरी होती जा रही है, इसलिए अब बाहुबलियों के स्वजन को भी चुनावी मैदान में उतारा जा रहा है। भारतीय समाज का आधार जातीय वर्ण व्यवस्था है। बाहुबलियों को आसानी से अपनी जाति का समर्थन हासिल हो जाता है। वर्तमान विधानसभा में आधे विधायकों के ऊपर आपराधिक मामले दर्ज हैं। मजबूत इच्छाशक्ति से ही अपराधीकरण पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

इं. हिमांशु शेखर, गयाजी

नाड़ी का गहन परीक्षण आवश्यक

आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धति में नाड़ी का गहन परीक्षण किया जाता है। नाड़ी की गति से हृदय की गति और रक्तचाप के बारे में, नाड़ी की प्रकृति से रोग के प्रकार, जैसे कि वात, पित्त या कफ के बारे में, नाड़ी की मजबूती या कमजोरी से रोगी की शारीरिक स्थिति और रोग प्रतिरोधक क्षमता के बारे में चिकित्सक रोगी के लिए उपयुक्त उपचार योजना बना सकते हैं। आजकल के अधिकांश डाक्टर नाड़ी देखने में पर्याप्त समय नहीं देते हैं। इसके स्थान पर एमआरआइ, सिटी स्कैन, अल्ट्रासाउंड की रिपोर्ट देखकर ही दवा लिखते हैं। वे अब मरीज से विस्तृत बातचीत भी नहीं करते। उनकी लिखी दवाएं इस तरह ती डायग्नोसिस पर आधारित होती है। एसोसिएशन फिजीशियन आफ इंडिया (एपीआइ) के यूपी चैप्टर चेयरमैन के अनुसार, डायग्नोस्टिक का 50 प्रतिशत आधार मरीज से उसका हालचाल जानना, 25 प्रतिशत आधार मरीज की नाड़ी का एक मिनट परीक्षण करना होना चाहिए, शेष 25 प्रतिशत के लिए जांच करानी चाहिए। नब्ज देखने पर मेनेनजाइटिस, टाइफाइड आदि के संकेत भी मिल जाते हैं। चिकित्सक को केवल जांच के भरोसे नहीं रहना चाहिए। उनको दिमाग, आंख, कान, नाक का भी प्रयोग करना चाहिए। रोगी के दर्द बताने पर तुरंत सीटी स्कैन कराने के लिए न कहें, पहले उनकी हिस्ट्री जानें एवं लक्षण देखें।

धर्मेन्द्र नाथ रस्तोगी, पटना

X पोस्ट

बस में मुफ्त सवारी का वादा चुनावी नैया पार लगाने में कारगर साबित हो रहा है। फिर चाहे बेंगलुरु हो या फिर न्यूयार्क। जक्का जैकब@Zakka_Jacob

बिहार विधानसभा चुनाव में हर एक दल ने आपराधिक पृष्ठभूमि वालों को खुले दिन से टिकट बांटे हैं। कांग्रेस के उम्मीदवारों में दागियों का आंकड़ा 67 प्रतिशत, राजद में 65 प्रतिशत, भाजपा में 60 प्रतिशत, लोजपा में 57 प्रतिशत, जनसुराज में 47 प्रतिशत और जदयू में 36 प्रतिशत है। कोई किसी से कम नहीं। प्रकाश सिंह@singh_prakash

पंजाबी पिता और तिब्बती माता की संतान आफताब सिंह पुरवाल फिर से सिनसिनाटी के मेयर बन गए हैं। उन्होंने जेडी वेंस के सौतेले भाई को हराकर चुनाव जीता। उनकी पत्नी ईसाई हैं और उनकी कोई मंशा नहीं कि वह अपनी आस्था को बदलकर मतांतरण करें। मोनिका वर्मा@TrulyMonica

बायोमीट्रिक उपस्थिति वाली व्यवस्था का विरोध करने वाले अधिकांश लोगों को अनुपस्थिति पकड़े जाने का डर होता है। वे अनावश्यक रूप से निजता के उल्लंघन का बहाना बनाते हैं। आरके विज@ipsvijrk

जनपथ

बम्पर वोटिंग हो रही जमकर बरसे वोट,
मतदाता जी दे रहे जाने किसको चोट।
जाने किसको चोट लगाओ मत अंदाजा,
जनता अपने आप चुनेगी अपना राजा।
ठीक न जिनके काम उन्हीं पर चलता डम्पर,
मानो शुभ संकेत हो रही वोटिंग बम्पर।

- ओमप्रकाश तिवारी

संस्थापक-स्व.पूर्णचन्द्र गुप्त, पूर्व प्रधान सम्पादक- स्व. नरेन्द्र मोहन, नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन- महेन्द्र मोहन गुप्त, प्रधान सम्पादक -संजय गुप्त
जागरण प्रकाशन लिमिटेड के लिये आनन्द त्रिपाठी द्वारा दैनिक जागरण प्रेस C-5, C-6 & 15 इंडस्ट्रियल एरिया, पाटलिपुत्रा, पटना - 800013 से प्रकाशित एवं मुद्रित, सम्पादक (बिहार/प.बंगाल)-विष्णु प्रकाश त्रिपाठी, स्थानीय सम्पादक - आलोक मिश्रा * दूरभाष : 0612-2277071, 2277072, 2277073
E.mail : patna@pat.jagran.com, R.N.I. NO. BIHHIN/2000/03097* इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं सम्पादन हेतु पी.आर वी.एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी पटना जीपीओ रजि.नं. R-10/NP-18/14-16 समस्त विवाद पटना न्यायालय के अधीन ही होंगे। वर्ष 26 अंक 203

****

कल्पमेधा

जिस साहित्य से हममें गति और शक्ति न पैदा हो, जो हममें संकल्प और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह हमारे लिए बेकार है।
– मुंशी प्रेमचंद

लापरवाही का हासिल

अब यह लगभग साफ है कि दिल्ली और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में प्रदूषण का गहराता संकट जितना मौसम की मार है, उससे ज्यादा यह सरकार की अनदेखी और लापरवाही का नतीजा है। वरना क्या कारण है कि पिछले कुछ वर्षों की तरह इस बार भी दिल्ली में प्रदूषण की समस्या गंभीर होने को लेकर तमाम पूर्वानुमान सामने आए, लेकिन चंद औपचारिक घोषणाओं के अलावा कुछ भी ऐसा नहीं किया गया, जिससे राजधानी की हवा को थोड़ा साफ रखा जा सके। अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि पिछले कई दिनों से लगातार दिल्ली में वायु गुणवत्ता सूचकांक 'खराब' या फिर 'बेहद खराब' श्रेणी में बना हुआ है, लेकिन इससे निपटने के लिए ठोस कदम नहीं दिख रहे हैं। उल्टे कई स्तर पर स्थिति बिगड़ने के अनुमानों के बावजूद उदासीनता का आलम कायम है। सवाल है कि दिल्ली में सांस लेने के लिए भी हवा अगर सुरक्षित नहीं बची है, तो इसके लिए कौन जिम्मेदार है और लगातार गहराती इस समस्या का समाधान क्या है।

यों हर वर्ष ठंड की आहट के साथ ही वायुमंडल में हवा के घनीभूत होने की वजह से धुआं सहित अन्य कारक दिल्ली में वायु गुणवत्ता को बुरी तरह प्रभावित करते हैं। मगर इस वर्ष दिवाली के मौके पर सर्वोच्च न्यायालय की ओर से हरित पटाखों के मामले पर दी गई राहत का बेलगाम तरीके से दुरुपयोग किया गया। नतीजतन, दिवाली के अगले ही दिन स्थिति जिस कदर बिगड़ी देखी गई, वह मौसम की वजह से कम और सरकार से लेकर आम लोगों के स्तर पर बरती गई बहुस्तरीय लापरवाही का नतीजा ज्यादा थी। उसके बाद से दिल्ली में वायु गुणवत्ता सूचकांक लगातार या तो 'खराब' या फिर 'बेहद खराब' श्रेणी में बना हुआ है। हालत यह है कि यहां के बहुत सारे लोगों की सेहत के सामने सांस से संबंधित परेशानियों सहित कई तरह की मुश्किलें पैदा हो रही हैं, लेकिन अब भी प्रदूषण को कम या दूर करने के लिए कोई ईमानदार इच्छाशक्ति नहीं दिखती। हालांकि दिल्ली में इस समस्या पर काबू पाने के मकसद से कृत्रिम बारिश कराने के लिए 'क्लाउड सीडिंग' कराने की खबर आई, लेकिन मौसम के साथ नहीं देने की वजह से वह भी कामयाब नहीं हुई।

सवाल है कि आज दिल्ली जिस हालत से गुजर रही है, यहां की हवा जिस स्तर तक खराब हो चुकी है, क्या उसके कारणों को सूचीबद्ध करके सार्वजनिक करने की कोशिश सरकार ने की है? उन कारणों पर काबू पाने के लिए क्या व्यवस्था की गई? हकीकत यह है कि प्रदूषण के चिंताजनक स्तर तक पहुंच जाने के बाद सुप्रीम कोर्ट को केंद्रीय वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग से हलफनामा दर्ज करने के लिए कहना पड़ रहा है कि प्रदूषण को गंभीर होने से रोकने के लिए क्या कदम उठाने का प्रस्ताव है। शीर्ष अदालत में उन खबरों के बारे में भी जिक्र किया गया, जिनके मुताबिक दिल्ली भर में दिवाली के मौके पर सैंतीस में से केवल नौ वायु गुणवत्ता निगरानी केंद्र के काम कर रहे थे। इसकी जवाबदेही किस पर आती है? एक ओर, सुप्रीम कोर्ट स्थिति बिगड़ने से पहले कदम न उठाने को लेकर सवाल उठा रहा है, दूसरी ओर आज भी लगातार प्रदूषण से हवा और ज्यादा खराब होते जाने की खबर आ रही है। मगर ऐसा लगता है कि इसकी आशंका पहले से होने और इससे संबंधित पूर्वानुमानों के बावजूद सरकार के लिए यह कोई प्राथमिक चुनौती नहीं है।

नतीजों का संदेश

अमेरिका में राज्य स्तरीय चुनावों के नतीजों से एक स्पष्ट आहट सुनी जा सकती है। यह एक ओर प्रवासियों के पक्ष में जनादेश है, तो दूसरी ओर राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की विवादित नीतियों के खिलाफ संदेश भी। न्यूयार्क के महापौर से लेकर कई राज्यों के गवर्नरों और स्थानीय चुनावों के आए परिणामों ने स्पष्ट कर दिया है कि अमेरिकी समाज विविधता एवं समरसता की संस्कृति को ही पसंद करता है और उसे किसी की मनमानी पसंद नहीं। इस लिहाज से देखें, तो प्रवासियों को मुद्दा बना कर अपने फैसले पर अड़े दिख रहे ट्रंप के लिए ये चुनावी नतीजे एक झटके की तरह हैं। उनकी तमाम तल्खियों और धमकियों के बावजूद न्यूयार्क में जोहरन ममदानी मेयर का चुनाव जीत गए। न्यूयार्क में बीते पचास वर्षों में सबसे अधिक मतदान हुआ। यह एक बड़ा घटनाक्रम है। इससे प्रतीत होता है कि तमाम बाधाओं और उतार-चढ़ाव के बावजूद समुदाय विशेष की राजनीति से ऊपर उठ कर अमेरिका आगे बढ़ने के लिए तैयार है। न्यूयार्क से लेकर वर्जीनिया, मिसिसिपी, केंटकी और ओहायो के सिनसिनाटी शहर में हुए चुनाव में जहां डेमोक्रेटिक पार्टी का दबदबा दिखा, वहीं भारतवंशियों का भी खूब बोलबाला रहा।

खास बात यह है कि इन नतीजों के बाद अमेरिका में डेमोक्रेटिक पार्टी के भीतर फिर से उत्साह लौट आया है और खुद हिलेरी क्लिंटन ने नतीजों को लोकतंत्र की जीत बताया है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट हो गया है कि देश वास्तव में क्या चाहता है। दरअसल, न्यूयार्क एक प्रवासी के नेतृत्व वाला शहर बन गया है। जोहरन ममदानी ने जीत के बाद कहा भी कि यह शहर प्रवासियों का ही था। गौरतलब है कि इस भारतवंशी नेता को हराने ने लिए राष्ट्रपति ट्रंप ने पूरी ताकत झोंक दी थी। बावजूद इसके उनका जीतना यह साबित करता है कि न्यूयार्क के मतदाता मौजूदा सत्ता से किस कदर नाखुश हैं और वे मानते हैं कि अमेरिका प्रवासियों का भी देश है। यह उनके इस भरोसे और उम्मीद की भी जीत है, जो यह मानता है कि देश निरंकुशता से नहीं चलता। समझा जा सकता है कि राष्ट्रपति ट्रंप के लिए आगे का रास्ता निर्बाध नहीं होने जा रहा है। इन चुनावी नतीजों को रिपब्लिकन पार्टी के लिए एक सबक की तरह भी देखा जा रहा है।

भीड़ प्रबंधन की अनदेखी से बढ़ते हादसे

आंध्रप्रदेश के श्रीकाकुलम जिले में मची भगदौड़ से कई लोगों की मौत कोई पहला हादसा नहीं है। सवाल यह है कि बार-बार इस तरह के हादसे क्यों हो रहे हैं और हम इससे सबक क्यों नहीं लेते? ऐसी दुर्घटनाओं का सिलसिला बरसों से जारी है।

योगेंद्र माथुर

आंध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम जिले में वेंकटेश्वर स्वामी मंदिर में बीते दिनों भगदड़ में दस श्रद्धालुओं की मृत्यु हो गई और कई लोग घायल हो गए। जैसा कि अब तक होता आया है, सभी बड़े नेताओं और राजनीतिक दलों ने दुर्घटना पर शोक संवेदना जताते हुए इस घटना की जांच कराने की मांग की। उधर, स्थानीय पुलिस और प्रशासन दुर्घटना की जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ते हुए दिखाई देते रहे। प्रशासन ने मंदिर प्रबंधन द्वारा दर्शन व्यवस्था की पूर्व सूचना न देने से सुरक्षा व्यवस्था न हो पाने की बात कही। मुख्य रूप से दर्शनार्थियों की अनुमान से अधिक भीड़ जुटने, मंदिर का प्रवेश-निकास द्वार एक ही होने और व्यवस्था के लिए लगे अवरोधक गिरने से भगदड़ मचने की बात कही गई। वहीं प्रवेश और निकास द्वार संकरा बताया गया। बहरहाल, यह पहला अवसर नहीं है जब किसी धार्मिक स्थल पर भगदड़ मची हो और श्रद्धालुओं की जान गई हो। ऐसी दुर्घटनाओं का सिलसिला बरसों से जारी है।

हाल के वर्षों में कई दुर्घटनाएं हुईं जिनमें सैकड़ों श्रद्धालुओं की मौत हो गई। इसी वर्ष उत्तरप्रदेश, उत्तराखंड, गोवा, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और मध्यप्रदेश के विभिन्न शहरों में हुए आयोजनों में ऐसी लगभग एक दर्जन दुर्घटनाएं हो चुकी हैं। अकेले आंध्रप्रदेश में ही धार्मिक स्थलों पर भगदड़ की इस वर्ष यह तीसरी दुर्घटना है। मगर इन दुर्घटनाओं से कोई सबक लिया गया हो, ऐसा दिखाई नहीं पड़ता।

आए दिन पर्व-त्योहारों पर श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ती है। इसी के साथ कई छोटे-बड़े धार्मिक आयोजन यथा मेले, कथा-सत्संग और प्रवचन कहीं न कहीं होते रहते हैं, जिनमें बड़ी संख्या में श्रद्धालु उमड़ते हैं। धार्मिक आयोजनों से इतर कई सामाजिक, सांस्कृतिक और संगीत आयोजनों के साथ राजनीतिक सभाएं-रैलियां भी होती हैं, जिनमें खासी भीड़ जुटती है। इन अवसरों पर भीड़ नियंत्रण और प्रबंधन, स्थानीय प्रशासन एवं सरकारों के लिए बड़ी चुनौती होती है। आयोजन सफलतापूर्वक संपन्न हो जाए तो ठीक, नहीं तो किसी भी प्रकार की दुर्घटना होने पर लीपापोती करने में स्थानीय प्रशासन की पूरी मशीनरी जुट जाती हैं। राजनीतिक पार्टियां दुर्घटना पर शोक व्यक्त कर और सरकारें जांच कमेटी या आयोग का गठन कर अथवा मुआवजे का मरहम लगा कर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेती हैं। बाद में समय के साथ जख्म भरते जाते हैं। दुर्घटना को लगभग भुला दिया जाता है, जब तक कि कोई नई दुर्घटना न हो जाए। इन दुर्घटनाओं से कोई सबक नहीं लेता।

प्रायः देखा जाता है कि समुचित सुरक्षा-व्यवस्था न होने अथवा कुप्रबंधन के कारण भगदड़ मचती है। कई बार आयोजनों से जुड़े प्रबंधन और प्रशासन की घोर लापरवाही या अनदेखी भी इसके लिए जिम्मेदार होती है। अधिकांश बड़े आयोजनों या राजनीतिक रैलियों के दौरान यह देखने में आता है कि आयोजकों का पूरा ध्यान अपनी शक्ति, सामर्थ्य अथवा लोकप्रियता के प्रदर्शन पर रहता है। व्यवस्था और जन सुरक्षा को हाशिये पर डाल दिया जाता है। दुर्घटना से बचने के कोई प्रबंध नहीं किए जाते। ऐसे अवसरों पर किसी भी प्रकार की दुर्घटना से बचने के लिए नियम और

कानून के तहत आयोजकों की जिम्मेदारी तय की जानी चाहिए। किसी भी आयोजन की अनुमति तभी दी जानी चाहिए, जब आयोजक सुरक्षा-व्यवस्था की संतोषजनक कार्ययोजना प्रस्तुत करें। आयोजकों के प्रबंधन कौशल का भी आकलन किया जाना चाहिए।

> **भारत में भीड़ नियंत्रण और प्रबंधन को लेकर ठोस नीति या कार्ययोजना का अभाव रहा है। यही कारण है कि अत्यधिक भीड़ जब-तब भगदड़ या अन्य प्रकार की दुर्घटनाओं की वजह बनती है। अनुमान से अधिक आई भीड़ को प्राय: दुर्घटना का कारण बताया जाता है, लेकिन वर्तमान तकनीकी दौर में संभावित भीड़ का अनुमान लगाना कोई बहुत मुश्किल नहीं रह गया है। सीसीटीवी कैमरों और ड्रोन की सहायता से भीड़ पर आसानी से नजर रखी जा सकती है। आयोजन स्थल पर अत्यधिक भीड़ होने पर पर उपग्रहों से जन सघनता की जांच करने वाले 'ट्रेकिंग साफ्टवेयर' जोड़ कर और निगरानी कर ऐसी दुर्घटनाओं को रोका जा सकता है।**

वैसे भारत में भीड़ नियंत्रण और प्रबंधन को लेकर ठोस नीति या कार्ययोजना का सदैव अभाव रहा है। यही कारण है कि अत्यधिक भीड़ जब-तब भगदड़ या अन्य प्रकार की दुर्घटनाओं की वजह बनती है। अनुमान से अधिक आई भीड़ को प्रायः दुर्घटना का कारण बताया जाता है, लेकिन वर्तमान तकनीकी दौर में संभावित भीड़ का अनुमान लगाना कोई बहुत मुश्किल नहीं रह गया है। सीसीटीवी कैमरों और ड्रोन की सहायता से भीड़ पर आसानी से नजर रखी जा सकती है। आयोजन स्थल पर अत्यधिक भीड़ होने पर पर उपग्रहों से जन सघनता की जांच करने वाले 'ट्रेकिंग साफ्टवेयर' को जोड़ कर और निगरानी कर ऐसी दुर्घटनाओं को रोका जा सकता है। हर भीड़ अव्यवस्था या भगदड़ जैसी दुर्घटनाओं में बदल सकती है। लिहाजा यह मान कर ही किसी भी भीड़ वाले आयोजन को ध्यान में रखते हुए सुरक्षा-व्यवस्था तय की जानी चाहिए। किसी भी आयोजन स्थल पर अत्यधिक भीड़ बढ़ने की संभावना पर उसके सीधे प्रसारण का कई स्थानों पर प्रबंध कर भीड़ को एक ही जगह जमा होने से रोका जा सकता है। यह सबसे सुरक्षित तरीका है।

पर्व-त्योहारों पर आम तौर पर दर्शन-पूजा के लिए भीड़ उमड़ती है। इन अवसरों पर कथा-सत्संग और प्रवचनों के छोटे-बड़े आयोजन भी होते रहते हैं। इस तरह के अवसरों पर श्रद्धालुओं में पहले दर्शन और प्रसाद पाने की होड़ अथवा आगे बढ़ने या बैठने की आपाधापी सामान्य बात होती है। ऐसी स्थिति में दुर्घटना से बचाव के लिए सुरक्षा-व्यवस्था की पहले से कार्ययोजना तैयार की जाना चाहिए और आयोजन स्थल पर पर्याप्त अवरोधक लगाने के साथ पुलिस बल के अलावा मंदिर प्रबंधन या आयोजन से जुड़े कार्यकर्ताओं को भी सुरक्षा-व्यवस्था में तैनात किया जाना चाहिए। फिसलन भरी जगह या संकरे मार्ग भी दुर्घटना की वजह बनते हैं। प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि आयोजन स्थलों पर विद्युत व्यवस्था के तार बेतरतीब तरीके से लगे होते हैं या लटके होते हैं। ऐसे में वहां करंट लगने या फैलने का खतरा बन जाता है। ऐसे में भगदड़ की स्थिति बन जाती है और श्रद्धालु अपनी जान गंवा देते हैं। तेज हवा या बारिश के समय ऐसी दुर्घटनाएं अधिक होती हैं।

सुरक्षा-व्यवस्था की समीक्षा करते समय ऐसी त्रासदी रोकने की तरफ भी विशेष ध्यान होना चाहिए। अत्यधिक भीड़ की स्थिति में आयोजन स्थलों पर प्रवेश व निर्गम द्वार की व्यवस्था अनिवार्य हो। वहां पेयजल, चिकित्सा व जनसुविधा परिसर की व्यवस्था भी अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। इन स्थानों पर आग की स्थिति से निपटने के लिए दमकल सेवाओं के साथ एंबुलेंस की व्यवस्था भी महत्त्वपूर्ण होती है। ऐसे में कोई दुर्घटना होने पर बड़ी जनहानि से बचा जा सकता है। कई बार छोटी-मोटी घटनाएं भी अफवाहों या भ्रामक सूचनाओं के फैलने से बड़ी दुर्घटना में बदल जाती हैं। कहीं आग लगने या करंट फैलने की अफवाहों के कारण भी बड़ी दुर्घटनाएं हुई हैं। अधिक भीड़ जुटने वाले अवसरों और इन स्थलों पर नियंत्रण के लिए सूचना तंत्र या नियंत्रण कक्ष की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए, ताकि समय रहते लोगों को सचेत किया जा सके।

अफवाहों पर नियंत्रण कर बड़ी दुर्घटनाओं रोका जा सकता है। ऐसा भी नहीं है कि किसी स्थल या आयोजन में जुटने वाली भीड़ की संख्या का पूर्वानुमान या आकलन सदैव सही साबित हो। भीड़ अनुमान से अधिक भी हो सकती है। मगर सबसे जरूरी है लोगों में अनुशासन, सावधानी और सचेतनता। ऐसा हो, तो भगदड़ पर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है। मगर आखिर में यही सवाल है कि हम इन हादसों से कब सबक लेंगे?

संभावनाओं की राह

राजेंद्र जोशी

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का प्रारूप देश के सामने नई दृष्टि के साथ प्रस्तुत हुआ, जिसमें भारतीय शिक्षा प्रणाली को समग्र रूप से पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया है। यह दावा किया गया कि यह इक्कीसवीं सदी की पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति है और इस पर कोई विवाद भी नहीं है, क्योंकि पिछली बार 1986 में बनी नीति को केवल 1992 में संशोधित किया गया था। लगभग तीन दशकों के लंबे अंतराल के बाद बनी यह नीति भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था और संस्कृति के समसामयिक संदर्भों को ध्यान में रखकर रची गई है। पर सवाल यह है कि पांच वर्ष बीत जाने के बाद भी नई शिक्षा नीति देश भर में प्रभावी और समान रूप से लागू क्यों नहीं हो पाई है? आज भी विभिन्न राज्य नई शिक्षा नीति के विविध घटकों को अपने-अपने ढंग से अपनाने में व्यस्त हैं, जिससे शिक्षा के राष्ट्रीय मानक और रूप-रेखा असंतुलित हो रही है। नीति का उद्देश्य तो देश में गुणवत्तापूर्ण, सुलभ और समावेशी शिक्षा व्यवस्था को साकार करना था, लेकिन इसके व्यावहारिक स्वरूप में अनेक अड़चनें हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का आधारभूत मंत्र है- समग्र शिक्षा प्रणाली के माध्यम से भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाना। इसके अंतर्गत प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक विज्ञान, तकनीक और नवाचार को एक साथ जोड़ने का प्रभावी प्रयास होना चाहिए। सरकार की मंशा रही है कि भारतीय दर्शन, संस्कृति और चिंतन की सनातन परंपरा केवल ग्रंथों तक सीमित न रहकर नई पीढ़ी की शिक्षा का अभिन्न हिस्सा बने। भारत की आत्मा में ज्ञान, मूल्य और आध्यात्मिक दृष्टि का संगम सदा से रहा है और यह बरसों से हमारे देश का प्राण रहा है। अब शिक्षा के माध्यम से उसी आत्मा को आधुनिक युग के संदर्भों में पुनर्जीवित करने की आवश्यकता समझकर शिक्षा नीति अमल में लाने का प्रयास है। मगर यह नीति केवल विषयों और पाठ्यक्रमों का पुनर्गठन नहीं होना चाहिए, बल्कि यह शिक्षा की सोच, दृष्टि और उद्देश्य को नव-परिभाषित करने का प्रयास होना चाहिए। इसका लक्ष्य ऐसी शिक्षा प्रणाली का निर्माण करना है, जो सामाजिक न्याय, समान अवसर और आत्मनिर्भरता के सिद्धांतों को सशक्त बनाए। नीति में 5+3+3+4 की संरचना लागू की गई है, जो बच्चों के मानसिक, सामाजिक और संज्ञानात्मक विकास के चरणों को ध्यान में रखती है।

यह व्यवस्था पूर्व-प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक एक निरंतर और समग्र शिक्षण अनुभव प्रदान करने का उद्देश्य रखती है। सबसे बड़ी चुनौती राज्यों और केंद्र के बीच समन्वय की है। शिक्षा का विषय संविधान की समवर्ती सूची में आता है, इसलिए नीति के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकारों की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है। दुर्भाग्यवश, विभिन्न राज्यों में नीति को लागू करने की गति और इच्छाशक्ति में भिन्नता है, जिससे नीति का राष्ट्रीय स्वरूप कमजोर पड़ता दिख रहा है।

शिक्षक किसी भी शैक्षणिक सुधार की धुरी होते हैं, पर अधिकांश शिक्षक नई नीति के उद्देश्यों और मूल्य धाराओं से परिचित नहीं हैं। इसके लिए व्यापक शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों, शैक्षणिक संसाधनों और मूल्य-आधारित शिक्षण पद्धतियों की तत्काल आवश्यकता है। तीसरी चुनौती है बुनियादी ढांचे और संसाधन की। अनेक विद्यालयों और महाविद्यालयों में अभी भी पर्याप्त सुविधाएं, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएं, तकनीकी उपकरण और शोध संसाधन उपलब्ध नहीं हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिकता का समन्वय नीति की एक विशेषता भर नहीं, लेकिन धरातल पर होना चाहिए।

शिक्षा का अर्थ केवल रोजगार प्राप्त करना नहीं, बल्कि जीवन के उद्देश्यों को समझना और समाज कल्याण के मार्ग पर चलना रहा है। इस दृष्टि से यह नीति भारतीयता के पुनर्जागरण का माध्यम बन सकती है। मगर इसके लिए आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों में भारतीय ज्ञान परंपरा के अध्ययन-केंद्र स्थापित किए जाएं, पारंपरिक विद्वानों को नई तकनीक और शिक्षण पद्धतियों से जोड़ा जाए तथा विद्यार्थियों को इन विषयों में उच्च अध्ययन के अवसर प्रदान किए जाएं। नीति में मातृभाषा या स्थानीय भाषा को प्राथमिक शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने की सिफारिश की गई है। यह विचार भारतीय भाषाई विविधता को सम्मान देता है और बच्चों की सोच तथा सीखने की क्षमता को मजबूत करता है। मगर इस दिशा में भी व्यावहारिक जटिलताएं हैं। इसके साथ एक सामान्य भाषा-संपर्क भी आवश्यक है, ताकि राष्ट्रीय स्तर पर ज्ञान, शोध और संवाद की एकरूपता बनी रहे। यह संतुलन ही भारत की बहुभाषिकता को सशक्त बनाएगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का अंतिम उद्देश्य केवल पाठ्यक्रम सुधार नहीं, बल्कि एक जीवंत और न्याय संगत ज्ञान समाज का निर्माण है। प्रत्येक राज्य और संस्था को निश्चित समय सीमा में नीति के बिंदुओं को लागू करने का दायित्व सौंपा जाए और उसकी प्रगति की नियमित समीक्षा हो, तभी नीति का लक्ष्य साकार हो सकता है। जब शिक्षा केवल परीक्षा और डिग्री केंद्रित न रहकर नवोन्मेष और विचारशीलता की दिशा में उन्मुख होगी, तभी भारत एक सशक्त ज्ञान राष्ट्र के रूप में उभर सकेगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत की सांस्कृतिक चेतना और आधुनिक आवश्यकताओं के बीच सेतु का कार्य कर सकती है। यह नीति उस भारत की कल्पना करती है जो ज्ञान, मूल्य और नवाचार का प्रतीक बने। जब गुरु, विद्यार्थी और समाज तीनों इस दृष्टि को अपनाएंगे, तभी भारत उस ज्ञानभूमि के रूप में प्रतिष्ठित होगा, जिसकी प्रेरणा से पूरी मानवता मार्गदर्शन प्राप्त कर सकेगी।

दुनिया मेरे आगे

> **शिक्षा का अर्थ केवल रोजगार प्राप्त करना नहीं, बल्कि जीवन के उद्देश्यों को समझना और समाज कल्याण के मार्ग पर चलना भी है। इस दृष्टि से यह नीति भारतीयता के पुनर्जागरण का माध्यम बन सकती है। मगर इसके लिए आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों में भारतीय ज्ञान परंपरा के अध्ययन-केंद्र स्थापित किए जाएं।**

जीवन का सार

'जरूरत बनाम दिखावा' (दुनिया मेरे आगे, 3 नवंबर) में जीवन को यथार्थ के आईने में देखने की कोशिश की गई है। दरअसल, जीवन की दिशा केवल दिखावे के कर्म से तय नहीं होती। इसके लिए जीवन के यथार्थ पर भी विचार करना होता है। इस लिहाज से देखें तो प्रार्थना मन को स्थिरता देती है, जबकि प्रयास जीवन को गति। अगर हम केवल कर्म में डूब जाएं, तो भीतर का संतुलन खो देते हैं और केवल प्रार्थना में लीन रहें, तो कर्म का अर्थ खो जाता है। सच्चा जीवन वही है, जिसमें हम पूरी निष्ठा से कार्य करें और उसके परिणाम को समय पर छोड़ दें। एक विद्यार्थी की लगन, किसान का परिश्रम या वैज्ञानिक की जिज्ञासा तभी फलदायी होती है, जब उनमें आस्था का आलोक जुड़ा हो। यह सत्य भी याद रखना चाहिए कि कोई भी काम इच्छा और प्रयास दोनों से ही संभव हैं, किसी एक से कदापि नहीं। यही दृष्टि हमें अहंकार से मुक्त कर विश्वास, धैर्य और संतुलन देती है। कठिन समय में प्रार्थना आत्मबल देती है और प्रयास आत्मविश्वास। यही है जीवन का सच्चा सार।

– अमन सिंह गौर, वाराणसी

अनदेखी असंभव

वैसे तो दुनिया की जब दो बड़ी अर्थव्यवस्था आगे बढ़ती है, तो स्वाभाविक रूप से प्रतिस्पर्धा बढ़ती है, लेकिन यहां प्रतिस्पर्धा नहीं, रक्षात्मक रवैया ज्यादा है जो 'मेक अमेरिका ग्रेट अगेन' की आड़ में लागू किया गया है। इसकी चपेट में भारत सहित कई देश आए। मगर चीन ने अमेरिका को उसी की भाषा में जवाब दिया। आज चीन का दुनिया के सत्तर फीसद दुर्लभ खनिजों पर कब्जा है। उसने अमेरिका को कोई तवज्जो नहीं दी। नतीजा यह हुआ कि वह चीन से समझौता करने पर मजबूर हुआ। चीन के पास जो खनिज हैं, उसके बिना आज कोई भी उद्योग नहीं चल सकता। अमेरिका के रक्षा उद्योग से लेकर ऊर्जा एवं अन्य कई उद्योग इनके बिना चल नहीं सकते। इलेक्ट्रिक गाड़ियों से लेकर स्मार्ट फोन तक का निर्माण इसके बिना नहीं हो सकता। फिलहाल अमेरिका को समझ में आ गया है कि बड़े देशों को साथ लिए बिना आगे नहीं बढ़ना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन होगा।

– चंद्र प्रकाश शर्मा, रानी बाग, दिल्ली

असुरक्षित राजमार्ग

राष्ट्रीय राजमार्गों पर हादसे लगातार बढ़ रहे हैं। मगर उन मार्गों पर मोटा टोल टैक्स वसूलने वाली सरकार जानती है कि सड़क दुर्घटनाओं से मौत के मामले भारत में सबसे अधिक होते हैं। दुनिया के कुल वाहनों के मुकाबले भारत में संख्या कोई ज्यादा नहीं है, पर सड़क दुर्घटनाओं में ग्यारह फीसद मौतें यहीं होती है। यातायात चालान में बेतहाशा वृद्धि पर केंद्रीय परिवहन मंत्री नितिन गडकरी ने कहा था कि इसका उद्देश्य सड़क पर अनुशासन लाकर हादसों में कमी लाना है। मगर सख्ती के अभाव में इसका फायदा नहीं मिला। सड़क दुर्घटनाओं में कमी के लिए कई मोर्चों पर ईमानदारी से एक साथ काम करना होगा। जैसे सड़कों की हालत और डिजाइन में सुधार, सार्वजनिक यातायात को सर्वसुलभ और सुगम बनाना, गाड़ियों की फिटनेस से भ्रष्टाचार मिटाना, घटिया कलपुर्जों पर लगाम, तेज गति पर अंकुश, नशे में वाहन चलाने पर सख्ती आदि। इसके साथ ही जिम्मेदारी निभाने में विफल रहे सरकारी अफसरों पर भी कार्रवाई होनी चाहिए।

– बृजेश माथुर, गाजियाबाद

भाषा की मर्यादा

भाषा की एक मर्यादा होती है। मगर यह बहुत ही दुखद है कि बिहार विधानसभा चुनाव के दौरान सभी राजनीतिक दलों के नेताओं द्वारा भाषा की शालीनता को तार-तार किया जा रहा है। आम जनता के बीच अपना महत्त्व बढ़ाने के लिए और विपक्षी दलों को नीचा दिखाने के लिए अमर्यादित भाषा का इस्तेमाल किया जाता है। इतिहास गवाह है कि अमर्यादित भाषाओं के इस्तेमाल से राजनीतिक दलों को नुकसान उठाना पड़ता है, लेकिन इसके बावजूद कई नेता सबक सीखने के लिए तैयार नहीं हैं। इनका बड़बोलापन कई बार इनके दलों को भी मुश्किल में डाल देता है। समाज में भी असहज स्थिति पैदा हो जाती है। आज के नेताओं को पहले के दौर के कई नेताओं की राजनीति से सीखना चाहिए। उनमें से लगभग सभी हमेशा मर्यादा की सीमा में रह कर अपने विपक्षी दलों को आईना दिखाने का कार्य किया करते थे।

– हिमांशु शेखर, गयाजी

हमें लिखें, हमारा पता : edit.jansatta@expressindia.com | chaupal.jansatta@expressindia.com

https://t.me/AllNewsPapersPaid

देशबन्धु

{ संपादकीय }

नई दिल्ली, शुक्रवार 7 नवम्बर 2025

संस्थापक-सम्पादक : स्व. मायाराम सुरजन

धीमी मौत मिल रही है, कोई जिम्मेदार नहीं

पिछले महीने तक जो लोग इस बात की खुशियां मना रहे थे कि सुप्रीम कोर्ट ने ग्रीन पटाखे जलाने की अनुमति देकर हिंदू धर्म की लाज रख ली, अब वही लोग हांफ रहे हैं, सांस लेने में तकलीफ महसूस कर रहे हैं, नज़ला-जुकाम का शिकार हो रहे हैं। और वही लोग क्यों इस समय राजधानी दिल्ली गैस चेंबर में तब्दील हो चुकी है, लिहाजा सारे लोग ही इन तमाम बीमारियों का शिकार हो रहे हैं। बल्कि जानकारों का कहना है कि वायु प्रदूषण केवल सांस संबंधी तकलीफें नहीं देता, इंसान के फेफड़ों, हृदय, गुर्दे सबको क्षतिग्रस्त कर रहा है। मधुमेह, रक्तचाप जैसी बीमारियां जो पहले वंशानुगत या अनियमित जीवनशैली के कारण हुआ करती थीं, अब उसमें भी वायुप्रदूषण ने ही जिम्मेदारी ले ली है। अगर कहा जाए कि वायु प्रदूषण सभी को धीमी मौत दे रहा है, तो गलत नहीं होगा। वैसे भी कई अध्ययनों में कहा गया है कि दिल्ली में रहने वाले लोगों की उम्र 10 साल कम हो रही है, क्योंकि उन पर खराब हवा का असर हो रहा है। हालांकि दिल्ली ही क्या देश के दूसरे राज्यों में भी ऐसे ही अध्ययन हों तो नतीजों में ज्यादा अंतर नहीं आएगा। दिल्ली का वायुप्रदूषण इसलिए चर्चा में आ जाता है क्योंकि देश की राजधानी है तो खबरों में बनी ही रहती है। ऊपर से धुंध और धुएं की जो मोटी चादर यहां के आसमान को ढंक लेती है, वह फौरन दिख जाती है। दूसरे शहरों में जहरीली धुंध नहीं होती, लेकिन वायु में दूसरे हानिकारक तत्व मिले ही होते हैं।

बहरहाल, दिल्ली का वायु प्रदूषण इस साल राजनैतिक कारणों से भी चर्चा में है। पिछले साल तक यहां आम आदमी पार्टी की सरकार थी, लिहाजा भाजपा के लिए इसके खिलाफ आवाज़ उठाना आसान था, यह राजनैतिक मजबूरी भी थी। दिल्ली के साथ लगे हाथ पंजाब सरकार को भी भाजपा निशाने पर लेती थी, क्योंकि वहां भी आप की सरकार है और पराली जलाने को प्रदूषण का बड़ा कारक माना जाता है। लेकिन अब दिल्ली में रेखा गुप्ता मुख्यमंत्री हैं, जो प्रधानमंत्री मोदी की तरह काम करने से अधिक फोटो खिंचवाने या चुनाव प्रचार में व्यस्त रहती हैं। कुछ समय पहले रेखा गुप्ता की हाथ में झाड़ू वाली तस्वीर आई थी, जिसे अलग-अलग एंगल से कैमरामेन कवर कर रहे थे। रेखा गुप्ता ने यमुना साफ करने का वादा भी चुनावों में किया था और उसके बाद छठ पूजा के समय बताया कि यमुना नदी साफ हो चुकी है। लेकिन असल में गंदगी वाले झाग को दबाने के लिए उस पर रसायन का छिड़काव हुआ था। इसलिए प्रधानमंत्री की छठपूजा के लिए साफ पानी का अलग तालाब उन्होंने बनवाया, जिसका पर्दाफाश आम आदमी पार्टी ने किया तो फिर प्रधानमंत्री छठ पूजा के लिए ही नहीं आए। इसका भरपूर रोना उन्होंने बिहार चुनावों में रोया। रेखा गुप्ता भी बिहार में कई बार चुनाव प्रचार के लिए पहुंची। इस बीच दिल्ली हांफती रही।

अब रेखा गुप्ता ने प्रशासनिक सख्ती का ऐलान किया है कि प्रदूषण को रोकने में कोई ढिलाई न बरती जाए। लेकिन यह आग लगने पर कुआं खोदने वाली बात है। दिल्ली में पहली बार वायु गुणवत्ता सूचकांक 400 के पार नहीं पहुंचा। पहली बार खतरनाक स्तर पर प्रदूषण की खबरें नहीं आई हैं। यह सालों साल से पेश आ रही समस्या है। अमीरों के लिए इसका समाधान एयर प्यूरीफायर के तौर पर मौजूद है। जैसे अमीरों ने पहले नदी-तालाबों को गंदा करके या उनका दोहन करके गरीबों के लिए मटमैला पानी और अपने लिए वॉटर प्यूरीफायर की व्यवस्था कर ली, वही रवैया अब हवा के साथ अपनाया जा रहा है। भले ही स्वच्छ हवा और पानी या सांस लेने का अधिकार मानवाधिकारों के दायरे में आए। लेकिन मौजूदा भारत में अमीरों ने तय कर लिया है कि साफ पानी और हवा पर केवल उनका अधिकार है, गरीबों के लिए यह सब उपलब्ध है या नहीं, इससे उन्हें कोई मतलब नहीं। सरकार भी अमीरों के हिसाब से ही नीतियां बनाती हैं। भले ही मतदान के दिन गरीब लाइन में लगकर वोट डाले कि उसके लिए भी अच्छे दिन आएंगे। मगर उसे क्या पता कि अच्छे दिनों का वादा भी केवल अमीरों के लिए ही है।

डॉक्टरों की सलाह मानकर मास्क पहनना, घर पर ही रहना, ऑनलाइन क्लास या वर्क फ्रम होम की सुविधा लेना, यह भी समाज का उच्चस्तरीय तबका ही निभा सकता है। गरीबों के लिए तो घर से बाहर रहने की मजबूरी हमेशा रहेगी। वे अपने खोमचे का सामान ऑनलाइन नहीं बेच सकते। न अपने बच्चों को कम्प्यूटर, मोबाइल दे सकते हैं कि वे घर से शिक्षा हासिल करें। मजदूरी के लिए, दूसरों के घरों में काम करने के लिए, सड़क किनारे सब्जी-फल, खाने-पीने की दुकान लगाने के लिए उन्हें पूरे दिन घर से बाहर रहना ही पड़ेगा। इसमें वे 400 एक्यूआई में सांस ले रहे हैं या 200 एक्यूआई में, कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि उन गरीबों को इसके अलावा गाड़ियों का धुआं, सड़क की धूल-मिट्टी सब फांकनी पड़ती है। इसमें उन्हें कोई गंभीर बीमारी हो भी रही होगी तो उसका पता लगाने या इलाज करवाने के लिए वे अस्पतालों में नहीं जा सकते। क्योंकि सरकारी अस्पतालों में जरूरत से ज्यादा भीड़ होती है और निजी अस्पतालों में इलाज महंगा होता है।

ऐसे में जब एम्स जैसे अस्पताल से एडवायजरी जारी होती है कि लोग घर पर रहे, कसरत के लिए बाहर न निकलें और संभव हो तो एयर प्यूरीफायर लगाएं तो लगता है कि कोई जले पर नमक छिड़क रहा है। क्या सरकार की तरह एम्स के डॉक्टर भी अब यह मान रहे हैं कि दिल्ली में केवल अमीरों को रहना चाहिए। और मान लें कि अमीर ये सारे उपाय कर लेते हैं, क्या तब भी वायु प्रदूषण से बचने की कोई गारंटी है। क्योंकि अब तक ऐसा कोई एयर प्यूरीफायर तो शायद बना नहीं है, जो कांगड़ी की तरह छाती पर लटकाया जा सके।

कुछ वक्त में जब धुंध छंट जाएगी, तब वायु प्रदूषण पर हाय-हाय भी रुक जाएगी। लेकिन फिर कुछ वक्त में गर्मी आएगी और तब लू के थपेड़ों में गरीबों की जान जाएगी। उसमें जो बच जाएंगे, वो बरसात की अव्यवस्था का शिकार होंगे। सड़कों पर लंबा जाम तो बारिश में लगता ही है, उसके अलावा बाढ़, भूस्खलन, कच्चे मकानों का गिरना, करंट लगना ये सारी घटनाएं बढ़ जाती हैं। इनमें भी गरीब ही सबसे अधिक मरते हैं।

इन खबरों को छिपाने का सबसे आसान उपाय है देश के सामने अपनी सुंदर छवियों को प्रस्तुत किया जाए, प्रधानमंत्री मोदी और मुख्यमंत्री रेखा गुप्ता यही कर रहे हैं। बाकी सब चंगा सी।

बिहार में सूखा तो यूपी में बहार है

बिहार जाना हो तो सावधान होकर जाइए। बार्डर आते ही आपकी ऐसी तलाशी शुरू होगी कि आप सचमुच में अपमानित महसूस करेंगे। और यह तलाशी भी एक जगह नहीं या एक बार न होकर बार-बार होगी। चुनाव हैं तो यह अभियान बढ़ा है वरना वैसे भी राज्य पुलिस का यह प्रिय काम बन गया है क्योंकि बिहार में शराबबंदी है। चुनाव में भी सौ करोड़ से ज्यादा की जो धर-पकड़ हुई है उसमें शराब और ड्रग्स का हिस्सा अस्सी फीसदी से ज्यादा है जो अन्य राज्यों की तुलना में बहुत अधिक है। वहां नकदी जब्त होने का हिस्सा ज्यादा हुआ करता है और यह तब है जबकि बिहार चुनाव में कोई भी दल शराबबंदी को मुद्दा नहीं बना रहा है। शुरू में प्रशांत किशोर इस मुद्दे को उठाया रहे थे लेकिन लोगों में इसका असर खास न देखकर चुप्पी सी साध ली है। वह नीतीश कुमार और जदयू भी इसे नहीं उठा रहे हैं जो इसे ले आये हैं। एक दौर में नीतीश कुमार देश भर में शराबबंदी की बात करते थे। उनके महिला समर्थन के मिथ में शराबबंदी को भी कारण माना जाता है लेकिन इसे साबित करना आसान नहीं है। इस सवाल पर एनडीए में उनकी साझीदार भाजपा और अन्य दल भी चुप्पी ही साधे हुए हैं।

एनडीए के छोटे दलों की छोड़ भी दें तो भाजपा की चुप्पी के पीछे काफी बड़े कारण है। आज वह सिर्फ मुल्क में ही नहीं, देश के अधिकांश राज्यों में शासन कर रही है। शराब ही आज राज्यों की आमदनी का मुख्य स्त्रोत है और उस पर प्रतिबंध या उसके करों में कमी-बेसी करना पूरी तरह राज्य सरकार के हाथ में है। इस मुद्दे पर नीतीश कुमार सरकार के फैसलों की आलोचना तो आत्मघाती होगा ही, तारीफ भी मुश्किल है। ऐसी हालत में हर जगह उसकी सरकारों को जवाब देना मुश्किल होगा। उसके लोग भी मानते हैं कि शराबबंदी से बिहार को राजस्व का भारी नुकसान हुआ है तो साथ ही वहां शराब की बिक्री का एक पूरा अवैध नेटवर्क बन गया है और वह हर कहीं शराब उपलब्ध करा देता है। नकली शराब बनाने का धंधा भी चल रहा है। और भाजपा समेत काफी सारे दलों का मानना है कि यह नेटवर्क राजद से जुड़े लोग चलाते हैं। कई बार यह आरोप भी लगता है कि बिहार पुलिस बाकी धंधे छोड़कर शराब पकड़ने और उस बहाने कमाई करने में लगी रहती है। इस चक्कर में पुलिस की सामान्य जिम्मेदारियों का निर्वहन भी ठीक से नहीं होता।

अरविन्द मोहन

> **एक दौर में नीतीश कुमार देश भर में शराबबंदी की बात करते थे। उनके महिला समर्थन के मिथ में शराबबंदी को भी कारण माना जाता है लेकिन इसे साबित करना आसान नहीं है। इस सवाल पर एनडीए में उनकी साझीदार भाजपा और अन्य दल भी चुप्पी ही साधे हुए हैं। एनडीए के छोटे दलों की छोड़ भी दें तो भाजपा की चुप्पी के पीछे काफी बड़े कारण है।**

बिहार की शराबबंदी से अगर पुलिस वालों का कुछ लाभ-घाटा होगा तो उसके सीमावर्ती प्रदेशों को भी लाभ है और सबसे बड़ी सीमा उत्तर प्रदेश से लगती है। नेपाल और झारखंड का नंबर भी है लेकिन शराब की तस्करी में उत्तर प्रदेश सबसे ऊपर होगा। पकड़ी गई शराब में उसकी सीमा पर जब्त माल का आकार-प्रकार भी इसकी पुष्टि करता है। लेकिन उत्तर प्रदेश सरकार के अति व्यावहारिक और 'लाभदायी' शराब नीति ने जिस तरह से राज्य में शराब की खपत और साथ ही सरकार के खजाने में वृद्धि की है वह चौंकाने वाला है। पिछले वित्त वर्ष में उत्तर प्रदेश को शराब की बिक्री से 51000 करोड़ रुपए का राजस्व मिला जो कि राज्यों के सालाना बजट से ज्यादा है। और भले ही शराब पीने के मामले में उत्तर प्रदेश वाले अभी पूर्वोत्तर के छोटे राज्यों और दक्षिण के राज्यों से पीछे हों पर वे जल्दी ही पंजाब, हरियाणा और दिल्ली जैसे राज्यों को पीछे छोड़ सकते हैं। हमारे मानस में पंजाब ही सबसे ज्यादा शराब खपत करने वाला है लेकिन वास्तविकता में अब वह तेलंगाना के आधे में रह ? गया है।

उत्तर प्रदेश के बारे में भविष्यवाणी करने का आधार उसकी नई शराब नीलामी नीति की व्यावहारिकता, नीतियों में निरन्तरता और शराब के व्यापारियों द्वारा इसे पसंद करना कारण है। उत्तर प्रदेश में शराब की दुकान के लिए आप आनलाइन नीलामी में हिस्सा ले सकते हैं और इस चलते कीमतों में घालमेल की गुंजाइश एकदम कम हो गई है। ऊपर से नीतियों में स्थिरता ने बाहर से आकार प्रदेश में कारोबार करने वालों को निश्चिंत कर दिया है। अब यह सवाल मत उठाइएगा कि एक संन्यासी मुख्यमंत्री यह सब कैसे कर लेते हैं। असल में यह काम नौकरशाही का है और उन्होंने ही बियर और देसी के साथ विदेशी शराब बेचने की दुकानें चलाने की अति-लाभदायक नीति बनाई है। अब इससे प्रदेश के लोगों का क्या लाभ है वह भले विवादास्पद हो लेकिन उससे कोविड पूर्व का 24 हजार करोड़ का राजस्व 51 हजार करोड़ पार कर गया है जो नई शराब नीति डेढ़ साल पहले आई है। उसमें शराब और गांजा-भांग की सभी चार तरह की दूकानों के लिए आनलाइन नीलामी और लाटरी की व्यवस्था हो गई है। और पहली ही नीलामी में न सिर्फ चार लाख से ज्यादा आवेदक आये बल्कि 27 हजार से ज्यादा दुकानें नए मालिकों के हवाले हो गईं। प्रोसेसिंग फीस के रूप में ही 2000 करोड़ की कमाई हो गई और देश भर में इस नई नीति की व्यावहारिकता का डंका बजने लगा।

इस व्यावहारिकता में बिहार से लगे कस्बों और शहरों में दुकानों की बाढ़ और उनसे मोटा राजस्व पाना भी एक सफलता थी। कुशीनगर जिले के तमकुहीराज जैसे छोटे कस्बे में जब सिद्धार्थनगर में कारोबार करने वाले व्यवसायी को दुकान मिल गई तो वह यह देखकर हैरान था की पुराने शहर में अद्धा-पौवा और बोतल खरीदने वाले थे तो यहां एक साथ कई-कई बोतल। बिहार में आती-जाती गाड़ियां अकसर बार्डर के इन ठिकानों पर रुककर माल उठाती हैं। गाजीपुर, कुशीनगर, चंदौली, बलिया, देवरिया और सोनभद्र जिलों को भी इसी के चलते ज्यादा राजस्व मिलना शुरू हुआ। ऐसा ही लाभदायक फैसला सिर्फ बियर या आईएफएमएल अर्थात कंट्री मेड फ़ारेन लिकर की दूकानों को बंद करके कम्पोजिट दुकान खोलने का भी था। मध्य प्रदेश और राजस्थान की तरह ही करीब दस हजार कम्पोजिट दुकानें खोली गईं। कहना न होगा कि ये दोनों राज्य भाजपा शासित है और भाजपा एक तरफ तो उनसे यह सीख लेती है लेकिन बिहार की सीख कहीं भी लागू करने का प्रयास नहीं करती।

अब असली सवाल है 'वोट चोरी' की जांच कौन करेगा ?

■ डॉ. ज्ञान पाठक

विपक्ष के नेता राहुल गांधी ने अब हरियाणा विधानसभा चुनाव 2024 में 'वोट चोरी' का आरोप लगाया है। उन्होंने मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह पर वोट चोरी को बढ़ावा देने के लिए मतदाता सूची से मतदाताओं के नाम हटाने और जोड़ने में मिलीभगत का भी आरोप लगाया है।

आरोपों का खंडन करना आमतौर पर किसी भी आरोपी द्वारा किया जाने वाला पहला कदम होता है। वे आमतौर पर कहते हैं कि आरोप गलत हैं। फिर भी, प्राथमिकी दर्ज की जाती है और कानून के अनुसार मामलों की जांच की जाती है। हालांकि, वर्तमान मामले में, सभी आरोपी कानूनी रूप से विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति हैं। यह किसी भी प्राथमिकी और आरोप की जांच को रोकता है।

इसके अलावा, चूंकि कथित अपराध कई वर्षों तक चला और इसमें चुनाव आयोग के कई अन्य अधिकारी और सत्तारूढ़ भाजपा के नेता शामिल थे, इसलिए 'वोट चोरी' की जांच एक जटिल मामला है और इसमें काफ़ी समय और मेहनत लगेगी। क़ानूनी न्यायशास्त्र में, एक अभियुक्त अपने ख़िलाफ़ मामले की जांच नहीं कर सकता और न ही उसे करना चाहिए, तो सवाल यह है कि 'वोट चोरी' के अपराध की जांच कौन करेगा ?

> **जब कथित तौर पर 'वोट चोरी' की गई थी, तब वर्तमान मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार पद पर नहीं थे। फिर भी, वह 'वोट चोरी' में कथित रूप से शामिल सभी अधिकारियों और राजनीतिक व्यक्तियों का बचाव करते रहे हैं। चुनाव आयोग ने राहुल गांधी को नोटिस जारी कर उनसे अपने खुलासे की पुष्टि करने और शपथ पर सामग्री को प्रमाणित करने के लिए कहा।**

कांग्रेस नेता राहुल गांधी ने इससे पहले 7 अगस्त, 2025 को कर्नाटक के महादेवपुरा निर्वाचन क्षेत्र में 'वोट चोरी' का पर्दाफ़ाश किया था, ताकि यह दिखाया जा सके कि इसे कैसे व्यवस्थित रूप से अंजाम दिया जाता है। बाद में, 1 सितंबर को, उन्होंने उस खुलासे को 'परमाणु बम' बताया और कहा कि वह जल्द ही एक 'हाइड्रोजन बम' गिराएंगे। उन्होंने 5 नवंबर को कथित 'हाइड्रोजन बम' भी गिरा दिया, जो हरियाणा विधानसभा चुनाव 2024 से संबंधित है।

जब कथित तौर पर 'वोट चोरी' की गई थी, तब वर्तमान मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार पद पर नहीं थे। फिर भी, वह 'वोट चोरी' में कथित रूप से शामिल सभी अधिकारियों और राजनीतिक व्यक्तियों का बचाव करते रहे हैं। चुनाव आयोग ने राहुल गांधी को नोटिस जारी कर उनसे अपने खुलासे की पुष्टि करने और शपथ पर सामग्री को प्रमाणित करने के लिए कहा। यह 'वोट चोरी' के शिकार लोगों के लिए किसी खतरे से कम नहीं था, जिन्होंने अपराध के कुछ सुबूत बड़ी सावधानी से इकट्ठा किए हैं। चुनाव आयोग ने अभी तक कथित 'वोट चोरी' की जांच शुरू नहीं की है।

चुनाव आयोग के खिलाफ कई विरोध प्रदर्शन हुए हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के साथ मिलकर चुनावी नतीजों को भाजपा के पक्ष में हेरफेर करने की कोशिश की जा रही है। 'वोट चोरी' मुख्य रूप से असली मतदाताओं के नाम हटाकर और बाहरी मतदाताओं को जोड़कर की जाती है। मतदाता सूची में इस हेराफेरी का पर्दाफाश राहुल गांधी ने किया है।

फिर भी, चुनाव आयोग ने बिहार में मतदाता सूची का विशेष गहन पुनरीक्षण अभियान चलाया, जिसका विपक्षी दल इंडिया ब्लॉक ने विरोध किया और आरोप लगाया कि यह केवल भाजपा के पक्ष में 'वोट चोरी' के उद्देश्य से मतदाता सूची में हेराफेरी करने का प्रयास है। देश की जनता ने देखा है कि कैसे लाखों बाहरी मतदाताओं के नाम जोड़े गए हैं, जबकि लाखों असली वोट काट दिए गए हैं। चुनाव आयोग का बचाव यह है कि मतदाताओं ने निर्धारित प्रपत्रों और तरीकों से नाम हटाने या जोड़ने के खिलाफ अपील नहीं की।

यह एक कमज़ोर बचाव है, क्योंकि हम भारतीय जानते हैं कि बहुत से लोग अपराध की रिपोर्ट करने के लिए सामने आना पसंद नहीं करते क्योंकि पुलिस और प्रशासन पीड़ितों को अपमानित करते हैं। विपक्षी राजनीतिक दलों ने नाम हटाने और जोड़ने पर आपत्ति जताई है, लेकिन चुनाव आयोग का कहना है कि ये उचित प्रपत्रों में दर्ज नहीं किए गए हैं। यह रिपोर्ट करने वाले व्यक्तियों का अपमान है। यहां तक कि प्रधानमंत्री, चुनाव आयोग और गृह मंत्री भी विपक्ष के नेता को नहीं बख्श रहे हैं। 'वोट चोरी' और उसके पीछे की साज़िश का मुद्दा उठाने के लिए उन्हें बार-बार अपमानित किया जा रहा है। अब, दूसरे चरण में देश के 12 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में एसआईआर चलाया जा रहा है, और तीसरे चरण में पूरे देश को कवर किया जाएगा।

इसी पृष्ठभूमि में, राहुल गांधी द्वारा हरियाणा में 'वोट चोरी' का नया आरोप विशेष महत्व रखता है। उन्होंने दावा किया है कि हरियाणा विधानसभा चुनाव में 'वोट चोरी' हुई थी और भारतीय चुनाव आयोग पर भारतीय लोकतंत्र को नष्ट करने के लिए प्रधानमंत्री और केंद्रीय गृह मंत्री के साथ सांठगांठ करने का आरोप लगाया।

राहुल ने आरोप लगाया कि मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार कर्नाटक की महादेवपुर विधानसभा सीट की मतदाता सूची से मतदाताओं के नाम हटाने के प्रयास के पीछे के लोगों की तकनीकी जानकारी साझा करने से इनकार करके उन लोगों को बचा रहे हैं जो भारतीय लोकतंत्र को 'नष्ट' कर रहे हैं।

हरियाणा में, उन्होंने आरोप लगाया कि राज्य की मतदाता सूची में 5,21,619 से ज़्यादा नकली मतदाता थे। वोट चोरी की इस प्रणाली का औद्योगिकीकरण हो गया है, और उन्हें पूरा यकीन है कि वे बिहार में ऐसा ही करेंगे।

एक खास आरोप में, राहुल गांधी ने कहा कि एक मतदाता की तस्वीर दो मतदान केंद्रों पर अलग-अलग नामों से 223 बार दिखाई देती है। उन्होंने कहा, 'हरियाणा में ऐसे हज़ारों उदाहरण हैं।' उन्होंने कहा कि हरियाणा में एक ही तस्वीर वाले 1,24,177 मतदाता हैं। उन्होंने आरोप लगाया, 'चुनाव आयोग जगह बनाना चाहता है। वे सीसीटीवी फुटेज नष्ट कर रहे हैं।'

विपक्ष के नेता ने आरोप लगाया कि हरियाणा में लगभग 25 लाख मतदाता फर्जी हैं। उन्होंने एक मतदाता फोटो पहचान पत्र (ईपीआईसी) भी दिखाया है जिसमें एक ब्राज़ीलियाई मॉडल की तस्वीर का इस्तेमाल किया गया है, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने 10 मतदान केंद्रों पर 22 बार मतदान किया है।

राहुल गांधी ने इस पूरे अभियान को 'ऑपरेशन सरकार चोरी' करार दिया। उन्होंने आरोप लगाया कि 'वोट चोरी' न केवल निर्वाचन क्षेत्र स्तर पर, बल्कि राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर भी हो रही है।

विपक्ष के नेता के आरोप गंभीर हैं और उनकी गहन जांच की आवश्यकता है। हालांकि, सबसे बड़ा सवाल यह है कि यह जांच कौन करेगा ? सत्तारूढ़ सरकार और चुनाव आयोग पर आरोप हैं, और भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में एक याचिकाकर्ता को महादेवपुरा में राहुल गांधी द्वारा 'वोट चोरी' के खुलासे के मामले में कार्रवाई के लिए चुनाव आयोग जाने को कहा है। एक नागरिक क्या कर सकता है ?

ललित सुरजन की कलम से

रायपुर में रंगशाला ?

'चौड़ी-चौड़ी सड़कें, चौराहों पर विद्युत सिग्नल, भव्य अस्पताल, पांच सितारा होटल, चमकते-दमकते शो रूम, मॉल और मल्टीप्लेक्स, अंग्रेजी मीडियम स्कूलों की वातानुकूलित इमारतें, सड़कों पर दौड़ती मंत्रियों, अफसरों और नवधनाढ्यों की गाडियां- क्या नहीं है इस शहर में? शायद सिर्फ एक प्रेक्षागृह जहां देश-विदेश की नाटक मंडलियां आकर अपना प्रदर्शन कर सकें और उन्हें देख कर अभिजात समाज स्वयं को सुरुचि-सम्पन्न होने का प्रमाण पत्र दे सके! लेकिन क्या बात सिर्फ इतनी ही है? राजधानी में स्वाभाविक ही प्रदेश का पहला मेडिकल कॉलेज और सबसे बड़ा सरकारी अस्पताल है, किन्तु जिन्हें नाटक देखने के लिए प्रेक्षागृह चाहिए क्या वे उस अस्पताल में जाकर इलाज करने की हिम्मत जुटा पाते हैं? प्रदेश का सबसे पुराना विश्वविद्यालय भी यहीं है और अब तो पांच-छह विश्वविद्यालय हो गए हैं, किन्तु क्या किसी ने पूछा कि इन्हें कितनी स्वायत्तता प्राप्त है? इनका काम-काज कैसा चल रहा है? इनकी कौन सी आवश्यकताएं हैं जिनकी ओर सरकार ध्यान न देना ही मुनासिब समझती है? यहां जो बाग-बगीचे बनाए गए थे उनके क्या हाल-चाल है? इस बात में क्या बुद्धिमानी थी कि अनुपम उद्यान और सौरभ उद्यान के नाम बदलकर धर्मगुरुओं के नाम पर रख दिए जाएं?'

(देशबन्धु में 20 नवंबर 2014 को प्रकाशित)

https://lalitsurjan.blogspot.com/2014/11/blog-post_19.html

पावन प्रसंग

साहित्य सत्य की साधना और संस्कृति का पर्याय

साहित्य एक सामाजिक प्रक्रिया भी है। यह अपने समय की आर्थिक, राजनीतिक और वैचारिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है, और उन्हें प्रभावित भी करता है। यथार्थवाद और आदर्शवाद का समन्वय ही साहित्य की पूर्णता है। जयशंकर प्रसाद ने कहा था: 'जीवन की अभिव्यक्ति यथार्थवाद है और अभाव की पूर्ति आदर्शवाद।' यह विचार आज भी उतना ही सार्थक है। क्योंकि समाज को बदलने के लिए केवल यथार्थ की समझ नहीं, बल्कि आदर्श की दृष्टि भी आवश्यक है।

आज के संदर्भ में साहित्य की जिम्मेदारी और भी बढ़ गई है। वह न केवल सामाजिक असमानताओं को उजागर करता है, बल्कि उन पर आत्ममंथन भी कराता है। वह हमें यह सिखाता है कि आधुनिकता का अर्थ परंपरा से विमुख होना नहीं, बल्कि उसमें नवीनता का समावेश करना है। भारतीय अर्वाचीन संस्कृति का यह ही सार रहा है — 'नवीनता में नित्यत्व और नित्यत्व में नवीनता।' यही भाव साहित्य को कालातीत बनाता है। आज जब समाज में संवेदनाओं का ह्रास, विचारों में विभाजन और मानवीय संबंधों में दूरी बढ़ रही है, तब साहित्य ही वह शक्ति है जो हृदय को पुन: हरियाली से भर सकता है। साहित्य हमें याद दिलाता है कि भले ही समय बदल जाए, पर मानवता का मूल स्वर एक ही रहता है करुणा, प्रेम और शांति। साहित्य केवल शब्दों का संग्रह नहीं, बल्कि वह जीवन का सार है। वह समाज का दिशा-दर्शन करता है, जनमानस को आलोकित करता है और समय के अंधेरे में दीपक की तरह टिमटिमाता है। श्रेष्ठ साहित्य वही है जो मनुष्य के भीतर और बाहर दोनों स्तरों पर प्रासंगिक मूल्यों, संदेशों और उद्देश्यों को समेटे हो। निश्चय ही, वह दिन दूर नहीं जब हिंदी साहित्य वैश्विक फलक पर अपनी मानवीय संवेदना और सांस्कृतिक गहराई के कारण और अधिक सम्मानित होगा। क्योंकि अंतत: साहित्य वही है जो मानवता को बचाए रखे और यही उसकी सबसे बड़ी साधना है, यही उसका शिवत्व है।

जो साहित्य इस युग में मनुष्य को 'मानव' बने रहने की चेतना देता है, वही वास्तव में श्रेष्ठ है। हिंदी साहित्य की परंपरा विशेष रूप से समन्वय की रही है। कबीर की निर्भीक वाणी, रविंद्रनाथ टैगोर का आध्यात्मिक सौंदर्य, प्रेमचंद का यथार्थवादी दृष्टिकोण, जयशंकर प्रसाद की भावुकता, फणीश्वरनाथ रेणु की ग्राम्य चेतना ये सभी मिलकर हिंदी साहित्य को जनमानस की आत्मा बनाते हैं। इनकी रचनाएं समय से परे जाकर उस मनुष्य की खोज करती हैं जो भीतर से एक है, भले ही बाहर से विभाजित हो गया हो। यही कारण है कि इनकी कृतियां केवल साहित्य नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन हैं।

-संजीव ठाकुर

आपके पत्र

भारतीय हॉकी के 100 वर्ष: शताब्दी मनाना गौरव किंतु सम्मान भी जरूरी

7 नवंबर 1925 को गठित भारतीय हॉकी फेडरेशन, 7 नवंबर 1926 को अपना सौंवां स्थापना दिवस मनाने जा रहा है। राष्ट्रव्यापी आयोजन में कहा जा रहा है कि देश के 500 से अधिक जिलों में हजारों हॉकी खिलाड़ी एक हजार से अधिक मैच खेलकर इतिहास रचने की तैयारी में हैं। यह भी दावा किया जा रहा है कि इन मैचों में उतरने के लिए लगभग 40 हजार पुरुष और महिलाएं अपनी टीमों के साथ तैयार खड़ी हैं।

यह स्वीकार करने में कोई किंतु-परन्तु नहीं कि भारतीय हॉकी की शुरुआती यात्रा ने खेलों की दुनिया में बेजोड़ विरासत की गाथा को जन्म दिया है। हॉकी के सम्मान में शताब्दी समारोह हमारे लिए गर्व का क्षण होगा। इतने सारे मैच एक साथ खेलकर हम गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में भी स्थान पा लेंगे, किंतु फिर मन में वहीं कसक उठ रही है कि क्या हम और हमारी आत्मा वास्तव में प्रसन्न है? जहां तक मैं समझता हूं एक दिवसीय शताब्दी समारोह के उद्घाटन अवसर पर हॉकी के जादूगर ध्यानचंदजी को भारत रत्न की घोषणा करके हमारे कर्णधार आयोजन को अविस्मरणीय बनाने के साथ खुद की भूल से भी ऊबर सकते हैं। जब खेल के क्षेत्र में भारत रत्न देने का फैसला किया गया तब सरकार के नुमाइंदों को हॉकी का बेताज बादशाह नजर क्यों नहीं आया? हम किसी और को यह सम्मान देने के कतई विरोधी नहीं हैं, किंतु योगदान की प्राथमिकता को नहीं भूलना चाहिए।

आज जब हमारा देश हॉकी के सौ वर्ष पूर्ण होने पर उत्सवी आयोजन के लिए कृत संकल्पित हैं, तो हमें ऐसा लगता है कि हम अपने दिग्गजों और आने वाली पीढ़ी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने जा रहे हैं। अब हमें यह संकल्प लेने की जरूरत भी महसूस करनी होगी कि हम अपनी हॉकी को वह गौरव पुन: प्रदान करेंगे जो कभी सिर चढ़कर बोला करता था। इसे केवल एक खेल उत्सव नहीं माना जाना चाहिए, बल्कि उस राष्ट्रीय जुनून को स्मरण करने हेतु आदरांजलि दी जानी चाहिए, जिससे हमारी पीढ़ियां प्रेरित होती आई हैं। हॉकी भारत वर्ष का केवल एक खेल नहीं बल्कि उन लाखों लोगों के दिलों की धड़कन भी है, जिन्होंने इसे जिया है! इस खेल की नब्ज को महसूस किया है। इसकी महिमा को खुद देखा है।

ओलंपिक विजय के स्वर्णिम युग से लेकर आधुनिक युग के पुनरुत्थान तक, भारतीय हॉकी की यात्रा लचीलेपन, पुनर्निर्माण और उत्कृष्टता की निरंतर यात्रा पर अग्रसर है। आज की बदली हुई हॉकी और कलात्मक हॉकी के दौर ने बहुत कुछ सहा है। हॉकी का सफर भी हर शानदार यात्रा की चुनौतियों से भरा रहा है! टर्फ के आगमन के साथ हॉकी पारंपरिक प्राकृतिक घास से सिंथेटिक सतह पर स्थानांतरित होती रही है। हमारा देश यहीं बदलाव के साथ तालमेल बैठाने में असफल रहा।

भारतीय हॉकी के संदर्भ में जहां तक मैं समझता हूं हमें प्रशिक्षकों को प्रशिक्षित करने की ज्यादा जरूरत है। अंतरराष्ट्रीय तकनीकों, प्रदर्शन, विश्लेषण और आधुनिक फिटनेस प्रोटोकॉल तक पहुंच के साथ एक मजबूत राष्ट्रीय कोचिंग ढांचा प्रशिक्षकों के लिए नियमित कौशल विकास एक आदर्श के रूप में स्थापित करने की जरूरत दिखाई पड़ रही है। हॉकी को व्यवसायिक दृष्टिकोण से व्यवहार्य पारिस्थितिक तंत्र में बदलाव भी हमारा प्रयास होना चाहिए। रोजगार के अवसर पैदा कर खिलाड़ियों को सुविधाओं के साथ प्रोत्साहित करना भी हॉकी के उस स्वर्णिम दिनों को लौटा सकता है, जिसे हम तलाश कर रहे हैं।

-डॉ. सूर्यकांत मिश्रा

प्रकाशक, मुद्रक : राजीव रंजन श्रीवास्तव द्वारा पत्रकार प्रकाशन प्रा. लि. के लिए 506, आई.एन.एस. बिल्डिंग, 9, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित एवं बीएफएल इंफोटेक लि., सी 9, सेक्टर-3, नोएडा से मुद्रित। सम्पादक : राजीव रंजन श्रीवास्तव, (पी.आर.बी. एक्ट के तहत समाचार चयन के लिए जिम्मेदार)। आर.एन.आई. नं. DELHIN/2008/24216. दिल्ली कार्यालय :फोन: 011-23718195,23357784, फैक्स: 011-43581404, नोएडा कार्यालय: फोन: 0120-4114404 फैक्स: 0120-4273770

ई-मेल: deshbandhudelhi@gmail.com वेब: www.deshbandhu.co.in

https://t.me/AllNewsPapersPaid1

चिंतन

एक गीत ने देश को दिला दी गुलामी से आजादी

देश ने पहली बार वंदे मातरम् को 1896 में एक भजन की तरह सुना। उपन्यासकार बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय का यह गीत भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कोलकाता अधिवेशन में सुनाया गया, जिससे श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो गए। गीत में किसी का विरोध नहीं था, बस देशभक्ति के स्वर थे। 10 साल बाद 1905 में, जब बंगाल का विभाजन हुआ और वहां असंतोष फैला, तब अवनींद्र नाथ ठाकुर ने भारत माता की तस्वीर बनाई। भगवा वस्त्रों में एक स्त्री, जिसके हाथ में अनाज की पुंज, एक पुस्तक और एक माला थी। यह चित्र 'वंदे मातरम्' की भावना का जीवंत रूप बन गया। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हो गए। यह गीत केवल किसी कवि की कल्पना नहीं था। यह उस आत्मा की पीड़ा भरी पुकार थी, जो वर्षों से मातृभूमि की रक्षा और अस्तित्व के लिए जूझ रही थी। जब ब्रिटिश हुकूमत भारत के लोगों पर अत्याचार की सीमा लांघ रही थी, तब एक ही रात में यह गीत लिखा गया। यह सदियों के दुख और अपमान का शब्दों से पिरोया गया उत्तर था। एक गूंजती पुकार, जिसने उस सोए हुए राष्ट्र को जगाने की कोशिश की जो लंबे समय से पीड़ा में सुन्न हो गया। अत्याचारों से सहमा था। इसका गहरा असर भी हुआ। एक गीत ने पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में पिरो दिया। वंदे मातरम् ने न केवल युवाओं में नए जोश का संचार किया बल्कि महिलाओं को भी आजादी के आंदोलन में कूदने को मजबूर कर दिया। यह गीत भारतीय एकता की आत्मा में रच-बस चुका था। रैलियों और घरों में गुनगुनाए जाने वाले इस गीत ने लाखों लोगों के दिलों को प्रांतों और पंथों से ऊपर उठने और देश के लिए खड़े होने का आह्वान किया। इसके शब्दों ने हर देशवासी को एक साथ सपने देखने के लिए प्रेरित किया और अंग्रेजी अनुवाद ने इसे नई पीढ़ियों और पूरे विश्व तक पहुंचाया, ताकि वे भारत की आजादी की पुकार सुन सकें। यह एक आंदोलन का रूप बन गया, जिसने पिछले दो दशकों से भारत को हर तरह के भेदभाव से ऊपर उठकर एक सूत्र में बांधने की शक्ति दी। बंगाल के कांतल पाडा नाम के गांव में 7 नवंबर 1876 को वंदे मातरम गीत की रचना की गई थी और पहली बार 1896 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में वंदे मातरम् गाया गया था। यानि भारत को आजादी मिलने से करीब 51 साल पहले। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में इस गीत ने बड़ी भूमिका निभाई थी। लोगों को आजादी की लड़ाई के लिए प्रेरित करने का काम किया था। अंग्रेजों के लिए ये विरोध का स्वर था। जहां भी आजादी के मतवाले एकजुट होते, अंग्रेजी सरकार के विरोध में प्रदर्शन करते, वहां ये गीत गूंजता और उनके उत्साह को कई गुणा बढ़ा देता। कांग्रेस के अधिवेशन से लेकर लाहौर की फांसी तक, वंदे मातरम् विद्रोह की सांस बन गया। भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, बटुकेश्वर दत्त और अनेक क्रांतिकारियों ने इसे मौत का सामना करते हुए जोर से पुकारा। सुभाष चंद्र बोस ने इसे आजाद हिंद फौज की मार्चिंग धुन बना दिया। यह गीत ऐसा गूंजा कि अंगेजों को देश भारत छोड़कर जाना पड़ा। आज भी यह गीत देशवासियों को एक सूत्र में बांध रहा है, वंदे मातरम्।

विस चुनाव
ऋतुपर्ण दवे

मंगलराज की चाहत और बिहार का खामोश मतदाता

बिहार विधानसभा चुनाव का पहला चरण गुरुवार को संपन्न हो गया। बड़े से बड़े नेताओं ने इन क्षेत्रों में दौरे कर लिए। हालांकि बिगड़े मौसम ने भी खूब रंग दिखाया। बावजूद इसके सड़क मार्ग से नेता, ज्यादा से ज्यादा क्षेत्रों तक पहुंचने में कामयाब रहे। लेकिन, इस चुनाव में असल मुद्दों के बजाए पूरा चुनावी माहौल सुशासन बनाम जंगलराज के आरोपों में उलझा हुआ है। वहीं मतदाता खामोश है। मंगलराज की बात कोई करता नहीं। उन तथ्यों और सच्चाई से भी नेता परहेज करते दिखे जो बिहार की मौजूदा दशाओं की वजह हैं। बिहार में सिर्फ राजनीति और वर्चस्व की लड़ाई हमेशा जीतती रही, लेकिन क्या इस बार बिहार में मतदाताओं की उदासीनता से आश्चर्यजनक तरीके से अंतर्मन की पीड़ा या कोई चौकाने वाला संदेश तो नहीं निकलेगा? मतदाताओं की अजीब चुप्पी का क्या मतलब निकाला जाए? दरअसल बिहार को लेकर जो दावे किए जाते हैं कि वहां 'विकास' चुनावी मुद्दा नहीं हो सकता, कहीं इस बार भी उसका जवाब पहले दौर में तो नहीं मिला, आगे मिलेगा यह भी नहीं पता? अंतरराष्ट्रीय पत्रिका जर्नल ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज में प्रकाशित 2023 का एक अध्ययन बताता है कि वहां 68 प्रतिशत ग्रामीण बिहारी अपनी पहचान आधारित राजनीति की बजाय बुनियादी ढांचे और रोजगार सृजन को प्राथमिकता देते हैं। क्या इसे मतदाताओं की अपने नेताओं से अपेक्षाओं में बदलाव संकेत नहीं माना जा सकता? लेकिन सच्चाई यह है कि विकास को लेकर बिहारवासियों की सोच बदल रही है। इस छठ के दौरान पूरे देश से बड़ी संख्या में लाखों बिहारवासी लाख दावों के बावजूद किन हालातों में अपने-अपने घर पहुंचे और सोशल मीडिया पर कैसे-कैसे बयान आए, सबको पता है। हर हाथ में मोबाइल और इंटरनेट तथा दूसरे राज्यों के विकास की कहानियों के वीडियो और रील्स देखकर उनके मन में भी रोजगार, विकास, सम्मान और घर की चाहत दिखी। इस चुनाव में वहां मुद्दों की राजनीति के बजाए आपसी छींटाकशी और भाषा का बिगड़ा संतुलन भी आहत करता रहा। बिहार को जानने वाले मानते हैं कि 1952 से 1993 तक लागू रही मालभाड़ा समानीकरण नीति बिहार के विकास में बाधा रही। इससे दूसरे राज्यों के उद्योगों को कम परिवहन लागत पर बिहार के खनिज संसाधनों तक पहुंच मिली और बिहार अपना मजबूत औद्योगिक आधार बनाने से चूक गया। बिहार से शुरू हुई बूथ कैप्चरिंग ने कभी देश को चौंकाया था। कहने को तो बिहार हमेशा से बदनाम किया जाता रहा, लेकिन इसके जिम्मेदार खुद स्थानीय राजनेता हैं। बिहार की श्रम शक्ति का जितना उपयोग देश-विदेश में होता है, उतना वहीं होता तो शायद तस्वीर कुछ और होती। बाहुबलियों से लेकर मिनी चंबल कहलाने वाले राज्य की सच्चाई यह है कि यहां काम कम और बदनाम ज्यादा किया गया। भ्रष्टाचार और नक्सलवाद गहरी जड़ों ने खूब कहर ढाया। 1967 के नक्सलबाड़ी विद्रोह के बाद नक्सलवाद का अंकुरित बीज 1980 के दशक तक इस भ्रम में खूब फला-फूला कि नक्सली गरीबों के हितैषी हैं। इस दौर में प्रशासनिक अधिकारियों पर हुए हमलों और भूमि सुधार के नाम पर नक्सलियों ने अपनी जड़ें गहरी कीं। यहीं से बिहार के हालात बदले और कानून व्यवस्था चरमरा गई। 1990 आते-आते बड़े से बड़े अधिकारियों की हत्याओं ने डर का माहौल बनाया। आज भी बिहार में ऐसी हत्याओं की चर्चाएं नहीं थमतीं जो अनसुलझी हैं। राज्य अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एससीआरबी) के आंकड़े बताते हैं कि अपराध दर के हिसाब से बिहार दस सबसे खराब राज्यों में से एक रहा। इसी साल जून तक हत्या के 1379 मामले दर्ज किए गए। 2024 में यही आंकड़ा 2,786 तथा 2,023 में 2,863 रहा। अपराधों पर बिहार पुलिस का मानना है कि अवैध हथियार, फर्जी लाइसेंस और गोला-बारूद का अवैध कारोबार इसकी वजह है। संपत्ति विवाद, वर्चस्व की लड़ाई और व्यक्तिगत प्रतिशोध भी कारण हैं। चुनाव के दौरान भी अपराध रुक नहीं रहे हैं। जहां मोकामा काण्ड ने पूरे देश का ध्यान खींचा जिसमें पुराने बाहुबली दुलारचंद यादव की हत्या हुई। वहीं, आरा में बदमाशों ने बाइक से जा रहे पिता-पुत्र प्रमोद कुमार और प्रियांशु कुमार जो कि राजमिस्त्री थे, की हत्या कर दी। इसी तरह सिवान जिले के दरौंदा थाने में पोस्टेड पुलिस दारोगा अनिरुधद्ध प्रसाद की क्रूरता से हुई हत्या ने कानून व्यवस्था को आईना दिखाया। दूसरी छोटी-मोटी आपराधिक घटनाओं ने बिहार को फिर बदनाम किया। अब यहां हो रहे विधानसभा चुनाव में मुख्य मुकाबला एनडीए और महागठबंधन के बीच है। बहरहाल बिहार में चुनावी बहार जरूर है लेकिन सवाल भी बहुत हैं। अहम यह कि सुशासन के दावों और 20 साल के बाद भी जंगलराज की पोल-खोल में लगे सियासी रहनुमाओं से बिहार का आम मतदाता यह क्यों नहीं सुन पा रहा कि मंगलराज भी आएगा?

(ये उनके अपने विचार हैं।)

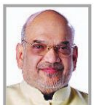

वंदे मातरम्
अमित शाह

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की प्रथम उद्घोषणा

भारत का राष्ट्रीय गीत 'वंदे मातरम्', जिसका इतिहास किसी युद्धभूमि से नहीं, बल्कि एक विद्वान बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के शांत लेकिन अडिग संकल्प से शुरू होता है। सन् 1875 में, जगद्धात्री पूजा (कार्तिक शुक्ल नवमी या अक्षय नवमी) के दिन, उन्होंने उस स्तोत्र की रचना की जो भारत की स्वतंत्रता का शाश्वत गीत बन गया। 'वन्दे मातरम्' केवल भारत का राष्ट्रीय गीत ही नहीं, सिर्फ स्वतंत्रता आन्दोलन का प्राण ही नहीं बल्कि यह बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय द्वारा 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की प्रथम उद्घोषणा है। समय आ गया है कि हम अपने इतिहास, अपनी संस्कृति, अपनी मान्यताओं और अपनी परंपराओं को भारतीयता की दृष्टि से देखें।

हमारे देश के इतिहास में ऐसे कई अहम पड़ाव आए, जब गीतों, कलाओं ने अलग-अलग रूपों में लोकभावनाओं को सहेजकर आंदोलन को आकार देने में अहम भूमिका निभाई। चाहे छत्रपति शिवाजी महाराज की सेना के युद्धगीत हों, आज़ादी के आंदोलन में सेनानियों के गान या आपातकाल के विरुद्ध युवाओं के सामूहिक गीत, इन गीतों ने भारतीय समाज को स्वाभिमान की प्रेरणा भी दी और एकजुट भी बनाया। ऐसा ही है भारत का राष्ट्रीय गीत 'वंदे मातरम्', जिसका इतिहास किसी युद्धभूमि से नहीं, बल्कि एक विद्वान बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के शांत लेकिन अडिग संकल्प से शुरू होता है।

सन् 1875 में, जगद्धात्री पूजा (कार्तिक शुक्ल नवमी या अक्षय नवमी) के दिन, उन्होंने उस स्तोत्र की रचना की जो भारत की स्वतंत्रता का शाश्वत गीत बन गया। इन पवित्र शब्दों को लिखते हुए, वे भारत की गहनतम सभ्यतागत जड़ों से प्रेरणा ले रहे थे। अथर्ववेद के उद्घोष 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः' से लेकर देवी महात्म्य में विश्वमाता के आह्वान से प्रेरणा ले रहे थे। बंकिम बाबू का यह मंत्र, प्रार्थना भी था और भविष्यवाणी भी। 'वन्दे मातरम्' केवल भारत का राष्ट्रीय गीत ही नहीं, सिर्फ स्वतंत्रता आन्दोलन का प्राण ही नहीं बल्कि यह बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय द्वारा 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की प्रथम उद्घोषणा है। इसने हमें याद दिलाया कि भारत केवल ज़मीन का एक टुकड़ा नहीं, बल्कि एक भू-सांस्कृतिक राष्ट्र है, जिसकी एकता उसकी संस्कृति और सभ्यता से आती है। यह केवल भू-भाग नहीं है, बल्कि तीर्थ है, स्मृति, त्याग, शौर्य और मातृत्व से बंधी पवित्र भूमि है। जैसा कि महर्षि अरबिंद ने वर्णन किया, बंकिम आधुनिक भारत के एक ऋषि थे, जिन्होंने अपने शब्दों के माध्यम से राष्ट्र की आत्मा को पुनर्जीवित किया। उनका 'आनंदमठ' केवल एक उपन्यास नहीं, बल्कि गद्य में एक मंत्र था, जिसने एक ऐसे राष्ट्र को जागृत किया जो अपनी दिव्य शक्ति को भूल चुका था।

अपने एक पत्र में, बंकिम बाबू ने लिखा : 'मुझे कोई आपत्ति नहीं है यदि मेरे सभी कार्य गंगा में बहा दिए जाएं। यह श्लोक ही अनंत काल तक जीवित रहेगा। यह एक महान गान होगा और लोगों के हृदय को जीत लेगा।' ये शब्द भविष्यसूचक थे। औपनिवेशिक भारत के सबसे अंधकारमय काल में लिखा गया, 'वंदे मातरम्' जागृति का प्रभात-गीत बन गया, एक ऐसा भजन जिसने 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' को सभ्यतागत गौरव के साथ जोड़ दिया। ऐसी पंक्तियां केवल वही व्यक्ति लिख सकता था जिसके रोम-रोम में राष्ट्र के प्रति भक्तिभाव कूट-कूट कर भरा हो। 1896 में, रवींद्रनाथ टैगोर ने 'वंदे मातरम्' को धुन में पिरोया और कोलकाता कांग्रेस अधिवेशन में इसे गाया, जिससे इसे वाणी और अमरता प्राप्त हुई। यह गीत भाषा और क्षेत्र की सीमाओं से आगे बढ़कर पूरे देश में गूंज उठा। तमिलनाडु में सुब्रमण्यम भारती ने इसका तमिल अनुवाद किया, और पंजाब में क्रांतिकारियों ने इसे गाते हुए ब्रिटिश राज को खुली चुनौती दी।

1905 में, बंग-भंग आंदोलन के दौरान, बंगाल में विद्रोह भड़क उठा। अंग्रेजों ने 'वंदे मातरम्' के सार्वजनिक पाठ पर प्रतिबंध लगा दिया था, फिर भी 14 अप्रैल, 1906 को बारीसाल में, हजारों लोगों ने इस आदेश की अवहेलना की। जब पुलिस ने शांतिपूर्ण सभा पर लाठीचार्ज किया, तो पुरुष और महिलाएं सड़कों पर 'वंदे मातरम्' का नारा लगाते हुए लहूलुहान हो गए। वहां से, 'वंदे मातरम्' का मंत्र, ग़दर पार्टी के क्रांतिकारियों के साथ कैलिफ़ोर्निया पहुंच गया। आज़ाद हिंद फ़ौज में गूंजा, जब नेताजी के सैनिक सिंगापुर से मार्च कर रहे थे और 1946 के रॉयल इंडियन नेवी की क्रांति में भी गूंजा, जब भारतीय नाविकों ने ब्रिटिश युद्धपोतों पर तिरंगा फहराया। खुदीराम बोस से लेकर अशफ़ाक़उल्ला ख़ान तक, चंद्रशेखर आजाद से लेकर तिरुपुर कुमारन तक, नारा एक ही था।

यह अब सिर्फ़ एक गीत नहीं रहा; यह भारत की सामूहिक आत्मा की आवाज़ बन गया था। महात्मा गांधी ने स्वयं स्वीकार किया था, 'वंदे मातरम्' में 'सबसे सुस्त रक्त को भी जगाने की जादुई शक्ति' थी। इसने उदारवादियों और क्रांतिकारियों तथा विद्वानों और नाविकों को तक एकजुट किया।

महर्षि अरबिंद ने इसीलिए कहा था कि, यह 'भारत के पुनर्जन्म का मंत्र' है। 26 अक्टूबर को 'मन की बात' कार्यक्रम में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 'वंदे मातरम्' गीत के इस इतिहास की देशवासियों को फिर से याद दिलाई और राष्ट्रीय गीत 'वंदे मातरम्' के 150 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में 7 नवंबर से भारत सरकार की ओर से अगले एक वर्ष तक अलग-अलग कार्यक्रमों का आयोजन करने का निर्णय लिया। इन आयोजनों के माध्यम से देश भर में 'वंदे मातरम्' का पूर्ण गान होगा, जिससे देश की युवा पीढ़ी 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के विचार को आत्मसात कर पाए। आज जब हम भारत पर्व मना रहे हैं और सरदार पटेल की जयंती पर उन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण कर रहे हैं, तो यह भी याद करते हैं कि कैसे सरदार साहब ने 'एक भारत' का निर्माण कर 'वंदे मातरम्' की भावना को ही मूर्त रूप दिया था। यह गीत केवल अतीत का स्मरण मात्र नहीं, बल्कि भविष्य के लिए एक आह्वान भी है। 'वंदे मातरम्' आज भी विकसित भारत 2047 के हमारे संकल्प में प्रेरणा दे रहा है। यह भारत के सभ्यतागत आत्मविश्वास का प्रतीक है। अब, इस भावना को आत्मनिर्भर और श्रेष्ठ भारत में परिवर्तित करना हमारी ज़िम्मेदारी है।

'वंदे मातरम्' स्वतंत्रता का गीत है, अटूट संकल्प की भावना है, और भारत के जागरण का प्रथम मंत्र है। राष्ट्र की आत्मा से जन्मे शब्द कभी समाप्त नहीं होते, वे सदैव जीवित रहते हैं, पीढ़ियों तक गूंजते रहते हैं। यह जयघोष युगों और पीढ़ियों में अनंतकाल तक प्रतिध्वनित होता रहेगा। समय आ गया है कि हम अपने इतिहास, अपनी संस्कृति, अपनी मान्यताओं और अपनी परंपराओं को भारतीयता की दृष्टि से देखें। वंदे मातरम् !

(लेखक केंद्रीय गृह एवं सहकारिता मंत्री हैं, ये उनके अपने विचार हैं।)
लेख पर अपनी प्रतिक्रिया haribhoomi@gmail.com पर दे सकते हैं।

कृष्ण योग के सूत्र

संकलित
दर्शन

भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार सिर्फ शरीर का नियमन ही योग नहीं है, बल्कि आत्मा के साक्षात्कार के लिए किया गया हरेक प्रयास योग की श्रेणी में आता है। इसी कारण श्रीकृष्ण को योगेश्वर कहा जाता है। वे जनक हैं योग के, धाराएं बहती हैं उनसे योग की, बस जिसको जो आयाम स्पर्श करता है, वह उस आयाम पर अग्रसर हो जाता है। आप जिस योग को योग मानते है, वह पतंजलि योग है। पतंजलि सबसे बड़े वैज्ञानिक है अंतर्जगत के। उनकी पहुंच एक वैज्ञानिक मन की है। उनके पास वैज्ञानिक मस्तिष्क है, लेकिन उनकी यात्रा भीतरी है। किंतु हमारे कृष्ण योगेश्वर हैं। वे दृष्टि देते हैं, स्वतंत्रता देते है, प्रेम और करुणा से आपको भरते है। वे जिससे आपको भरते हैं, वे वह स्वयं ही हैं, इसीलिए कृष्ण का योग धारा बन जाता है, आपसे आपको मिलता है और एक दिन केवल वही ही बचते हैं, आप उनमें मिल जाते हैं। कुछ कृष्ण के योग के पहलू जो केवल हम श्रवण करते हैं, पढ़ते हैं, पर वे सूत्र हैं कृष्ण-योग के 'तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम' अर्थात इससे समत्वबुद्धि योग के लिए ही चेष्टा करो, यह समत्वबुद्धि-रूप योग ही कर्मों में चतुरता है। अर्थात कर्मों में कुशलता को ही योग कहते है। कृष्ण तीन शब्दों का प्रयोग करते हैं-अकर्म, कर्म और विकर्म। कर्म वे उसे कहते हैं, सिर्फ करने को ही कर्म नहीं कहते। अगर करने को ही कर्म कहें, तब तो अकर्म में कोई जा ही नहीं सकता। फिर तो अकर्म हो ही नहीं सकता। कर्म को कृष्ण ऐसा करना कहते हैं, जिसमें कर्ता का भाव है। जिसमें करने वाले को यह पता है कि मैं कर रहा हूं।

क्या आपकी दुकान में ईश्वर मिलेंगे?

संकलित
प्रेरणा

आठ साल का एक बच्चा एक रुपए का सिक्का मुट्ठी में लेकर एक दुकान पर जाकर कहाः क्या आपके दुकान में ईश्वर मिलेंगे? दुकानदार ने यह बात सुनकर सिक्का नीचे फेंक दिया और बच्चे को निकाल दिया। बच्चा पास की दुकान में जाकर 1 रुपए का सिक्का लेकर चुपचाप खड़ा रहा! लेकिन, उस अबोध बालक ने हार नहीं मानी। एक दुकान से दूसरी दुकान, दूसरी से तीसरी, ऐसा करते करते कुल चालीस दुकानों के चक्कर काटने के बाद एक बूढ़े दुकानदार के पास पहुंचा। उस बूढ़े दुकानदार ने पूछाः तुम ईश्वर को क्यों खरीदना चाहते हो? क्या करोगे ईश्वर लेकर? बच्चे ने बड़े उत्साह से उत्तर दियाः इस दुनिया में मां के अलावा मेरा और कोई नहीं है। मेरी मां दिनभर काम करके मेरे लिए खाना लाती है। मेरी मां अब अस्पताल में हैं। अगर मेरी मां मर गई तो मुझे कौन खिलाएगा ? डाक्टर ने कहा है कि अब सिर्फ ईश्वर ही तुम्हारी मां को बचा सकते हैं। क्या आपके दुकान में ईश्वर मिलेंगे? दुकानदारः हां, मिलेंगे! कितने पैसे हैं तुम्हारे पास? बच्चाः सिर्फ एक रुपए। बच्चे की मां का ऑप्रेशन हुआ। और बहुत जल्द ही वह स्वस्थ हो उठीं। डिस्चार्ज के कागज़ पर अस्पताल का बिल देखकर उस महिला के होश उड़ गए। डॉक्टर ने उन्हें आश्वासन देकर कहाः टेंशन की कोई बात नहीं है। एक वृद्ध सज्जन ने आपके सारे बिल चुका दिए हैं। साथ में एक चिट्ठी भी दी है। महिला चिट्ठी खोलकर पढ़ने लगी, उसमें लिखा था, मुझे धन्यवाद देने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपको तो स्वयं ईश्वर ने ही बचाया है.. मैं तो सिर्फ एक ज़रिया हूं।

अंतर्मन

आज की पाती

हरियाणा के बहाने राहुल का चुनाव आयोग पर आरोप

राहुल कांग्रेस के ऐसे नेता है जो हमेशा गलत वजहों से खबरों में रहते है। राहुल की टिप्पणी और आरोप हमेशा बेतुके और असंगत होते है। बिहार चुनाव में पहले चरण के चुनाव के पूर्व हरियाणा के बहाने चुनाव आयोग पर मनगढ़ंत आरोप लगाए। हरियाणा में आठवां वोटर फर्जी और भाजपा ने वोट चुराने के बेमतलब आरोप लगाकर मन को शांत करने की कोशिश राहुल ने की है। हरियाणा में 25 लाख से ज्यादा वोटर्स फर्जी बताकर सीधा निर्वाचन आयोग को घेरने का प्रयास किया है। लेकिन निर्वाचन आयोग ने इसे बेबुनियाद और तथ्यविहीन बताया।भाजपा ने कहा कि कांग्रेस की असली हार की वजह उनके अपने नेता है। राहुल की ये बाते कुंठा को ही व्यक्त करती है।

-कांतिलाल मांडोत, सूरत

ट्रेंड

वे चाहते क्या हैं

राहुल गांधी ने अभी से मान लिया है कि बिहार चुनाव में कांग्रेस की लुटिया डूबने वाली है। एक ओर राहुल प्रेस कांफ्रेंस में वोट चोरी का रोना रोते हैं और दूसरी ओर एसआईआर का विरोध करते हैं। उनको खुद भी नहीं पता कि वे चाहते क्या हैं?

- जेपी नड्डा, केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री

बिहार का गौरव

मेरा वादा है कि बिहार में दुनिया की सबसे बेहतरीन यूनिवर्सिटी बनेगी, युवाओं का भी भविष्य यहीं से बनेगा, और दुनिया भर के लोग फिर से यहां अपना रास्ता तलाशने आएंगे। नालंदा कभी दुनिया का सबसे महान विश्वविद्यालय था, हम सुनिश्चित करेंगे कि उसका वही पुराना गौरव फिर से वापस लौटे।

- राहुल गांधी, सांसद, कांग्रेस

चुनाव आयोग की पोल

आज राहुल गांधी ने चुनाव आयोग की पोल खोल दी है। अब चुनाव आयोग क्या सफाई देगा? हरियाणा को लेकर राहुल जी ने इलेक्शन कमीशन को एक्सपोज कर रख दिया। चुनाव आयोग की मिलीभगत साफ पकड़ी गई है।

-अशोक गहलौत, पूर्व सीएम, राजस्थान

माफिया राज को बढ़ावा

हेमंत सरकार माफिया राज को बढ़ावा दे रही है। बालू घाट माफियाओं के चंगुल में है। ग्रामीण अपनी जरूरतों के लिए बालू नहीं उठा सकते लेकिन माफियाओं के ट्रक नदियों को रौंदते हुए अवैध खनन कर रहे हैं।

- बाबूलाल मरांडी, पूर्व सीएम, झारखंड

करंट अफेयर

एफडीए की नकली बोटॉक्स बेच रही वेबसाइट्स को चेतावनी

अमेरिकी स्वास्थ्य नियामकों ने बोटॉक्स और झुर्रियों को कम करने के लिए इस्तेमाल होने वाली अन्य दवाओं के नकली या अप्रमाणित संस्करण बेचने वाली 18 वेबसाइट्स को बुधवार को चेतावनी पत्र भेजे हैं। अमेरिका के खाद्य एवं औषधि प्रशासन (एफडीए) ने कहा कि वह इन उत्पादों के कारण होने वाली क्षति की रिपोर्ट मिलने के बाद कार्रवाई कर रहा है, जिनमें इन उत्पादों के इस्तेमाल के दुष्प्रभाव भी शामिल हैं। बोटॉक्स वास्तव में बोटुलिनम नामक दुनिया के सबसे जहरीले पदार्थों में से एक का तरल और शोधित रूप है। यह तत्व अस्थायी रूप से नसों के संकेतों को अवरुद्ध कर देता है, जिससे मांसपेशियों को आराम मिलता है। बोटॉक्स को सबसे अधिक सौंदर्य प्रयोजनों (कॉस्मेटिक इस्तेमाल) के लिए जाना जाता है, लेकिन अमेरिका में इसे कई चिकित्सा स्थितियों जैसे मांसपेशियों में ऐंठन, नेत्र विकार और माइग्रेन के इलाज के लिए भी मंजूरी प्राप्त है। एफडीए के अनुसार, चेतावनी पत्र ज्यादातर कॉस्मेटिक वेबसाइट्स को भेजे गए हैं। हर मामले में कंपनियां अनधिकृत या गलत लेबल वाले बोटॉक्स जैसी दवाएं बेच रही थीं, जिन्हें एजेंसी ने कभी मंजूरी नहीं दी। कभी-कभी यह विषाक्त तत्व इंजेक्शन वाली जगह से शरीर के अन्य हिस्सों में फैल सकता है।

ऑफ बीट

मोटापे की नई दवाएं कोई 'चमत्कारी इलाज' नहीं

इक्कीसवीं सदी में मोटापा सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक बनकर उभरा है। यह एक दीर्घकालिक रोग है जो शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से कई जटिलताएं उत्पन्न करता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अनुसार, 1990 से 2022 के बीच मोटापे का वैश्विक प्रसार दोगुना हो गया और अब यह दुनिया भर में, 88 करोड़ वयस्क और 16 करोड़ बच्चों सहित एक अरब से अधिक लोगों को प्रभावित कर रहा है। फ्रांस भी इससे अछूता नहीं है। एक अनुमान के अनुसार, देश में करीब 80 लाख लोग मोटापे से ग्रस्त हैं। इसकी दर 1997 में 8.5 प्रतिशत से बढ़कर 2012 में 15 प्रतिशत और 2020 में 17 प्रतिशत हो गई। हाल में विकसित नई दवाएं- ग्लूकागन-लाइक पेप्टाइड-1 (जीएलपी-1) एनालॉग्स- चिकित्सकों के लिए नई उम्मीदें लेकर आई हैं, लेकिन विशेषज्ञों का कहना है कि केवल इन दवाओं के भरोसे मोटापे पर काबू नहीं पाया जा सकता। डब्ल्यूएचओ के अनुसार, अधिक वजन और मोटापा शरीर में असामान्य या अत्यधिक वसा संचय है जो स्वास्थ्य के लिए जोखिमपूर्ण होता है। 25 से अधिक बॉडी मास इंडेक्स (बीएमआई) को अधिक वजन और 30 से अधिक को मोटापा माना जाता है।

अपने विचार

हरिभूमि कार्यालय

टिकरापारा, रायपुर में पत्र के माध्यम से या फैक्स : 0771-4242222, 23 पर या सीधे मेल से hbcgpati@gmail.com पर भेज सकते हैं।

दिल्ली की ज़हरीली हवा

स्वास्थ्य आपातकाल

नवंबर आते-आते शहर एक गैस चैंबर जैसा दिखने लगता है। हर सर्दी में एक्यूआई खराब हो जाता है, प्रदूषण का स्तर बढ़ जाता है और राहत कहीं नजर नहीं आती। दिल्लीवासियों को प्रतिदिन क्या सहना पड़ता है, इसे ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज (जीबीडी) आंकड़ों के एक नए विश्लेषण द्वारा स्पष्ट रूप से उजागर किया गया है, जिसे अधिकारियों और निवासियों दोनों के लिए एक चेतावनी के रूप में लिया जाना चाहिए। रिपोर्ट एक गंभीर तस्वीर पेश करती हैः 2023 में, दिल्ली में सात में से एक मौत वायु प्रदूषण से जुड़ी थी। जहरीली हवा से लगभग 17,200 लोगों की जान जाने के साथ, प्रदूषण न केवल एक पर्यावरणीय उपद्रव के रूप में उभरा है, बल्कि राजधानी का सबसे बड़ा स्वास्थ्य खतरा बनकर उभरा है।

प्रत्येक सर्दी में, जैसे ही दिल्ली का क्षितिज घने, भूरे कफन के नीचे फीका पड़ जाता है, वायु प्रदूषण सुर्खियों में छा जाता है और लोगों की जान ले लेता है। फिर भी जीबीडी डेटा से पता चलता है कि दिल्ली का वायु संकट नवंबर और दिसंबर तक ही सीमित नहीं है, यह साल भर चलने वाला हत्यारा है, जो चुपचाप सार्वजनिक स्वास्थ्य को नष्ट कर रहा है और जीवन को छोटा कर रहा है। सूक्ष्म कण पदार्थ के संपर्क में लंबे समय तक रहना मूलभूत खतरे का सबब है। इसे परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए, वायु प्रदूषण उच्च रक्तचाप, मधुमेह या मोटापे की तुलना में अधिक लोगों को मारता है। फिर भी आधिकारिक प्रतिक्रियाएं अस्पष्ट बनी हुई हैं, अधिकारी अभी भी इस बात पर बहस कर रहे हैं कि क्या वायु प्रदूषण को निर्णायक रूप से मृत्यु दर से जोड़ा जा सकता है। हालांकि, आंकड़ा स्वयं बोलता है।

कई हस्तक्षेपों के बावजूद, श्रेणीबद्ध प्रतिक्रिया योजनाओं और विषम-सम योजनाओं से लेकर पराली जलाने पर अंकुश लगाने तक प्रदूषण से जुड़ी मौतें 2018 में 15,786 से बढ़कर 2023 में 17,188 हो गई हैं। यह प्रणालीगत विफलता की ओर इशारा करता हैः नीतियां प्रतिक्रियाशील और मौसमी बनी हुई हैं, जबकि प्रदूषण के स्रोत कई गुना बढ़ गए हैं और शहर के शहरी ढांचे में खुद को स्थापित कर लिया है।

आम धारणा के विपरीत, दिल्ली का संकट सिर्फ सर्दियों के धुंध या पंजाब में पराली जलाने से नहीं है। सीआरईए के नवीनतम आकलन से पता चलता है कि इस अक्टूबर में दिल्ली के पीएम2.5 स्तर में फसल अवशेष जलाने का योगदान छह प्रतिशत से भी कम है। असली अपराधी घर के करीब हैः वाहन उत्सर्जन, औद्योगिक प्रदूषण, निर्माण धूल, और अनियंत्रित अपशिष्ट जलना। दिल्ली का लगभग आधा वायु प्रदूषण वाहनों से उत्पन्न होता है।

वायु प्रदूषण को अब केवल एक पर्यावरणीय चिंता के रूप में नहीं, बल्कि एक सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल के रूप में माना जाना चाहिए। इसे एक स्वास्थ्य मुद्दे के रूप में परिभाषित करने के लिए मजबूत जवाबदेही, बेहतर निगरानी और महामारी प्रतिक्रियाओं के समान लक्षित हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। सख्त वाहन उत्सर्जन मानदंड, सार्वजनिक परिवहन का त्वरित विद्युतीकरण, औद्योगिक उत्सर्जन ऑडिट और धूल नियंत्रण तंत्र को महामारी प्रतिक्रिया की तात्कालिकता के साथ लागू किया जाना चाहिए। सीआरईए के निष्कर्ष एक चेतावनी हैं, जो सांकेतिक उपायों की नहीं, बल्कि परिवर्तनकारी कार्रवाई की मांग करता है।

वृद्धिशील उपायों का समय समाप्त हो गया है, दिल्ली को साहसिक, प्रणालीगत सुधारों की आवश्यकता है। सांस लेने योग्य हवा को पुनः प्राप्त करने के लिए नागरिकों, अधिकारियों और उद्योग को एकजुट होकर कार्य करना चाहिए। केवल निरंतर, समन्वित कार्रवाई ही प्रदूषण से संबंधित मौतों में वृद्धि को रोक सकती है और शहर के स्वास्थ्य को बहाल कर सकती है। दिल्ली का भविष्य वायु गुणवत्ता को एक गैर-परक्राम्य सार्वजनिक स्वास्थ्य प्राथमिकता के रूप में मानने पर निर्भर करता है।

अखंड भारत के लिए पटेल का अनुसरण

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि प्रधानमंत्री मोदी, एक दशक से अधिक समय से, नेहरू द्वारा की गई गलतियों को सुधारने और भारत को उस पथ पर वापस ले जाने का प्रयास कर रहे हैं, जिस पर सरदार पटेल चलते थे।

बलबीर पुंज
लेखक, जाने-माने स्तम्भकार हैं।

31 अक्टूबर को, भारत ने देश के पहले उप प्रधान मंत्री और गृह मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल की 150वीं जयंती मनाते हुए एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर मनाया। फिर भी, आज भी एक प्रश्न मन में कौंधता हैः यदि महात्मा गांधी ने 1946 में अंतरिम प्रधान मंत्री के चयन के दौरान अपने 'वीटो' का प्रयोग नहीं किया होता तो भारत कैसा दिखता?

प्रमुख पत्रकार दुर्गा दास, जो उन घटनापूर्ण वर्षों के एक विश्वसनीय गवाह हैं, उस समय की संपूर्ण अंतरिम सरकार प्रक्रिया को सबसे अच्छी तरह से दर्शाते हैं। अपनी पुस्तक इंडिया - फ्रॉम कर्जन टू नेहरू एंड आफ्टर में, उन्होंने स्पष्ट रूप से याद किया हैः ₹पटेल कांग्रेस संसदीय बोर्ड के प्रमुख थे, और प्रांतीय कांग्रेस समितियों ने आजाद के उत्तराधिकारी के रूप में उनके लिए अपनी प्राथमिकता व्यक्त की थी। लेकिन गांधी को लगा कि अंग्रेजों से निपटने के लिए नेहरू एक बेहतर साधन होंगे क्योंकि वे 'सामान्य मुहावरे' में बात करेंगे।

यह भारत के राजनीतिक इतिहास में 'वोट चोरी' का पहला उदाहरण था, जिसमें कांग्रेस की अधिकांश प्रांतीय समितियों द्वारा पटेल को नामांकित करने के बावजूद, नेहरू को विजेता घोषित किया गया था। दिलचस्प बात यह है कि 14 नवंबर को नेहरू की 136वीं जयंती नजदीक है, जो हमें इस बात पर विचार करने के लिए प्रेरित कर रही है कि महान सरदार के नेतृत्व में भारत का स्वरूप कैसा रहा होगा।

सरदार पटेल का राजनीतिक दर्शन पूरी भावना के साथ भारत की समृद्ध सभ्यतागत विरासत और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर आधारित था। यदि युवा गणतंत्र ने धर्मनिरपेक्षता के उनके दृष्टिकोण को अपनाया होता, तो लंबे समय से चला आ रहा अयोध्या विवाद, सोमनाथ मामले की तरह, कई दशकों पहले ही सुलझ गया होता। काशी और मथुरा में मंदिर और मस्जिद को लेकर लंबित विवाद, जिसके कारण सदियों से अदालतों के अंदर और बाहर तनाव बना हुआ है, शायद बहुत पहले ही सुलझ गया होगा। 22-23 दिसंबर 1949 की रात जब अयोध्या के विवादित ढांचे के अंदर चमत्कारिक ढंग से रामलला की मूर्ति प्रकट हुई तो पहला चश्मदीद कोई हिंदू नहीं बल्कि अब्दुल बरकत नाम का एक मुस्लिम पुलिसकर्मी था।

इसके अलावा, एक दर्जन से अधिक स्थानीय मुसलमानों ने सिटी मजिस्ट्रेट के समक्ष हलफनामा प्रस्तुत किया, जिसमें स्वेच्छा से राम जन्मभूमि स्थल पर हिंदू स्वामित्व स्वीकार किया गया। यहां तक कि तत्कालीन संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) के मुख्यमंत्री गोविंद बल्लभ पंत, तत्कालीन गृह मंत्री लाल बहादुर शास्त्री, वरिष्ठ नौकरशाह केके नायर, सिटी मजिस्ट्रेट गुरुदत्त सिंह, मुख्य सचिव भगवान सहाय और स्थानीय कांग्रेस नेता बाबा राघवदास सहित प्रशासनिक और सामाजिक नेतृत्व दोनों राम मंदिर के पुनर्निर्माण के पक्ष में थे।

फिर भी, यह मुद्दा सात दशकों तक लटका रहा, जिसका मुख्य कारण पंडित नेहरू की धर्मनिरपेक्षता की विकृत व्याख्या थी। यह भी माना जाता था कि नेहरू सोमनाथ मंदिर के पुनर्निर्माण को लेकर असहज थे; हालाँकि, जब तक गांधी और पटेल जीवित थे, वह इसे रोकने के लिए खुद को तैयार नहीं कर सके। एक बार जब ये विशाल व्यक्तित्व पृष्ठभूमि में फीके पड़ गए, तो हिंदू संस्कृति के प्रति नेहरू का पूर्वाग्रह सतह पर आने लगा।

वह अपनी उपनिवेशवादी मानसिकता को प्रकट करते हुए, हिंदू मंदिरों को केवल ₹दमनकारी₹ संरचनाओं के रूप में खारिज करने तक चले गए। यह वैचारिक रुख 2007 में एक चौंकाने वाले निचले स्तर पर पहुंच गया, जब कांग्रेस के नेतृत्व वाली यूपीए सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में एक हलफनामा दायर किया, जिसमें दावा किया गया कि भगवान राम के अस्तित्व का समर्थन करने के लिए कोई सबूत नहीं था। पटेल का दृष्टिकोण-अनुनय, समायोजन, दृढ़ता और रणनीतिक बल-550 से अधिक रियासतों को एकजुट करने में सहायक था। इस बीच, कुछ अज्ञात कारणों से, नेहरू ने अस्थिर जम्मू-कश्मीर पर व्यक्तिगत नियंत्रण बनाए रखा। पटेल जम्मू और कश्मीर को उन कई रियासतों में से एक मानते थे जो भारतीय संघ में एकीकृत हो रही थीं। हालाँकि, नेहरू ने इसे दो कारणों से एक अनोखा मामला माना। सबसे पहले, जम्मू और कश्मीर भारत में शामिल होने वाला एकमात्र मुस्लिम-बहुल राज्य था, जिसके कारण नेहरू ने इस पर विशेष ध्यान दिया, संभवतः एक सांप्रदायिक दृष्टिकोण।

दूसरे, शेख अब्दुल्ला, जो गुप्त रूप से इसके 'शेख', एक संप्रभु शासक बनने की आकांक्षा रखते थे, ने नेहरू पर पर्याप्त प्रभाव डाला और उन्हें गुमराह करने में सफल रहे। परिणाम विनाशकारी थाः कश्मीर को जनमत संग्रह के प्रस्ताव के अधीन किया गया था, अनुच्छेद 370 और 35ए ने इसे विशेष दर्जा दिया; संयुक्त राष्ट्र में इस मुद्दे का अंतर्राष्ट्रीयकरण किया गया; और पाकिस्तानी आक्रमणकारियों को पूरी तरह से खदेड़ने से पहले ही समय से पहले युद्धविराम की घोषणा कर दी गई।

कोई केवल कल्पना ही कर सकता है, यदि नेहरू ने इसी तरह जूनागढ़ या हैदराबाद से संपर्क किया होता, तो वे भी पाकिस्तानी क्षेत्र बन गए होते, नासूर घावों में बदल जाते, जिनसे खून बहता रहता, जिससे भारत दशकों तक खंडित रहता। सच्चाई स्पष्ट हैः यदि पटेल कश्मीर मुद्दे से निपटते, तो शेष भारत की तरह वहां भी शांति कायम होती। भारतीय सैनिकों पर कोई पथराव नहीं होता, धार्मिक पहचान के आधार पर कोई सांप्रदायिक हत्या नहीं होती और पाकिस्तान ने घाटी में हस्तक्षेप करने से पहले दो बार सोचा होता। 1989-90 के दौरान कश्मीरी हिंदुओं का नरसंहार कभी नहीं हुआ होगा। एक ऐसी दुनिया की कल्पना करें जहां 1960 की सिंधु जल संधि कभी अस्तित्व में नहीं आई - भारत की दीर्घकालिक संभावनाओं के लिए इसके नुकसान मिट गए।

'हिंदी-चीनी भाई-भाई' कूटनीति की पुरानी आशा पर टिके रहने या चीन को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सीट देने के बजाय, चीन के आक्रामक विस्तार को रोकने के लिए अधिक रणनीतिक और दृढ़ दृष्टिकोण अपनाया जा सकता था। रणनीति में इस तरह के बदलाव से इतिहास और 1962 के युद्ध के नतीजे पर काफी असर पड़ सकता है।

यदि भारत पटेल के नेतृत्व में होता, तो देश की आर्थिक नियति एक अलग रास्ता अपनाती-सुस्त, मित्रतापूर्ण समाजवाद के बजाय नवप्रवर्तन और आत्मनिर्भरता से प्रेरित। अपनी अटल दृष्टि के साथ, पटेल ने भारतीयों को अपनी पूरी रचनात्मक क्षमता को उजागर करने के लिए प्रेरित किया होगा और विदेशी वित्त पोषित विरोध प्रदर्शनों के खिलाफ एक मजबूत रुख अपनाया होगा, जो अक्सर पर्यावरण और मानवाधिकार अभियानों के रूप में सामने आते हैं, जो राष्ट्रीय प्रगति को खतरे में डालते हैं।

भारत को विरासत में मिले मार्क्स-मैकाले ब्रांड की धर्मनिरपेक्षता, जिसे नेहरू ने आकार दिया था, ने देश के सामाजिक ताने-बाने को गहराई से विकृत कर दिया है। यह अक्सर हिंदू समुदाय को लंबे समय से धार्मिक असहिष्णुता और उत्पीड़न के शिकार हमलावरों के बजाय स्थायी पीड़ित के रूप में चित्रित करता है जो वे वास्तव में हैं। इस उलटफेर की उत्पत्ति 18 मई, 1959 को मुख्यमंत्रियों को लिखे नेहरू के पत्र में देखी जा सकती है। इसमें, उन्होंने एकतरफा रूप से ₹सांप्रदायिक शांति₹ बनाए रखने का बोझ ₹बहुसंख्यक हिंदुओं₹ पर डाल दिया, जबकि आत्मविश्वास से कहा कि ₹भारत में मुसलमान, अपने स्वभाव से, आक्रामक रवैया नहीं अपना सकते।₹ एक सहस्राब्दी से अधिक समय से, हिंदुओं, बौद्धों, सिखों और जैनियों को लगातार हमलों का सामना करना पड़ा है - आक्रमण, जबरन धर्मांतरण और उनके पवित्र मंदिरों का विनाश - यह सब कट्टर एकेश्वरवादी उत्साह से प्रेरित है। क्या कोई सचमुच यह दावा कर सकता है कि उपमहाद्वीप में इस्लाम ने अपनी ऐतिहासिक रूप से मूर्तिभंजक प्रवृत्तियों को मौलिक रूप से बदल दिया है या छोड़ दिया है?

पटेल ने कट्टरता के खतरे को स्पष्टता के साथ देखा। 1939 में, गुजरात के भावनगर में, जब एक मस्जिद के भीतर छिपे जिहादियों ने उन पर तलवारों से हमला किया, तो वे बाल-बाल बच गये। हालाँकि इन भयानक प्रसंगों को अक्सर मुख्यधारा की कहानी से बाहर रखा जाता था, पटेल ने पहले ही इस्लामी चरमपंथ की उपेक्षा के घातक परिणामों को देख लिया था - एक ऐसी चूक जो अभी भी राष्ट्र की एकता और अखंडता को कमजोर करने का खतरा है।

3 जनवरी, 1948 को, कलकत्ता में एक सभा को संबोधित करते हुए, पटेल ने स्पष्ट रूप से कहाः भारत में रहने वाले मुसलमानों में से, कई, शायद अधिकांश, ने पाकिस्तान के निर्माण का समर्थन किया था। यह मेरी समझ से परे है कि उनका दिल रातोंरात कैसे बदल गया होगा। तीन दिन बाद (जनवरी 6, 1948), लखनऊ में उन्होंने पूछा, भारतीय मुसलमान भारतीय धरती पर पाकिस्तान के आक्रमण की निंदा क्यों नहीं करते? सरदार पटेल ने लगातार देश के हितों को अपनी व्यक्तिगत या पारिवारिक चिंताओं से ऊपर रखा। एक ऐतिहासिक शख्सियत से बढ़कर, पटेल एक मार्गदर्शक शक्ति बने हुए हैं जो भारत के भविष्य को आकार दे रही है।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि प्रधानमंत्री मोदी, एक दशक से अधिक समय से, नेहरू द्वारा की गई गलतियों को सुधारने और भारत को उस पथ पर वापस ले जाने का प्रयास कर रहे हैं, जिस पर पटेल चलते।

जब मानवीय रूप ले लेती है कृत्रिम बुद्धि

फरवरी 2026 में, नई दिल्ली एआई इम्पैक्ट शिखर सम्मेलन की मेजबानी करेगी, जिसमें यह देखा जाएगा कि प्रौद्योगिकी लोगों के जीवन, पर्यावरण और प्रगति को कैसे बदल सकती है।

चैतन्य के प्रसाद
लेखक, पूर्व सिविल सेवक हैं।

इतिहास में ऐसे क्षण आते हैं जब आविष्कार इरादे पर खरा उतरता है-जब प्रौद्योगिकी न केवल आगे बढ़ती है बल्कि जागृत होती है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ऐसे ही एक क्षण में खड़ी है। बोर्डरूम और समाचारों में एल्गोरिदम, प्रतिस्पर्धा और अस्तित्वगत जोखिम के बारे में बहुत चर्चा होती है।

लेकिन तमाम प्रचार के अलावा, एक अधिक महत्वपूर्ण और शांत प्रश्न सामने आ रहा हैः क्या एआई लोगों को जीवित रहने के बजाय आगे बढ़ने में मदद कर सकता है? फरवरी 2026 में, नई दिल्ली एआई इम्पैक्ट शिखर सम्मेलन की मेजबानी करेगी, जिसमें यह देखा जाएगा कि प्रौद्योगिकी लोगों के जीवन, पर्यावरण और प्रगति को कैसे बदल सकती है। इस बात पर बहस करने के बजाय कि मशीनें कैसे काम संभाल सकती हैं, दुनिया इस बारे में बात करने के लिए एक साथ आएगी कि वे कैसे लोगों को ठीक कर सकती हैं, शामिल कर सकती हैं और ऊपर उठा सकती हैं।

चुनौती सिर्फ एआई को स्मार्ट बनाने की नहीं है, बल्कि इसे 'जन एआई'-जन-केंद्रित, सहभागी और उद्देश्यपूर्ण बनाने की भी है। उस विचार के बीज पहले से ही मौजूद हैं। जिला अस्पताल में एआई-पावर्ड टूल की मदद से डॉक्टर बीमारियों का जल्द पता लगा सकते हैं। एक छोटे से गाँव में एक किसान एक ऐप का उपयोग करता है जो उपग्रह डेटा प्राप्त करके भविष्यवाणी करता है कि बारिश कब होगी। एक डिजिटल ट्यूटर बच्चे की पहली भाषा में गणित की समस्या को फिर से समझाता है।

ये भविष्य के बारे में कहानियां नहीं हैं, वे एक ऐसे वर्तमान में झांक रहे हैं जो धीरे-धीरे दिखाई न देने वाली कोड की पंक्तियों और दयालुता के कार्यों के माध्यम से बदल रहा है। एआई अब चक्रवातों के आने से पहले ही उनकी भविष्यवाणी कर देता है, उत्सर्जन में कटौती के लिए यातायात का प्रबंधन करता है और वास्तविक समय में वनों की कटाई को ट्रैक करता है। इससे शहरों को स्वच्छ हवा में सांस लेने में मदद मिलती है और किसानों को अधिक भोजन उगाने में मदद मिलती है। फिर भी इन अनुप्रयोगों से परे कुछ अधिक गहरा है - पहुंच का लोकतंत्रीकरण। पहली बार, खुफिया जानकारी ही साझा की जा सकेगी। एक वॉयस असिस्टेंट विकलांग व्यक्ति को सेवाओं तक पहुंचने का अधिकार देता है। एक बार अप्राप्य होने पर, एक एआई उपकरण एक ग्रामीण व्यवसाय के मालिक को ऋण प्राप्त करने में मदद करता है। सहानुभूतिपूर्वक डिजाइन किया गया एआई सिस्टम को स्मार्ट बनाने के अलावा समाज को अधिक न्यायसंगत बनाकर बेहतर बनाता है।

हालांकि, वैश्विक एआई मानचित्र अभी भी स्तरीय नहीं है। इसके निर्माण के केंद्र कुछ धनी देशों में केंद्रित हैं, जो विशेषाधिकार को प्रतिबिंबित करने वाले डेटासेट पर प्रशिक्षित हैं। जब एल्गोरिदम हिंदी या स्वाहिली को समझने में विफल हो जाते हैं, या समशीतोष्ण जलवायु के लिए खेती को अनुकूलित करने में विफल हो जाते हैं, तो वे एक असुविधाजनक सच्चाई प्रकट करते हैंः एआई उस दुनिया को प्रतिबिंबित करता है जो इसे बनाती है।

इसे बदलने के लिए, ग्लोबल साउथ को परीक्षण स्थल से सह-लेखक की ओर बढ़ना होगा। इसकी भाषाएं, संस्कृतियां और जीवंत वास्तविकताएं एआई को वास्तव में सार्वभौमिक बनाने के लिए डेटा और ज्ञान दोनों रखती हैं। यह बदलाव केवल नैतिक नहीं है, यह व्यावहारिक है। विविधता के अभाव में बुद्धिमत्ता बुद्धिमत्ता नहीं बल्कि नकल है। इस प्रकार, भारत विश्व की जटिलता और आशा का प्रतीक है। 1.4 अरब लोगों, सैकड़ों भाषाओं और देश के सबसे दूरदराज के क्षेत्रों तक फैली डिजिटल क्रांति के साथ, भारत समावेशी नवाचार के लिए आदर्श सेटिंग प्रदान करता है। सरकार के इंडिया एआई मिशन का लक्ष्य एआई को केवल कनेक्शन वाले लोगों के लिए ही नहीं, बल्कि सभी नागरिकों के लिए फायदेमंद बनाना है। प्रौद्योगिकी क्षमता का निर्माण करती है, लेकिन संचार विश्वास का निर्माण करता है।

जन एआई को वास्तविक बनाने के लिए, हमें अमूर्त को सुलभ-मोड़ने वाले एल्गोरिदम में कहानियों में, डेटा को संवाद में, और नैतिकता को रोजमर्रा की सहानुभूति में अनुवाद करना होगा। जिस तरह स्वच्छ भारत ने स्वच्छता को एक नागरिक भावना में बदल दिया और डिजिटल इंडिया ने प्रौद्योगिकी को एक साझा सपना बना दिया, उसी तरह जन एआई को लोगों का आंदोलन बनना चाहिए - एक बातचीत जो बुद्धिमत्ता को नष्ट, विकेंद्रीकृत और लोकतांत्रिक बनाती है। जागरूकता अभियान दिखा सकते हैं कि एआई जीवन को कैसे बेहतर बनाता है। सामुदायिक रेडियो, स्थानीय भाषा सामग्री और स्थानीय प्रभावशाली लोग इसे प्रासंगिक बना सकते हैं। स्कूलों में कहानी सुनाना और कौशल कार्यक्रम एक साथ जिज्ञासा और सावधानी को बढ़ावा दे सकते हैं। जब नागरिक एआई के वादे और नुकसान को समझते हैं, तो वे डर के कारण नहीं बल्कि स्वामित्व की भावना के साथ भाग लेते हैं।

जन एआई जैसा आंदोलन ऊपर से नीचे नहीं हो सकता। इसे कई भाषाओं में व्यक्त किया जाना चाहिए, दैनिक बातचीत में महसूस किया जाना चाहिए और विभिन्न मीडिया के माध्यम से संप्रेषित किया जाना चाहिए। नैतिक डेटा साझाकरण को बढ़ावा देकर, स्थानीय अनुप्रयोगों को प्रभावित कर-के और जवाबदेही की मांग करके, इसे न केवल नागरिकों को एआई का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए बल्कि इसे सह-निर्माण भी करना चाहिए।

अच्छे, डिजिटल मीडिया, मोशन पिक्चर्स और लोकप्रिय संस्कृति के लिए एआई का उपयोग करने वाली नर्सों, शिक्षकों और किसानों के वास्तविक जीवन के उदाहरण प्रस्तुत करके इन संभावनाओं को मानवीय बनाया जा सकता है। प्रत्येक कहानी और रचना व्यापक जागृति के लिए एक चिंगारी के रूप में कार्य करती है, जो दशार्ती है कि कैसे समावेशिता बुद्धिमत्ता को सामूहिक बनने के लिए मार्गदर्शन कर सकती है।

इस बात को लेकर चिंतित दुनिया में कि मशीनें क्या कर सकती हैं, नई दिल्ली शिखर सम्मेलन एक अलग सवाल पूछता हैः हम उनके साथ एक-दूसरे के लिए क्या कर सकते हैं? सहानुभूति और समावेशिता के साथ, प्रौद्योगिकी मानवता की कहानी का अंत नहीं हो सकती बल्कि इसके अगले अध्याय की शुरूआत हो सकती है। भारत का नेतृत्व विश्व के विमर्श को निर्देशित करने का अवसर प्रदान करता है।

यदि उत्तर यहीं से शुरू होता है, ग्लोबल साउथ के केंद्र में, तो शायद 'जन एआई' आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के युग की शुरूआत करेगा जहां समाधान यहीं से शुरू होता है, ग्लोबल साउथ के केंद्र में। और शायद, संभवतया, अंततः सबसे मानवीय युग का उदय होगा, जो धर्म के साथ-साथ डेटा द्वारा संचालित होगा।

आप की बात

बिहार की राजनीति

बिहार की राजनीति लंबे समय से जातिगत समीकरणों और अपराधीकरण की चपेट में है। यह एक ऐसी कड़वी सच्चाई है, जिसने लोकतंत्र की आत्मा को भीतर तक खोखला कर दिया है। मोकामा में जदयू प्रत्याशी और बाहुबली अनंत सिंह की गिरफ्तारी ने इस हकीकत को फिर से उजागर कर दिया। अनंत सिंह को जनसुराज पार्टी के समर्थक दुलारचंद यादव की हत्या के मामले में पकड़ा गया, जबकि दुलारचंद खुद भी आपराधिक पृष्ठभूमि वाला व्यक्ति था। चुनावी मैदान में अनंत सिंह का सामना राजद उम्मीदवार वीणा देवी से है, जो कुख्यात सूरजभान सिंह की पत्नी हैं। यह दृश्य केवल मोकामा का नहीं, बल्कि पूरे बिहार के राजनीतिक ताने-बाने का प्रतीक है। बिहार की पिछली विधानसभा में 50 प्रतिशत विधायकों पर गंभीर आपराधिक मामले दर्ज थे। इनमें 16 विधायक हत्या और 30 विधायक हत्या के प्रयास जैसे संगीन अपराधों में आरोपित थे। आठ विधायकों पर यौन शोषण के मामले भी लंबित थे। ऐसे में यह कहना गलत नहीं होगा कि बिहार की राजनीति में अपराधियों का प्रभाव केवल सीमित नहीं, बल्कि निर्णायक हो चुका है। चुनावी टिकट वितरण में सभी दलों की ₹दागी प्रेम₹ नीति खुलकर दिखाई देती है। सत्ता पक्ष हो या विपक्ष, सभी बाहुबलियों और उनके परिवारजनों को टिकट देने में समान रूप से उदार रहे हैं।

– **सुभाष बुड़ावनवाला**, रतलाम

सड़क सुरक्षा में महत्वपूर्ण हेलमेट

भारत में सड़क दुर्घटनाओं के चिंताजनक आंकड़े हेलमेट पहनने की अनिवार्यता की सख्त जरूरत को उजागर करते हैं। प्रतिवर्ष लाखों दोपहिया वाहन चालक और सवारी अपनी जान गंवा रहे हैं और दुखद रूप से लगभग 80 प्रतिशत वाहन चालक हेलमेट नहीं पहनते हैं। सिर की चोटें इन मौतों का एक बड़ा कारण बनती हैं, जिन्हें हेलमेट आसानी से रोक सकता है। मध्य प्रदेश पुलिस द्वारा 6 नवंबर से राज्य भर में हेलमेट नहीं लगाने वालों के विरुद्ध सघन और निरंतर अभियान चलाया जा रहा है। यह कार्रवाई एक सराहनीय कदम है। इस अभियान में दोपहिया वाहन पर सवार दूसरी सवारी के लिए भी हेलमेट लगाना अनिवार्य किया गया है जो सड़क सुरक्षा की दिशा में एक महत्वपूर्ण बदलाव है। पहले लागू किए गए 'बगैर हेलमेट पेट्रोल नहीं' जैसे नियमों के सकारात्मक परिणाम देखने को मिले हैं जिसने लोगों में हेलमेट की जरूरत और खुद की सुरक्षा के प्रति चेतना जगाई है। सड़क दुर्घटनाओं में होने वाली मौतों की संख्या को देखते हुए यह अत्यंत आवश्यक है कि इस प्रकार के सुरक्षा नियमों को तत्काल देश भर में एक साथ लागू किया जाए। हर नागरिक को अपनी जान की कीमत समझते हुए सुरक्षा नियमों का पालन करना चाहिए। यह सिर्फ एक नियम नहीं बल्कि जीवन रक्षक पहल है।

– **अमृतलाल मारू 'रवि'**, इन्दौर मप्र

हार की हताशा

निरंतर हार की हताशा व्यक्ति को मानसिक रूप से कितना कुंठित कर सकती है, इसका सबसे सटीक उदाहरण नेता प्रतिपक्ष के आचरण से मिलता है, जो अपने गिरेबान में न झांक कर चुनाव में फजीवाड़े मनगढंत किस्से गढ़कर बार बार अतार्किक प्रश्न खड़े करते हैं। चुनाव बिहार में हो या अन्य प्रदेशों में नेता प्रतिपक्ष चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली पर सवाल उठाते हुए बार बार वोट चोरी का आरोप लगाते हैं। जब उनसे आरोपों की प्रमाणिकता सिद्ध करने के लिए शपथ पत्र देने कहा जाता है, तब वह रणछोड़ बनकर मुख्य मुद्दे से पलायन कर जाते हैं। प्रश्न उत्पन्न होता है, कि नेता प्रतिपक्ष के दायित्व का निर्वहन करने वाला व्यक्ति इतना संकीर्ण और कुंठित कैसे हो सकता है, कि वह चुनाव व्यवस्था जैसे गंभीर विषय पर भी गंभीर न हो। वोट चोरी का आरोप लगाकर नेता प्रतिपक्ष क्या यह सिद्ध करना चाहते हैं, कि देश में चुनाव वोट चोरी करके जीते जाते हैं। ,यह वोट चोरी की प्रथा क्या भाजपा शासित प्रदेशों में ही गतिशील है ? जिन राज्यों में कांग्रेस समर्थित सरकारें हैं, क्या वहां पूर्ण निष्पक्षता से चुनाव संपन्न होते हैं ? विपक्ष के वोट चोरी के आलाप से यही लगता है, कि जैसे इनके पास प्रमाण हैं, कि यदि कहीं वोट कटे, तो कांग्रेस पार्टी के समर्थकों के ही वोट कटे, यदि कहीं वोटों की गड़बड़ी हुई तो कांग्रेस के विरोध में ही हुई। जब किसी व्यक्ति या राजनीतिक दल के अस्तित्व पर संकट उत्पन्न होने लगे, तो व्यक्ति का स्वयं पर से विश्वास उठ जाता है।

– **सुधाकर आशावादी**, मेरठ

धर्मस्थलों पर भगदड़

आंध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम पुरम के वेंकटेश्वर मंदिर में मची भगदड़ से 11 लोगों की मृत्यु और 25 श्रद्धालुओं के घायल होने की घटना दुर्भाग्यपूर्ण है। प्रत्येक वर्ष देश की अनेकों मंदिरों में ऐसी घटनाएं होती हैं और जान माल का नुकसान होता है,जिस पर राज्य सरकारों को मंदिर प्रबंधकों को और श्रद्धालुओं को जरूर गंभीर चर्चा करनी होगी । धार्मिक, आध्यात्मिक यात्राएं ,उत्सव एवं सांस्कृतिक समागम जीवन के महत्वपूर्ण पड़ाव है। एक व्यक्ति आस्था अनुरूप देशाटन करता है। लेकिन मंदिर के परिसरों में घटनाओं में श्रद्धालुओं की जान माल जाती रही है जिसकी रोकथाम के लिए मंदिर प्रबंधन को मंदिर परिसर में आवागमन के पर्याप्त प्रवेश द्वार सुरक्षा इंतजाम भीड़ नियंत्रण वॉलिंटियर्स की नियुक्ति श्रद्धालुओं को सावधान करना , ड्रोन के द्वारा परिसर की जैसे मुद्दे पर मंदिर संचालकों को काम करना होगा। पुलिस प्रशासन की दिशा निदेर्शों का भी पालन,बिजली की वैकल्पिक व्यवस्था भी जरूरी है। अफवाहों पर रोक एवं मोबाइल एप अलर्ट की व्यवस्था भी कारगर सिद्ध हो सकती है। श्रद्धालुओं का धैर्य और मंदिर संचालकों के दिशा निदेर्शों को पालन करते हुए अपने आध्यात्मिक यात्रा सफल बनाएं।

– **वीके जाटव** , दिल्ली

पाठकगण अपने विचार **responsemail.hindipioneer@gmail.com** पर भेज सकते हैं।

https://t.me/AllNewsPapersPaid

बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 18 अंक 224

सुरक्षा को प्राथमिकता

छत्तीसगढ़ में बिलासपुर के निकट एक स्थानीय मेमू (मेनलाइन इलेक्ट्रिक मल्टीपल यूनिट) सवारी गाड़ी और एक मालगाड़ी की टक्कर ने देश की रेलवे सुरक्षा तैयारी को एक बार फिर सवालों के घेरे में ला दिया है। शुरुआती जांच बताती है कि यह दुर्घटना तब हुई जब सवारी गाड़ी खतरे का निशान दिखा रहे सिग्नल को पार कर गई। यह बताता है कि इंसानी गलतियों और सिग्नलिंग में चूक भारत के विशाल रेल नेटवर्क में अभी भी एक बड़ी कमजोरी है। यह दुर्घटना उस समय हुई है जबकि केंद्र सरकार ने हाल ही में विभिन्न राज्यों में 900 किलोमीटर नए ट्रैक बिछाने के लिए 24, 634 करोड़ रुपये की राशि मंजूरी की है। बहरहाल, रेल लाइनों के विस्तार में सुरक्षा को दरकिनार नहीं कर सकता है।

यह सही है कि उल्लेखनीय रेल दुर्घटनाओं की संख्या 2019-20 के 55 से घटकर 2024-25 में 31 रह गई है लेकिन ऐसी हर घटना बताती है सुरक्षा के मामले में अभी काफी कुछ किया जाना बाकी है। वित्त वर्ष 26 के बजट अनुमानों के मुताबिक सरकार ने 2025-26 में सुरक्षा के मसले पर खर्च के लिए 1.16 लाख करोड़ रुपये आवंटित किए। इस राशि का पांचवां हिस्सा पटरियों के नवीनीकरण पर खर्च होना है। कुल रेलवे व्यय के प्रतिशत के रूप में सुरक्षा पर होने वाला खर्च वित्त वर्ष 19 के 27 फीसदी से घटकर वित्त वर्ष 26 में 21 फीसदी रह गया।

आधुनिकीकरण के उपाय मसलन स्वदेशी टकरावरोधी व्यवस्था 'कवच' की स्थापना, ट्रैक सर्किटिंग और इलेक्ट्रॉनिक इंटरलॉकिंग का विस्तार सही दिशा में उठाए गए कदम हैं। हालांकि इनका क्रियान्वयन अभी भी असंगत और अधूरा बना हुआ है। वर्ष 2024-25 की आर्थिक समीक्षा में भी कहा गया था कि इलेक्ट्रॉनिक इंटरलॉकिंग के लिए चिह्नित 62 स्टेशनों में से केवल 25 पर ही वित्त वर्ष 25 में काम पूरा हो सका। 37 अन्य का उन्नयन बाकी है। भारी मालवहन और घने यात्री परिवहन दोनों का प्रबंधन इस चुनौती को और कठिन बना रहा है जबकि कर्मचारियों में थकान भी सुरक्षा के लिए खतरा पैदा कर रही है।

बहरहाल, चाहे जो भी हो रेलवे ने तकनीक के क्षेत्र में उत्साहजनक वृद्धि हासिल की है। भारतीय रेल और डेडिकेटेड फ्रेट कॉरिडोर कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (डीएफसीसीआईएल) के बीच हालिया गठजोड़ का इरादा आर्टिफिशल इंटेलिजेंस और मशीन लर्निंग की मदद से रोलिंग स्टॉक और पटरियों की जांच करने का है। हर तरह की क्रॉसिंग पर सीसीटीवी कैमरे लगाए जा रहे हैं ताकि ट्रेनों की भिड़ंत जैसी घटनाओं को टाला जा सके। हालांकि, इन बिखरे हुए प्रयासों को एक करने की आवश्यकता है ताकि तकनीक, अधोसंरचना और इंसानी कारकों को जोड़ने वाली सुरक्षा रणनीति कायम की जा सके।

सुरक्षा के लिए बहुमुखी रणनीति की आवश्यकता है। सबसे पहले डिजिटल सिग्नलिंग का व्यापक इस्तेमाल शुरू करना होगा और कवच जैसे भिड़ंत रोकने वाले उपायों को ऐसे सभी रूटों पर लागू करना होगा जहां जोखिम बहुत अधिक है। दूसरी बात, सेंसर और आर्टिफिशल इंटेलिजेंस की मदद से अनुमान लगाकर मरम्मत करनी होगी और पहले ही समस्याओं का पता लगाना होगा। तीसरा, कर्मचारियों के प्रबंधन पर ध्यान देने की जरूरत है। काम के बेहतर हालात, थकान की निगरानी, अतिरिक्त लोको पायलट की भर्ती और नई तकनीक को लेकर विशेष प्रशिक्षण की मदद से मानवीय चूक में भारी कमी की जा सकती है। चौथी बात, हर विस्तार या आधुनिकीकरण परियोजना के लिए स्वतंत्र सुरक्षा जांच जरूरी की जानी चाहिए। ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि सिग्नलिंग, ब्रेकिंग और आपातकालीन प्रणालिया अधोसंरचना की क्षमता वृद्धि के साथ तालमेल बनाए रख सकें।

इसमें दो राय नहीं कि भारत को अधिक रेल पटरियों, तेज ट्रेनों और विस्तृत संपर्क व्यवस्था की आवश्यकता है। परंतु सुरक्षा के बिना तेज गति कोई कामयाबी नहीं है। नई रेल लाइन के हर किलोमीटर के साथ लक्ष्य को सिर्फ तेज से 'सुरक्षित और तेज' की ओर ले जाने की आवश्यकता है। देश में रोजाना सफर करने वाले 2.4 करोड़ रेल यात्रियों के लिए रेलवे प्रणाली में विश्वास केवल कुशलता या विस्तार पर नहीं बल्कि इस आश्वासन पर टिकी है कि आगामी यात्रा सुरक्षित है।

आज की दुनिया में जी2 महज कागजी

आज का जी2 अर्थात दो महाशक्तियों वाली व्यवस्था बुनियादी तौर पर अस्थिर है और उसमें पूरी दुनिया को प्रभावित कर पाने की ताकत नहीं है। इस बारे में विस्तार से बता रहे हैं आर जगन्नाथन

चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग के साथ अपनी हालिया बैठक में अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने दो महाशक्तियों (जी2) के नेतृत्व वाली एक नई विश्व व्यवस्था की संभावना जताई। उनका कहना यह था कि ये दो महाशक्तियां मिलकर दुनिया पर राज कर सकती हैं और यह तय कर सकती हैं कि सभी के लिए क्या सही है।

बहरहाल, 2025 का जी2 आंशिक रूप से एक भ्रम हो सकता है। विशेष रूप से इसलिए क्योंकि अमेरिका और चीन के बीच व्यापार, जलवायु परिवर्तन, ताइवान और वैश्विक सुरक्षा से जुड़े तकरीबन हर मुद्दे पर एक दूसरे के विपरीत नजरिया है। एक बात स्पष्ट है कि जी1 और जी2 दोनों जानते हैं कि उनके भौगोलिक दबदबे का क्षेत्र वर्तमान स्तर से बढ़ नहीं सकता है। वेनेजुएला को अमेरिका की धमकी बताती है कि वह अमेरिकी महाद्वीप में अपने प्रभुत्व को लेकर कितना चिंतित है और चीन को पता है कि वह भारत या जापान को एक सीमा से अधिक परेशान नहीं कर सकता है। किसे पता यूक्रेन युद्ध समाप्त होने के बाद रूस पर उसका कितना प्रभाव दिखाई देगा?

यह विश्व युद्ध के बाद उभरे जी2 के हालात से एकदम अलग है। उस वक्त भी अमेरिका ही इकलौती सैन्य और आर्थिक महाशक्ति था और करीब एक दशक तक हालात जी1 जैसे ही रहे। उसके बाद ही सोवियत संघ परमाणु शक्ति बना और दूसरी महाशक्ति बन सका। उसने समाजवादी विचारधारा के आधार पर बहुत तेजी से सैन्य और आर्थिक क्षमता हासिल की। उसे एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के नए-नए स्वतंत्र हुए उपनिवेशों और गरीब देशों का भी साथ मिला। इसके बावजूद सोवियत संघ कभी पूर्ण आर्थिक महाशक्ति नहीं बन सका और हम अभी भी हालात को जी2 नहीं बल्कि जी1.5 ही कह सकते हैं। बावजूद इसके कि 1990 के दशक के आरंभ तक सोवियत संघ ही अमेरिका का प्रमुख प्रतिद्वंद्वी था। उसे यह भूमिका देने में उसकी मजबूती से अधिक शेष विश्व की कमजोरी वजह थी।

परंतु चीन और अमेरिका वाला आज का जी2 व्यापक राष्ट्रीय शक्ति के मामले में अधिक समतुल्य है और सैद्धांतिक तौर पर यह तभी वास्तविक जी2 हो सकता है जबकि उनके लक्ष्य कुछ स्थानों पर साझा हों। सैन्य और आर्थिक शक्ति के मामले में अमेरिका आगे है लेकिन यह बढ़त आंशिक रूप से एक भ्रम है। कारणः यह केवल तभी काम आता है जब हम आर्थिक शक्ति को डॉलर में आंकें। हकीकत यह है कि अमेरिका के पराभव के साथ ही डॉलर में भी गिरावट आएगी। क्रय शक्ति समता यानी पीपीपी के मामले में चीन पहले ही अमेरिका से आगे है और तकनीक के मामले में भी वह तेजी से आगे बढ़ रहा है।

अमेरिका और चीन को ज्यादा से ज्यादा जी 1.75 कहा जा सकता है क्योंकि दोनों ही पक्षों में पूरी दुनिया को प्रभावित करने की क्षमता नहीं है बशर्ते कि वे एकजुट न हो जाएं। फिलहाल तो इसकी संभावना भी नहीं नजर आती है। वे एक ही विचार पर सहमत नजर आते हैं और वह है भारत के उदय को धीमा करना। परंतु वे ऐसा पहले से करते आ रहे हैं। वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ऐसा ही करना चाहेंगे।

1990 के दशक के पहले के जी2 और अब में अंतर यह है कि पहले दोनों ध्रुवों के चारों ओर केवल अनुसरण करने वाले मुल्क ही होते थे। युद्ध के बाद का यूरोप तब पस्त पड़ा था, और बाकी दुनिया औपनिवेशिक बेड़ियों को तोड़ने की शुरुआत कर रही थी, जिसमें गरीब और भूखे लोगों का दुनिया का सबसे बड़ा भंडार बसता था। आज, अगर अफ्रीका के बहुत छोटे या अत्यधिक गरीब देशों को छोड़ दें, तो एशिया में प्रमुख आर्थिक और सैन्य शक्तियां उभर रही हैं। समय के साथ यूरोपीय शक्तियां और जापान भी, जो लगभग एक सदी से अमेरिका के इशारे पर चल रहे थे, अपनी आवाज फिर से पा सकते हैं। वे भी जानते हैं कि अमेरिका पर भरोसा नहीं किया जा सकता, लेकिन अभी वे यह बात खुलकर नहीं कहेंगे क्योंकि उनकी निर्भरता बहुत अधिक है।

अमेरिकी महाद्वीप और पश्चिमी यूरोप में अमेरिका को कोई चुनौती नहीं है। चीन अभी भी एक एशियाई शक्ति ही है तथा भारत और जापान जैसी शक्तियां उसे चुनौती देती हैं। आज के जी2 सीमित अर्थों में ही शक्तिशाली हैं। सैन्य और आर्थिक गठजोड़ बरकरार हैं लेकिन कोई बड़ा देश इन दोनों से डरने वाला नहीं है।

आज अमेरिका और चीन एक-दूसरे पर निर्भर हैं। अमेरिका चीनी उत्पादों पर निर्भर है और चीन अमेरिका के बाजार पर। आर्थिक वास्तविकता इसका कारण स्पष्ट करती है। दोनों देश अब एक-दूसरे से अलग होने की कोशिश कर रहे हैं ताकि इस पारस्परिक निर्भरता से कोई पक्ष अनुचित लाभ न उठा सके। इसका अर्थ यह है कि बाकी दुनिया को चीन और अमेरिका में से किसी एक को चुनने की जरूरत नहीं है और वे दोनों के साथ स्वतंत्र रूप से व्यवहार कर सकते हैं, कम से कम पर्याप्त रूप से बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के मामले में।

वर्ष2025 में आर्थिक शक्ति भी 1945 की तुलना में अधिक बंटी हुई है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के मुताबिक डॉलर के संदर्भ में अमेरिकी अर्थव्यवस्था 30.5 लाख करोड़ डॉलर की है जबकि चीन की 19.23 लाख करोड़ डॉलर। परंतु अगर अगली पांच या छह शक्तियों मसलन जर्मनी, जापान, भारत, फ्रांस, ब्रिटेन और रूस को मिलाकर देखा जाए तो वे चीन के समान ही बड़ी हैं। परंतु पीपीपी के नजरिये से ये काफी अलग नजर आता है। इस लिहाज से चीन 40.72 लाख करोड़ डॉलर की जीडीपी के साथ बहुत आगे है। अमेरिका 30.6 लाख करोड़ डॉलर और भारत 17.71 लाख करोड़ डॉलर वाला है। अगले पांच देश यानी रूस, जापान, जर्मनी, इंडोनेशिया और ब्राजील का कुल पीपीपी जीडीपी अमेरिका के बराबर है। रूस को अक्सर आर्थिक नाकामी के लिए याद किया जाता है। वह 7.14 लाख करोड़ डॉलर की पीपीपी जीडीपी के साथ भारत के बाद चौथे स्थान पर है। अपनी आंतरिक कीमतों के संदर्भ में रूस शायद ही आर्थिक रूप से कमजोर है।

आज का जी2 कागज पर अधिक मजबूत दिखता है लेकिन 1945 के उलट बाद वाले पांच देश आर्थिक और सैन्य दृष्टि से इतने कमजोर नहीं हैं कि उन पर दबाव बनाया जा सके। डॉलर के संदर्भ में अमेरिका और चीन दोनों वैश्विक जीडीपी में 42 फीसदी हिस्सेदार हैं जबकि आईएमएफ के मुताबिक पीपीपी के संदर्भ में उनकी हिस्सेदारी घटकर 34 फीसदी रह जाती है।

आज का जी2 परिदृश्य मूल रूप से अस्थिर है, क्योंकि कई ऐसे देश या समूह हैं जिनके पास स्वतंत्र रूप से या समूहों में ठोस सौदेबाजी की शक्ति है। दूसरे शब्दों में, ऐसा कोई वास्तविक जी2 नहीं है जो केवल अपने हितों में काम कर सके। यही कारण है कि भारत वैश्विक मंच पर बड़ी भूमिका निभा सकता है।

यदि भारत यूक्रेन युद्ध के बाद यूरोप और रूस को यूरेशिया में साथ काम करने के लिए प्रेरित कर सके, और यदि जापान, भारत और आसियान मिलकर एशिया में चीन की आर्थिक शक्ति को संतुलित करें, तो हम एक बेहतर दुनिया और नई बहुध्रुवीय वैश्विक व्यवस्था बना सकते हैं। यदि चीन को एशिया में संतुलित किया जाए और अमेरिका को उत्तर और दक्षिण अमेरिका में उसकी दादागीरी तक सीमित रखा जाए, तो दुनिया में आर्थिक और सैन्य हितों का बेहतर संतुलन स्थापित हो सकता है।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

बैंकिंग क्षेत्र में आने वाली है सुधारों की नई लहर

भारतीय बैंकिंग क्षेत्र कई मोर्चों पर सुधार की राह पर है। पिछले एक दशक में यह उद्योग लगातार खबरों में रहा है। सबसे पहले, भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) ने परिसंपत्ति गुणवत्ता समीक्षा के माध्यम से बड़े पैमाने पर सफाई अभियान चलाया। उसने डूबती परिसंपत्तियों का पता लगाया और यह सुनिश्चित किया कि बैंक इनके समाधान के लिए धनराशि अलग रखें और अपनी बैलेंस शीट को मजबूत बनाएं। वित्त वर्ष 19 की विभिन्न तिमाहियों में कम से कम तीन बैंकों की सकल गैर-निष्पादित परिसंपत्तियां (एनपीए) 25 फीसदी या उससे अधिक थीं, और प्रोविजनिंग यानी प्रावधान के बाद चार बैंकों का शुद्ध एनपीए 10 से 19 फीसदी के बीच था।

बैंकों को अपनी ऋण मूल्यांकन और जोखिम प्रबंधन क्षमताओं को भी मजबूत करने के लिए मजबूर होना पड़ा। इसके बाद 11 सरकारी बैंकों (पीएसबी) को त्वरित सुधार कार्रवाई (पीसीए) ढांचे के अंतर्गत रखा गया, जिसके तहत उन्हें तब तक नए ऋण देने से रोक दिया गया, जब तक कि वे जमा के रूप में एकत्रित जनता के धन को उधार देने के लिए सही क्षेत्र और उधारकर्ताओं की पहचान करने में कुशलता हासिल नहीं कर लेते।

◆अगला चरण समेकन का था। भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई) ने 2017 में अपने पांच सहयोगी बैंकों और भारतीय महिला बैंक का अपने में विलय कर लिया। इसके बाद 2019 और 2020 में पीएसबी के बीच कई विलय हुए। सरकारी बैंकों की संख्या 27 से घटकर 12 रह गई।

कुछ बैंकों को छोड़कर, जो समेकन अभियान का हिस्सा नहीं रहे हैं, अधिकांश सरकारी बैंकों ने अपना आकार बढ़ा लिया है। उनके पास अच्छी खासी पूंजी है तथा वे रिकॉर्ड मुनाफा कमा रहे हैं।

पिछले साल सभी 12 सरकारी बैंकों ने लाभ दर्ज किया। वित्त वर्ष 2025 में उनका समेकित शुद्ध लाभ 1.78 लाख करोड़ रुपये रहा, जो इसके पिछले वर्ष की तुलना में 26 फीसदी की वृद्धि दर्शाता है। इसमें एसबीआई की हिस्सेदारी कम से कम 40 फीसदी यानी 70,901 करोड़ रुपये थी।

वित्त वर्ष 2018 की तुलना में कितना बड़ा बदलाव! उस वर्ष सरकारी बैंकों का समेकित शुद्ध घाटा 85,390 करोड़ रुपये था। उस समय 21 सरकारी बैंकों में से केवल दो ही शुद्ध लाभ अर्जित कर पाए थे - इंडियन बैंक और विजया बैंक (जिसका अप्रैल 2019 में देना बैंक के साथ बैंक ऑफ बड़ौदा में विलय हो गया था)। यहां तक कि एसबीआई ने भी उस वर्ष शुद्ध घाटा दर्ज किया था।

बैंकिंग साख

तमाल बंद्योपाध्याय

सभी सरकारी बैंकों ने अभी तक अपनी सितंबर तिमाही की आय की घोषणा नहीं की है। चालू वित्त वर्ष की जून तिमाही में उनका सामूहिक शुद्ध लाभ 44,218 करोड़ रुपये था। जून तिमाही में एक भी सरकारी बैंक का शुद्ध एनपीए 1 फीसदी नहीं था। एसबीआई का शुद्ध एनपीए 47 आधार अंक (बीपीएस) था, बैंक ऑफ महाराष्ट्र और इंडियन बैंक, दोनों का शुद्ध एनपीए केवल 18 आधार अंक था।

इस पृष्ठभूमि में सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के लिए सुधारों का एक नया दौर शुरू करने के लिए तैयार है। उसने पहले ही निजी बैंकिंग उद्योग के ढांचे में बदलाव शुरू कर दिया है। सबसे पहले अक्टूबर में, कैबिनेट की नियुक्ति समिति ने सरकारी बैंकों के पूर्णकालिक निदेशकों के चयन के लिए नए दिशानिर्देशों की घोषणा की। अब निजी क्षेत्र के उम्मीदवार एसबीआई के चार प्रबंध निदेशकों में से किसी एक पद के लिए आवेदन कर सकते हैं। शेष तीन पदों के लिए सरकारी क्षेत्र के अन्य बैंकर भी आवेदन कर सकते हैं। अब तक ये पद केवल आंतरिक उम्मीदवारों के लिए आरक्षित थे।

सरकारी क्षेत्र के बैंकों में शीर्ष पदों के लिए निजी क्षेत्र के लिए भी दरवाजे खोल दिए गए हैं। चयन प्रक्रिया में निजी और सरकारी क्षेत्र, दोनों की ओर से खुला विज्ञापन शामिल होगा। अंततः कम से कम 10 लाख करोड़ रुपये के कारोबार वाले सरकारी क्षेत्र के बड़े बैंकों के चार कार्यकारी निदेशकों में से एक निजी क्षेत्र से आ सकता है।

पिछले महीने, एमिरेट्स एनबीडी बैंक (ईएनबीडी) और आरबीएल बैंक के निदेशक मंडल ने एमिरेट्स बैंक द्वारा आरबीएल बैंक में नियंत्रक हिस्सेदारी हासिल करने के लिए उसमें 26,850 करोड़ रुपये निवेश करने पर सहमति जताई। ईएनबीडी, आरबीएल बैंक में 60 फीसदी हिस्सेदारी खरीदेगा, अपनी तीन शाखाओं का भारतीय निजी बैंक में विलय करेगा और अंततः इसे अपने शेयरधारकों, नियामकों और सरकार की मंजूरी के अधीन एक पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी बनाएगा। इससे पहले, जापानी दिग्गज कंपनी सूमीतोमो मित्सुई बैंकिंग कॉरपोरेशन ने येस बैंक में 24.22 फीसदी हिस्सेदारी हासिल की थी।

हाल में दुनिया की सबसे बड़ी वैकल्पिक परिसंपत्ति प्रबंधक कंपनी ब्लैकस्टोन द्वारा फेडरल बैंक में 9.99 फीसदी हिस्सेदारी खरीदने के लिए 6,197 करोड़ रुपये का निवेश किया गया। इसके अलावा, अमेरिका की निजी इक्विटी फर्म वारबर्ग पिंकस एलएलसी और अबू धाबी इन्वेस्टमेंट अथॉरिटी (एडीआईए) आईडीएफसी फर्स्ट बैंक में 7,500 करोड़ रुपये का निवेश कर रही हैं। हम यह देखने के लिए उत्सुक हैं कि आईडीबीआई बैंक का क्या होगा, जहां सरकार और भारतीय जीवन बीमा निगम की संयुक्त रूप से 94.72 फीसदी हिस्सेदारी है, और दोनों 60.72 फीसदी हिस्सेदारी बेचने की योजना बना रहे हैं।

हालांकि घरेलू निजी बैंकों में विदेशी स्वामित्व की सीमा 74 फीसदी तथा मताधिकार 26 फीसदी पर बरकरार है, फिर भी निजी बैंकों में विदेशी निवेशकों की भूमिका के संबंध में नियामक के दृष्टिकोण में स्पष्ट रूप से बदलाव आया है।

जल्द ही, हम सरकारी बैंकों के क्षेत्र में भी ऐसा ही कुछ देखेंगे। विदेशी निवेशकों को सरकारी बैंकों में ज्यादा हिस्सेदारी रखने की अनुमति देने की योजना है। तो क्या सरकार इन बैंकों में अपनी हिस्सेदारी 51 फीसदी से कम कर देगी? बिल्कुल नहीं। लेकिन विदेशी हिस्सेदारी, जिसकी सीमा 20 फीसदी है, बढ़ाकर 49 फीसदी की जाएगी।

सरकार इन बैंकों में पूंजी डालती रही है। सरकारी बैंकों को सक्रिय रखने के लिए वित्त वर्ष2022 तक 4,38,780 करोड़ रुपये डाले जा चुके हैं। यह प्रक्रिया 1980 के दशक के अंत में शुरू हुई थी। सबसे बड़ी किस्त वित्त वर्ष 2019 में जारी की गई जो 1,06,000 करोड़ रुपये थी , उसके बाद वित्त वर्ष 2018 में 90,000 करोड़ रुपये और वित्त वर्ष 2020 में 70,000 करोड़ रुपये जारी किए गए। उस दौर में इस उदार पूंजी निवेश के बिना, सरकारी क्षेत्र के बैंक अपनी बैलेंस शीट को साफ नहीं कर पाते।

मजबूत और लाभ कमाने वाले सरकारी बैंकों ने पिछले तीन वर्षों में यानी वित्त वर्ष 2023 से वित्त वर्ष 2025 के बीच सरकार को कम से कम 54,500 करोड़ रुपये का लाभांश दिया है। इस समय, सरकारी बैंकों में विदेशी हिस्सेदारी बढ़ाना सही कदम है। इससे उन्हें अपनी पूंजी बढ़ाने और कारोबार बढ़ाने में मदद मिलेगी।

फिलहाल, सरकारी बैंकों में विदेशी हिस्सेदारी बहुत कम है। यह सबसे ज्यादा केनरा बैंक (11.88 फीसदी) में है, उसके बाद एसबीआई (9.56 फीसदी), बैंक ऑफ बड़ौदा (8.71 फीसदी) और यूनियन बैंक ऑफ इंडिया (7.86 फीसदी) का स्थान है। बाकी बैंकों में यह 5 फीसदी से भी कम है; और कम से कम तीन बैंकों में तो यह कुछ ही आधार अंक है।

सरकारी बैंकों में सरकार की हिस्सेदारी कितनी रही है? न्यूनतम सीमा 51 फीसदी है, लेकिन कम से कम तीन बैंकों में यह 90 फीसदी से ज्यादा है। एसबीआई में यह 55.5 फीसदी है। बाकी बैंकों में यह 62.93 फीसदी से 89.27 फीसदी के बीच है।

क्या सरकार अपनी हिस्सेदारी विदेशी निवेशकों को बेचेगी? नहीं। मेरा अनुमान है कि सरकारी बैंक पात्र संस्थागत नियोजन (क्यूआईपी) और अन्य माध्यमों से नई पूंजी जुटाएंगे। चूंकि ये बैंक मजबूत और लाभ कमाने वाले हैं, इसलिए इनके लिए कई खरीदार होंगे। हालांकि इसे सफल बनाने के लिए सरकार को इन बैंकों के संचालन के तरीके पर पुनर्विचार करना चाहिए।

बैंकों में विदेशी हिस्सेदारी की सीमा हटाने से हालात बदलेंगे। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा है कि बैंकों को व्यावसायिक संस्थाओं की तरह ही माना जाना चाहिए।

आपका पक्ष

इंटीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेंट विधि अपनाई जाए

रासायनिक कीटनाशकों के दुष्परिणाम सामने आने के बाद भी न किसान इन्हें नियंत्रित करने को राजी हैं और न प्रशासन इनकी बिक्री को हतोत्साहित कर रहा है। दरअसल, कीटनाशकों को नियंत्रित करने के लिए इंटीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेंट विधि अपनाने की आवश्यकता है। यह एक ऐसी विधि है जिसमें कीटों के प्रबंधन के लिए विभिन्न तरीकों का संयोजन किया जाता है, जैसे कि जैविक नियंत्रण, सांस्कृतिक नियंत्रण और रासायनिक नियंत्रण। जैविक नियंत्रण में कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग किया जाता है, जैसे कि परजीवी और शिकारी। इनका उपयोग करके कीटों को नियंत्रित किया जाता है। सांस्कृतिक नियंत्रण में फसल चक्र, स्वच्छता और अन्य कृषि प्रथाओं का उपयोग किया जाता है, जो कीटों के प्रकोप को कम करने में मदद करती है। इन कीटनाशकों का चयन करते समय उनकी विषाक्तता, प्रभावशीलता और पर्यावरणीय प्रभाव को ध्यान में रखना चाहिए। कीटनाशकों का उपयोग करते समय निर्माता के निर्देशों का पालन करना चाहिए और सुरक्षा उपायों का ध्यान रखना चाहिए। इन कदमों को उठाकर, हम रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग को नियंत्रित कर सकते हैं तथा पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य की रक्षा कर सकते हैं।

सुधीर कुमार सोमानी, देवास

खेतों में कीटनाशकों को नियंत्रित करने के लिए रसायनों के बजाय इंटीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेंट विधि अपनाने की आवश्यकता है

असंगठित क्षेत्र की दुखती रग

लेख 'सेवा क्षेत्र में असंगठित उपक्रमों का जाल' ने दुखती रग पर हाथ रख दिया। संगठित और असंगठित क्षेत्र पर चर्चा असीमित है और अपुष्ट अनुमान के अनुसार असंगठित क्षेत्र की सकल घरेलू उत्पाद में 45 फीसदी भागीदारी है। ऐसा क्या कारण है कि अर्थव्यवस्था हमारे असंगठित क्षेत्र को संगठित नहीं कर पाती और देश के शीर्ष अर्थशास्त्री जो नीति आयोग, सरकार और बैंकिंग प्रणाली में बैठे हैं, असंगठित क्षेत्र में ऐसे कौन से लाभ देखते हैं जो संगठित क्षेत्र में नहीं हैं। जब एक निम्न आय वर्ग के परिवार को विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं, डायरेक्ट कैश ट्रांसफर, महिलाओं के लिए लाभकारी योजनाओं, फ्री राशन, बिजली, पानी, निःशुल्क शिक्षा, स्कॉलरशिप से हजारों रुपये महीने की आमदनी हो रही हो, तो कौन समझदार व्यक्ति संगठित क्षेत्र में काम करके अपनी जनकल्याणकारी योजनाओं को छोड़ेगा। उसके लिए असंगठित क्षेत्र में काम करना ही मजबूरी है। यह बात अलग है कि बहुत तेजी से गरीबी दूर हो रही है और समाज में गजब का सामंजस्य स्थापित हो गया है और अर्थव्यवस्था में भी भरपूर वृद्धि हो रही है। कुल मिलाकर स्थिति देश और समाज के लिए अच्छी है। अतः असंगठित क्षेत्र को लेकर चर्चा बंद हो या फिर जनकल्याणकारी योजनाओं को अंत्योदय आधार तक सीमित किया जाए और जो वास्तव में बहुत अधिक गरीब हैं, जनजातीय क्षेत्रों में रहते हैं, जिनके पास सुदूर क्षेत्रों में रोजगार सृजित नहीं हुआ है, उन परिवारों तक जनकल्याणकारी योजनाओं को विस्तार दिया जाए। दिल्ली और महानगरों में जनकल्याणकारी योजनाओं के दुरुपयोग के कारण असंगठित क्षेत्र को बढ़ावा मिलना तय है।

विनोद जौहरी, दिल्ली

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिज़नेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।

देश-दुनिया

फोटो - पीटीआई

रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने गुरुवार को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के जरिये बेंगलूरु अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी केंद्र (बीआईईसी) में 'इंडिया मैन्युफैक्चरिंग शो (आईएमएस 2025)' के सातवें संस्करण का उद्घाटन किया। प्रदर्शनी में भारतीय वायु सेना के हेलीकॉप्टर 'सारंग' मॉडल के साथ सेल्फी लेती युवतियां।

https://t.me/AllNewsPaperPaid

दैनिक जागरण

क्रोध की अवस्था का सबसे उत्तम उपाय है मौन

फर्जी विश्वविद्यालय

इससे संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता कि शिक्षा मंत्रालय फर्जी विश्वविद्यालयों के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए राज्यों के मुख्य सचिवों को पत्र लिखने जा रहा है। आश्चर्य नहीं कि इस पत्राचार के बाद भी फर्जी शिक्षा संस्थान बंद न हों। इसकी आशंका इसलिए है, क्योंकि अतीत में इस तरह की पहल की जा चुकी है, लेकिन सभी फर्जी शिक्षा संस्थानों पर ताला नहीं लगाया जा सका। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यानी यूजीसी हर वर्ष फर्जी विश्वविद्यालयों की सूची जारी करता है, ताकि छात्र उनमें प्रवेश लेने और अपना समय एवं धन बर्बाद करने से बचें। इसके बाद भी वे चलते रहते हैं। इसका मतलब है कि छात्र उनमें प्रवेश लेते हैं। यूजीसी फर्जी विश्वविद्यालयों की सूची जारी करने के साथ ही यह भी बताता है कि इन शिक्षा संस्थानों की ओर से दी जाने वाली डिग्री किसी काम की नहीं होती, लेकिन उनका अस्तित्व बना ही रहता है। कई फर्जी विश्वविद्यालय ऐसे हैं, जिनके खिलाफ एफआइआर भी दर्ज की जा चुकी है, लेकिन उन्हें इसलिए बंद नहीं किया जा सका, क्योंकि कुछ ने अदालतों की शरण ले ली तो कुछ ने किसी अन्य आधार पर अपने को वैध ठहराने की चेष्टा की। स्पष्ट है कि शिक्षा संस्थानों के संचालन संबंधी नियम-कानूनों में कुछ ऐसे छिद्र हैं, जिनका लाभ फर्जी विश्वविद्यालयों को चलाने वाले उठा रहे हैं।

फर्जी विश्वविद्यालयों का संचालित होते रहना केवल छात्रों के साथ खिलवाड़ ही नहीं, बल्कि शिक्षा संस्थानों को संचालित करने वाली व्यवस्था का उपहास भी है। यह व्यवस्था कितनी दीन-हीन है, इसका पता इससे चलता है कि देश में जो 22 फर्जी विश्वविद्यालय चल रहे हैं, उनमें से 10 देश की राजधानी दिल्ली यानी संसद, सुप्रीम कोर्ट, शिक्षा मंत्रालय और यूजीसी की नाक के नीचे चल रहे हैं। क्या यह एक मजाक नहीं? कुछ फर्जी विश्वविद्यालय तकनीक, प्रबंधन और कानून की भी डिग्रियां बांटते हैं। किसी को यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि आखिर इन फर्जी विश्वविद्यालयों से कथित तौर पर डिग्री हासिल करने वाले छात्र करते क्या हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि वे अपनी अमान्य डिग्रियों का कहीं पर इस्तेमाल करने में समर्थ हो जाते हों? यह सहज ही समझा जा सकता है कि फर्जी विश्वविद्यालय चोरी-छिपे नहीं, बल्कि खुलेआम सार्वजनिक स्थानों में चल रहे होते हैं। आखिर एक अवैध समानांतर व्यवस्था के सामने विधि का शासन इतना असहाय कैसे हो सकता है? प्रश्न यह भी है कि नियम-कानूनों को कठोर करके इन फर्जी विश्वविद्यालयों को एक झटके में बंद क्यों नहीं किया जा सकता या फिर उन पर ऐसी कोई शर्त क्यों नहीं थोपी जा सकती कि वे यूजीसी के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य हों, ताकि छात्रों के भविष्य से खिलवाड़ न होने पाए?

प्रवासियों की घर वापसी

देहरादून में हुए प्रवासी उत्तराखंडी सम्मेलन के मौके पर मुख्यमंत्री पुष्कर सिंह धामी ने राज्य स्थापना की स्वर्ण जयंती तक प्रवासियों की गौरवपूर्ण वापसी पर जोर देकर उत्तराखंड में पलायन की गंभीर समस्या और उसके समाधान की झलक एवं संकल्प को दर्शाया है। दरअसल, राज्य गठन के 25 वर्ष बाद भी गांवों से निरंतर हो रहे पलायन के दंश से अभी तक पीछा नहीं छूटा है। पिछले कुछ वर्षों में सरकार ने गांवों पर ध्यान केंद्रित करने के साथ ही स्वरोजगार योजनाओं को अधिक महत्व दिया तो पलायन की दृष्टि से कुछ सार्थक परिणाम आए हैं। पलायन निवारण आयोग की रिपोर्ट के मुताबिक गांव की चौखट से निकलने वाले कदम अब राज्य के शहरी क्षेत्रों में आकर थम रहे हैं। इसके साथ ही देश-विदेश में रह रहे प्रवासियों को जड़ों से जुड़ाव का अहसास कराकर उनकी घर वापसी पर विशेष जोर दिया जा रहा है। प्रवासियों से निरंतर संपर्क साधने के लिए शासन में बाकायदा प्रवासी प्रकोष्ठ का गठन किया गया है। इस पहल के बेहतर नतीजे आए हैं। बड़ी संख्या में प्रवासियों ने अपने पैतृक एवं अन्य गांव गोद लेकर उनके विकास में विभिन्न माध्यमों से योगदान देना भी शुरू कर दिया है। बीते वर्षों में लगभग साढ़े छह हजार प्रवासी गांव लौटकर विभिन्न काम धंधों में रमे हैं। वे स्वयं के साथ अन्य को भी रोजगार सुलभ करा रहे हैं। इस परिदृश्य में मुख्यमंत्री ने प्रवासियों से गांव लौटने की अपेक्षा की है, जो गलत भी नहीं है। इससे वे न केवल जड़ों से जुड़ेंगे, बल्कि उनके अनुभवों का लाभ राज्य को मिलेगा।

> प्रवासी उत्तराखंडियों को जड़ों से जोड़ने और राज्य के विकास में उनकी भागीदारी के लिए गंभीरता से कदम उठाने होंगे

राष्ट्र जागरण का प्रथम मंत्र वंदे मातरम्

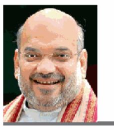

अमित शाह

औपनिवेशिक भारत के सबसे अंधकारमय काल में लिखा गया वंदे मातरम् जागृति का एक ऐसा प्रभात-गीत बन गया, जिसने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को सभ्यतागत गौरव के साथ जोड़ दिया

हमारे देश के इतिहास में ऐसे कई महत्वपूर्ण पड़ाव आए, जब गीतों, कलाओं ने अलग-अलग रूपों में लोक भावनाओं को सहेजकर आंदोलन को आकार देने में महती भूमिका निभाई। चाहे छत्रपति शिवाजी महाराज जी की सेना के युद्धगीत हों, आजादी के आंदोलन में सेनानियों के गान हों या आपातकाल के विरुद्ध युवाओं के सामूहिक गीत, इन सबने भारतीय समाज को स्वाभिमान की प्रेरणा भी दी और एकजुट भी किया। ऐसा ही है भारत का राष्ट्रीय गीत वंदे मातरम्, जिसका इतिहास किसी युद्धभूमि से नहीं, बल्कि विद्वान बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय जी के शांत, लेकिन अडिग संकल्प से शुरू होता है। 1875 में जगद्धात्री पूजा (कार्तिक शुक्ल नवमी या अक्षय नवमी) के दिन उन्होंने उस स्रोत की रचना की, जो भारत की स्वतंत्रता का शाश्वत गीत बन गया। इन पवित्र शब्दों को लिखते हुए वे भारत की गहनतम सभ्यतागत जड़ों से प्रेरणा ले रहे थे। अथर्ववेद के उद्घोष 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः' से लेकर देवी महात्म्य में विश्वमाता के आह्वान से प्रेरणा ले रहे थे।

बंकिम बाबू का यह मंत्र प्रार्थना भी था और भविष्यवाणी भी। वंदे मातरम् केवल भारत का राष्ट्रीय गीत ही नहीं, स्वतंत्रता आंदोलन का प्राण ही नहीं, बल्कि यह बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय जी द्वारा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की प्रथम उद्घोषणा है। इसने हमें याद दिलाया कि भारत केवल जमीन का एक टुकड़ा नहीं, बल्कि एक भू-सांस्कृतिक राष्ट्र है, जिसकी एकता उसकी संस्कृति और सभ्यता से आती है। यह केवल भू-भाग नहीं है, बल्कि तीर्थ है, स्मृति, त्याग, शौर्य और मातृत्व से बंधी पवित्र भूमि है। जैसा कि महर्षि अरबिंद ने वर्णन किया, बंकिम आधुनिक भारत के एक ऋषि थे, जिन्होंने अपने शब्दों के माध्यम से राष्ट्र के आत्मा को पुनर्जीवित किया। उनका आनंदमठ केवल एक उपन्यास नहीं, बल्कि गद्य में एक मंत्र था, जिसने एक ऐसे राष्ट्र को जागृत किया, जो अपनी दिव्य शक्ति को भूल चुका था। अपने एक पत्र में बंकिम बाबू ने लिखा, 'मुझे कोई आपत्ति नहीं है, यदि मेरे सभी कार्य गंगा में बहा दिए जाएं। यह श्लोक ही अनंत काल तक जीवित रहेगा। यह एक महान गान होगा और लोगों के हृदय को जीत लेगा।' ये शब्द भविष्यसूचक थे। औपनिवेशिक भारत के सबसे अंधकारमय काल में लिखा गया वंदे मातरम् जागृति का प्रभात-गीत बन गया, एक ऐसी रचना, जिसने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को सभ्यतागत गौरव के साथ जोड़ दिया। ऐसी पंक्तियां केवल वही व्यक्ति लिख सकता था, जिसके रोम-रोम में राष्ट्र के प्रति भक्तिभाव कूट-कूट कर भरा हो।

अवधेश राजपूत

वर्ष 1896 में रवींद्रनाथ टैगोर जी ने वंदे मातरम् को धुन में पिरोया और कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में इसे गाया, जिससे इसे वाणी और अमरता प्राप्त हुई। यह गीत भाषा और क्षेत्र की सीमाओं से आगे बढ़कर पूरे देश में गूंज उठा। तमिलनाडु में सुब्रमण्यम भारती जी ने इसका तमिल अनुवाद किया और पंजाब में क्रांतिकारियों ने इसे गाते हुए ब्रिटिश राज को खुली चुनौती दी। 1905 में बंग-भंग आंदोलन के दौरान बंगाल में विद्रोह भड़क उठा। अंग्रेजों ने वंदे मातरम्' के सार्वजनिक पाठ पर प्रतिबंध लगा दिया था, फिर भी 14 अप्रैल, 1906 को बारीसाल में हजारों लोगों ने इस आदेश की अवहेलना की। जब पुलिस ने शांतिपूर्ण सभा पर लाठीचार्ज किया तो पुरुष और महिलाएं सड़कों पर वंदे मातरम् का नारा लगाते हुए लहूलुहान हो गए। वहां से 'वंदे मातरम् का मंत्र गदर पार्टी के क्रांतिकारियों के साथ कैलिफोर्निया पहुंच गया। यह आजाद हिंद फौज में भी गूंजा, जब नेताजी के सैनिक सिंगापुर से मार्च कर रहे थे। इसी तरह यह 1946 में रायल इंडियन नेवी की क्रांति में भी गूंजा, जब भारतीय नाविकों ने ब्रिटिश युद्धपोतों पर तिरंगा फहराया। खुदीराम बोस से लेकर अशफाक उल्ला खां तक, चंद्रशेखर आजाद से लेकर तिरुपुर कुमारन तक, नारा एक ही था। यह अब केवल एक गीत नहीं रहा, बल्कि भारत के सामूहिक आत्मा की आवाज बन गया। महात्मा गांधी ने स्वयं स्वीकार किया था कि वंदे मातरम् में "सबसे सुस्त रक्त को भी जगाने की जादुई शक्ति" थी। इसने उदारवादियों और क्रांतिकारियों तथा विद्वानों और नाविकों तक को एकजुट किया। महर्षि अरबिंद जी ने इसीलिए कहा था कि यह 'भारत के पुनर्जन्म का मंत्र' है।

26 अक्टूबर को मन की बात कार्यक्रम में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने वंदे मातरम् गीत के इस इतिहास की देशवासियों को फिर से याद दिलाई। राष्ट्रीय गीत वंदे मातरम् के 150 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में 7 नवंबर से भारत सरकार की ओर से अगले एक वर्ष तक अलग-अलग कार्यक्रमों का आयोजन करने का निर्णय लिया गया है। इन विभिन्न आयोजनों के माध्यम से देश भर में वंदे मातरम् का पूर्ण गान होगा, जिससे देश की युवा पीढ़ी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के विचार को आत्मसात कर पाए।

आज जब हम भारत पर्व मना रहे हैं और सरदार पटेल की जयंती पर उन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण कर रहे हैं तो यह भी याद करते हैं कि कैसे सरदार साहब ने एक भारत का निर्माण कर वंदे मातरम् की भावना को ही मूर्त रूप दिया। यह गीत केवल अतीत का स्मरण मात्र नहीं, बल्कि भविष्य के लिए एक आह्वान भी है। वंदे मातरम् आज भी विकसित भारत 2047 के हमारे संकल्प को प्रेरणा दे रहा है। यह भारत के सभ्यतागत आत्मविश्वास का प्रतीक है। अब इस भावना को आत्मनिर्भर और श्रेष्ठ भारत में परिवर्तित करना हमारी जिम्मेदारी है। वंदे मातरम् स्वतंत्रता का गीत है, अटूट संकल्प की भावना है और भारत के जागरण का प्रथम मंत्र है।

राष्ट्र के आत्मा से जन्मे शब्द कभी समाप्त नहीं होते, वे सदैव जीवित रहते हैं, पीढ़ियों तक गूंजते रहते हैं। यह जयघोष युगों और पीढ़ियों में अनंत काल तक प्रतिध्वनित होता रहेगा। समय आ गया है कि हम अपने समृद्ध इतिहास, अपनी संस्कृति, अपनी मान्यताओं और अपनी परंपराओं को भारतीयता की दृष्टि से देखें।

वंदे मातरम्!

(लेखक केंद्रीय गृहमंत्री हैं)
response@jagran.com

तकनीकी विकास पर ध्यान दे निजी क्षेत्र

एनके सिंह

भारत के तकनीक में पिछड़ने का एक कारण निजी क्षेत्र का शोध एवं विकास के लिए सरकार पर आश्रित रहना है

केंद्र सरकार देश के निजी क्षेत्र से लगातार कह रही है कि वह अपने लाभ का कुछ प्रतिशत शोध एवं विकास यानी आरएंडडी में लगाए। हाल में प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के प्रमुख ने भी कहा कि निजी क्षेत्र पैसे को 'नकद' के रूप में रखने की जगह निवेश करे तो देश की जीडीपी सात प्रतिशत तक जा सकेगी। भारत में शोध एवं विकास जैसे तात्कालिक लाभ न देने वाले उपक्रमों को सरकार के भरोसे छोड़ने का निजी क्षेत्र का रिकार्ड रहा है। हालांकि शोध एवं विकास के लाभ लेने में वे सबसे आगे रहते हैं। अमेरिका जैसे संपन्न देशों में निजी क्षेत्र आरएंडडी के लिए सरकार का इंतजार नहीं करता। गूगल, एनवीडिया या माइक्रोसाफ्ट अधिकांश नवाचार अपने बूते करते हैं। क्वांटम कंप्यूटिंग में गूगल का 'विलो' इसका ताजा उदाहरण है।

तकनीकी नवाचार मानव का स्वभाव है। चूंकि यह जीवन और उसके उपादानों को सहज और सस्ता करता है, लिहाजा इसे अंगीकार करना अपरिहार्य होता है। बैलगाड़ी, साइकिल, मोटर-चालित वाहन, वायुयान-इनमें से किसी के प्रयोग को रोकना समाज को निश्चित ही अवनति की ओर ले जाता है। कंप्यूटर और इंटरनेट तकनीकी का नया दौर है-एआइ, लेकिन यह दौर यहीं नहीं ठहरा है। अगला चरण क्वांटम कंप्यूटिंग का है। यह भी वर्चुअल फेज से निकल कर वास्तविक और व्यावहारिक प्रयोग में आने लगा है। नए क्वांटम कंप्यूटर दुनिया के सबसे तेज सुपर कंप्यूटर के मुकाबले लाखों गुना तेजी से गणना करने जा रहे हैं। चिकित्सा, शिक्षा के साथ कोविड जैसी महामारी में वैक्सीन तैयार करने और कैंसर की कोशिकाओं का त्वरित विश्लेषण कर सटीक निदान बताने में ही नहीं, बल्कि युद्ध में भी इस नई टेक्नोलाजी की अप्रतिम भूमिका होगी।

आज दुनिया के विकसित देशों में होड़ इस बात की नहीं है कि कौन ज्यादा सक्षम ग्राफिक प्रोसेसिंग यूनिट (जीपीयू) बनाएगा या ज्यादा एआइ यूनिट्स स्थापित करेगा। अब यह दौड़ क्वांटम कंप्यूटिंग में क्षमता विकसित करने की हो गई है। जो देश सबसे ज्यादा क्यूबिट्स वाले क्वांटम कंप्यूटर बना सकेगा, वही विजयी होगा-बौद्धिक ही नहीं, आर्थिक और सामरिक रूप से भी। फिलहाल इस दौड़ में अमेरिका का गूगल अपने सुपर कंप्यूटर विलो और चीन अपने जूचोंगझी-3 के साथ खड़े हैं। यूरोप एक जमाने में वैज्ञानिक शोध में सबसे आगे रहा था, लेकिन अब इसमें पिछड़ता जा रहा है। भारत भी इस दौड़ में पीछे है। रेस में बना रहना है तो अमेरिका और चीन का मुकाबला करने के लिए उसे अपनी पूरी शक्ति लगानी होगी। 2021 में 76,000 करोड़ रुपये (85 करोड़ डालर) के परिव्यय के साथ केंद्र सरकार ने नेशनल सेमीकंडक्टर मिशन शुरू किया, जबकि क्वांटम कंप्यूटिंग में प्रमुख देशों के प्रयास देखते हुए 2024 में नेशनल क्वांटम मिशन के लिए अगले सात साल के लिए मात्र 70 करोड़ डालर का फंड रखा। दोष सरकार का नहीं है। विलो अमेरिकी सरकार ने नहीं बनाया है, न ही उसने कोई फंड दिया है। गूगल शोध में अपने व्यय से यह कमाल करके आज दुनिया का नेतृत्व कर रहा है। पिछले एक साल में एनवीडिया का राजस्व दोगुना हुआ है। यह संभव इसलिए हुआ है कि इन निजी कंपनियों ने शोध में जम कर पैसा लगाया। इसके उलट भारत में आजादी के बाद से ही निजी क्षेत्र ने अपने को निरीह और क्षमता-विहीन माना और शोध एवं विकास या ढांचागत विकास के लिए सरकार पर आश्रित रहने लगा। इस कारण भी देश तकनीकी नवाचार के मामले में पिछड़ गया। भारत में शोध पर कुल खर्च इसकी जीडीपी का मात्र 0.6 प्रतिशत है, जबकि चीन का लगभग 2.68 प्रतिशत। ध्यान रहे कि चीन की जीडीपी भारत की लगभग पांच गुना है। यानी शोध राशि में अंतर 20 गुना है। दुर्भाग्यवश भारत में निजी क्षेत्र का योगदान मात्र 37 प्रतिशत है।

प्रौद्योगिकी से जुड़े एक कार्यक्रम में पीएम मोदी। फाइल

वित्त मंत्रालय की एक हालिया रिपोर्ट के अनुसार देश में एआइ और मशीन-लर्निंग तकनीकी जानने वालों की नौकरियां 61 प्रतिशत बढ़ी हैं। एमेजोन ने दुनिया भर में 22 हजार कर्मियों को निकालने की प्रक्रिया शुरू की है, जिसमें भारत के 1000 कर्मी हैं। वर्ल्ड बैंक की रिपोर्ट कहती है कि दक्षिण एशिया के देशों में एआइ की वजह से उद्योगों में नौकरियां 20 प्रतिशत कम हुई हैं। साथ ही एआइ-संबंधित स्किल वालों का वेतन 30 प्रतिशत बढ़ा है। हालांकि कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि एआइ का यह प्रभाव अस्थायी है, जिसमें नई तकनीकी से कुछ नकारात्मक असर दिखाई देते हैं, लेकिन दीर्घकाल में इससे काम की रफ्तार बढ़ेगी और सुविधाओं का असाधारण विस्तार होगा, जैसा कि 1980-90 के दशक में कंप्यूटर के प्रयोग के बाद के भारत में देखा गया। अन्य उद्योगों या सेवाओं के अलावा एआइ का प्रयोग व्यापक रूप से कृषि में होने की संभावना अधिक है। जरूरत इसकी है कि देश के युवाओं को एआइ-सक्षम बनाया जाए। इसके लिए त्रिस्तरीय प्राविधिक शिक्षा में आइटी ट्रेनिंग से लेकर आइआइटी-रिसर्च तक पूरी शक्ति एआइ के ज्ञान को उपलब्ध कराने में लगाना होगा। चूंकि एआइ और क्वांटम कंप्यूटिंग का प्रयोग सबसे ज्यादा साफ्टवेयर उद्योगों, मैन्यूफैक्चरिंग, कृषि और निर्माण में होने जा रहा है, इसलिए निजी क्षेत्र को अपने लाभ का निश्चित अंश इससे संबंधित शोध में लगाने के लिए बाध्य करना जरूरी है।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)
response@jagran.com

सफलता

सफलता के लिए समाज ने कुछ मानक गढ़ दिए हैं- धन, पद, प्रतिष्ठा आदि। प्रायः इन्हीं के आधार पर किसी व्यक्ति के जीवन-मूल्य का निर्णय कर दिया जाता है, परंतु क्या मानव जीवन बाहरी उपलब्धियों से परिभाषित हो सकता है? जब प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रकृति में भिन्न है तो एकसमान कसौटी पर सभी को कसना निश्चय ही अनुचित और अतार्किक है। सफलता का मूल सार बाहर नहीं, भीतर खोजा जाना चाहिए। किसी के लिए आर्थिक समृद्धि जीवन का लक्ष्य हो सकती है, जबकि किसी के लिए भीतरी शांति ही सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। इसका अर्थ यह है कि सफलता की वास्तविक परिभाषा व्यक्ति के मन, अनुभवों और उसकी आत्मप्रकृति से जन्म लेती है। जो हमारे भीतर संतोष और सार्थकता का उदय करे, वही हमारे लिए सफलता का मार्ग है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम समय-समय पर स्वयं से पूछें-क्या हम वही जीवन जी रहे हैं, जिसकी हमारे अंतस को आवश्यकता है? क्या हमारे निर्णय हमारे अपने हैं या केवल समाज के प्रभाव का परिणाम? जब तक हम बाहरी विचारों की छाया से मुक्त नहीं होंगे, तब तक अपनी वास्तविक प्रकृति को पहचान पाना कठिन है। जिस प्रकार सुबह का दृश्य तभी स्पष्ट होता है जब कोहरा हटने लगता है, उसी प्रकार मन का प्रकाश तब ही प्रकट होता है जब बाहरी अपेक्षाओं का आवरण हट जाता है। महापुरुषों के विचार हमें दिशा अवश्य दे सकते हैं, परंतु यात्रा हमें स्वयं ही तय करनी होती है।

अपने जीवन की परिभाषा स्वयं बनाना ही सफलता का सार है। कर्मयोग की यही भावना है कि व्यक्ति अपने स्वभाव, अपनी क्षमता और अपनी आत्मनिष्ठा के अनुरूप कर्म करे। जो व्यक्ति अपने मूल स्वरूप के साथ संगति स्थापित कर लेता है, वही जीवन के मार्ग पर वास्तविक सफलता प्राप्त करता है। सफलता कोई गंतव्य नहीं, बल्कि आत्मबोध की सतत यात्रा है।

आदित्य नारायण अवस्थी

अंतरिक्ष में इसरो का बढ़ता दबदबा

रंजना मिश्रा

हाल में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के श्रीहरिकोटा के सतीश धवन अंतरिक्ष केंद्र से प्रक्षेपण यान एलवीएम3-एम5 ने अंतरिक्ष की ओर उड़ान भरी। भारत का अब तक का सबसे भारी लगभग 4,410 किलोग्राम वजनी और अत्याधुनिक संचार सैटेलाइट सीएमएस-03 को उसकी निर्धारित भू-समकालिक स्थानांतरण कक्षा (जीटीओ) में स्थापित करने की जिम्मेदारी इस 'बाहुबली' राकेट के कंधों पर थी। लगभग 43.5 मीटर ऊंचा और 640 टन से अधिक वजनी यह 'बाहुबली' राकेट भारत की इंजीनियरिंग प्रतिभा का एक जीता-जागता नमूना है। यह अपने साथ 8,000 किलोग्राम तक का पेलोड निचली कक्षा में और 4,000 किलोग्राम से अधिक वजन के सैटेलाइट को अंतरिक्ष की सबसे जटिल 'भू-समकालिक स्थानांतरण कक्षा' (जीटीओ) तक ले जाने की क्षमता रखता है। इस राकेट की असली ताकत इसका स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन है। यह एक ऐसी जटिल तकनीक है जिसमें शून्य से भी सैकड़ों डिग्री नीचे के तापमान पर तरल हाइड्रोजन और आक्सीजन का ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है। एलवीएम3 की यह लगातार पांचवीं सफल उड़ान थी, जो चंद्रयान-3 जैसे ऐतिहासिक मिशन को भी सफलतापूर्वक अंजाम दे चुका है।

> सीएमएस-03 एक मल्टी-बैंड सैटेलाइट है, जो कई वर्षों तक भारत की संचार व्यवस्था को अभूतपूर्व मजबूती प्रदान करेगा

सीएमएस-03 एक मल्टी-बैंड सैटेलाइट है, जो कई वर्षों तक भारत की संचार व्यवस्था को मजबूती प्रदान करेगा। यह उपग्रह न केवल हमारे मुख्य भूभाग, बल्कि अंडमान-निकोबार और लक्षद्वीप जैसे दूर-दराज के द्वीपों तक हाई-स्पीड इंटरनेट और बेहतर कनेक्टिविटी पहुंचाने में मदद करेगा। इसका सबसे रणनीतिक लाभ हमारी नौसेना को मिलेगा। हिंद महासागर क्षेत्र में अपनी पकड़ मजबूत करने और समुद्री गतिविधियों पर पैनी नजर रखने के लिए यह उपग्रह भारतीय नौसेना के लिए 'अंतरिक्ष में आंख और कान' की तरह काम करेगा।

एक समय था जब हमें अपने चार टन से अधिक वजनी सैटेलाइट को लांच करने के लिए फ्रांस या अन्य यूरोपीय देशों की मदद लेनी पड़ती थी। इसके लिए हमें उन्हें करोड़ों डालर की विदेशी मुद्रा चुकानी पड़ती थी। आज एलवीएम3 की सफलता ने इस निर्भरता को समाप्त कर दिया है। अब हम न केवल अपने सैटेलाइट खुद लांच कर रहे हैं, बल्कि दूसरे देश भी अपने सैटेलाइट लांच करने के लिए किफायती और भरोसेमंद भारतीय राकेटों की ओर देख रहे हैं। भारत का सबसे महत्वाकांक्षी सपना गगनयान मिशन यानी अंतरिक्ष में अपने अंतरिक्ष यात्रियों को भेजना इसी एलवीएम3 राकेट पर निर्भर है। इस राकेट की हर सफल उड़ान हमारे गगनयान मिशन के लिए विश्वास की गारंटी बनती है। यह सुनिश्चित करती है कि जब हमारे 'गगनयात्री' इस राकेट पर सवार होंगे, तो उनकी सुरक्षा और सफलता शत-प्रतिशत पक्की होगी।

(लेखिका स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

बाहुबलियों से मुक्त हो राजनीति

राहुल वर्मा द्वारा लिखित आलेख 'बाहुबलियों की बेलगाम राजनीति' पढ़ा। बिहार विधानसभा चुनाव के प्रथम चरण में 18 जिलों की 121 सीटों पर मतदान हो गया। लेखक ने स्पष्ट रूप से राजनीति में बाहुबलियों के बढ़ते हस्तक्षेप की चर्चा की है। दरअसल बात ये है कि जब से इंटरनेट मीडिया का दौर आया है तब से अधिकतर बाहुबली अपनी राबिन हुड वाली छवि बनाने में लग गए हैं। इस बार बिहार में अधिकतर बाहुबलियों के बेटे, बेटी या पत्नी चुनाव लड़ रही हैं। कई सीटों पर दोनों मोर्चे पर बाहुबली ही हैं। यदि आप बिहार के विधायकों का डाटा निकालेंगे तो तकरीबन विधायक किसी न किसी जुर्म में लिप्त मिलेंगे। लगता है बिहार की जनता भी राउडी टाइप नेता को ही पसंद करती है। अपने वोटों के माध्यम से तो उन्हें चुनकर जनता ही भेजती है। यदि जनता बाहुबलियों का पूर्ण रूप से बहिष्कार कर दे तो शायद वे विधायक बनने में नाकाम हो जाएंगे। महत्वपूर्ण बात ये भी है कि बिहार में जितने भी राजनीतिक दलों के शीर्ष नेता हैं वे जानबूझकर बाहुबलियों को टिकट देते हैं, ताकि उसके प्रभाव से आसपास की सीटें भी उनके खाते में आ जाएं। और उनकी पार्टी सत्ता में आ जाए। उन्हें जनता के हितों से कोई मतलब नहीं। उन्हें बस सत्ता साधकर सियासी रोटियां सेंकनी हैं। पिछले दिनों दो बाहुबलियों की रंजिश में एक की जान चली गई। आज भी बिहार में बाहुबलियों का दबदबा बना हुआ है। इसके पीछे वजह है सत्ता का संरक्षण। यदि संरक्षण न दिया जाए तो वे इस तरह से कानून को हाथ में नहीं लेंगे। अब देखना ये है कि इस बार बिहार विधानसभा चुनाव में बाहुबलियों का दबदबा कायम रहता है या फिर बिहार की जनता उन्हें सिरे से नकारती है।

मुशर्रफ परवेज, छात्र, दिल्ली विश्वविद्यालय

मेलबाक्स

पंथनिरपेक्षता की गरिमा

भारत एक पंथनिरपेक्ष देश है जहां सभी लोगों को कोई भी धर्म अपनाने की, सम्मान करने की पूरी स्वतंत्रता है। बदलते परिवेश में युवा अपनी मर्जी से विवाह के बंधन में बंधने लग गए हैं और अंतरधार्मिक विवाह का प्रचलन बढ़ गया है। ऐसे विवाहों में अगर एक जीवनसाथी दूसरे पर मतांतरण का दबाव नहीं बनाता और दोनों एक दूसरे के धर्म का सम्मान करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं तो यह बहुत बढ़िया बात है। पर अक्सर यह भी देखने में आता है कि विवाह पूर्व एक पार्टनर के द्वारा दूसरे पर मतांतरण के लिए दबाव डाला जाता है। और यह अधिकतर लड़कियों के साथ होता है। फिर कहां पंथनिरपेक्षता की बात रह जाती है? हमारे देश में सदियों से धर्म के नाम पर खून खराबा, दंगे होते आएं हैं। मजहब के नाम पर तलवारें चलीं, जानें गईं और परिवार तो क्या, देश तक का बंटवारा हो गया। हमारे देश का संविधान कहता है कि सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार है। लोग सिर्फ इस अधिकार की पालना करते हैं, पर दूसरे धर्मों का सम्मान करना भूल गए। दूसरों को धर्म के आधार पर आंकते हैं, भेद भाव करते हैं, मतांतरण का दबाव बनाते हैं जो सरासर गलत है।

अभिलाषा गुप्ता, मोहाली

पीड़ितों को न्याय

अक्सर बैंकों और जमाकर्ताओं के पैसे हड़पने वाले खुद को दिवालिया घोषित कर सजा हेतु कानून के समक्ष समर्पण कर देते हैं, जिससे उनके विरुद्ध आरोप तय होकर कार्रवाई हो जाती है। किंतु इससे वास्तविक हानि उठाने वाले लोगों को राहत नहीं मिलती। ऐसे में यह अनिवार्य हो गया था कि कुछ ऐसे ठोस कदम उठाए जाए, जिससे अन्याय के शिकार लोगों को क्षतिपूर्ति हो सके। प्रवर्तन निदेशालय की इस दिशा में पहल सराहनीय है। न्याय की सुस्त प्रक्रिया से प्रभावित पक्ष और अधिक प्रताड़ित महसूस करता है, अतः इन मामलों के त्वरित निपटारे की महती आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता। उम्मीद है न्यायपालिका और जांच एजेंसियां पीड़ित वर्ग को राहत देने में होने वाली देरी के प्रति गंभीरतापूर्वक ध्यान देकर इस समस्या के समाधान की कोशिश करेंगी, ताकि न्याय की राह में अनावश्यक विलंब बाधा न बने। फर्जी दिवालिया लोगों की पहचान कर उनके विरुद्ध भी उचित कार्रवाई अपेक्षित है।

मोहित सोनी, कुक्षी, मध्य प्रदेश

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।
अपने पत्र इस पते पर भेजें:
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: response@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त, पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन, नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन-महेन्द्र मोहन गुप्त, प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष: नई दिल्ली कार्यालय: 011-43166300, नोएडा कार्यालय: 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई/रेल शुल्क ₹-2 अतिरिक्त।
****

https://t.me/AllNewsPapersPaid1